PSY - 05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

मनोविज्ञान के सिद्धान्त एवं प्रणालियाँ

Theories and Systems of Psychology

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

संरक्षक	अध्यक्ष
प्रो. अशोक शर्मा	**प्रो. एल.आर. गुर्जर**
कुलपति	निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक एवं सदस्य

** संयोजक	* संयोजक
डॉ. अनिल कुमार जैन	**डॉ. रजनी रंजन सिंह**
सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ	सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ) एल.आर. गुर्जर	**प्रो. एच. बी. नंदवाना**
निदेशक (अकादमिक)	निदेशक, सतत शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
प्रो. विजयलक्ष्मी चौहान (सेवानिवृत्त)	**प्रो.आशा हिंगर (सेवानिवृत्त)**
मनोविज्ञान विभाग	मनोविज्ञान विभाग
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर	राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
प्रो. दामीना चौधरी (सेवानिवृत्त)	**डॉ. रजनी रंजन सिंह**
शिक्षा विद्यापीठ	सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. अनिल कुमार जैन	**डॉ. कीर्ति सिंह**
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा
डॉ. पतंजलि मिश्र	**डॉ. अखिलेश कुमार**
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

*डॉ. रजनी रंजन सिंह ,सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 13.06.2015 तक
** डॉ. अनिल कुमार जैन, सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 14.06.2015 से निरन्तर

समन्वयक एवं सम्पादक

समन्वयक
डॉ. पतंजलि मिश्र
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय वस्तु एवं भाषा संबंधी सम्पादन
डॉ. अनिल कुमार जैन
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई लेखन

1. **श्री संजय कुमार** (इकाई 1)
व्याख्याता
प्रारंभ शिक्षक शिक्षा विद्यापीठ
झझर, हरियाणा

2. **डॉ. सीमा जैन** (इकाई सं 2, 3, 4)
मनोविज्ञान विभाग,
मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

3. **डॉ. मूलचन्द मीणा** (इकाई सं 5)
सहायक आचार्य
महाराणा प्रताप टी.टी. कॉलेज, कोटा

4. **डॉ. वीना यादव** (इकाई सं. 6)
सहायक आचार्य
महाराणा प्रताप टी.टी. कालेज, कोटा

5. **डॉ. गजरा कंवर** (इकाई सं 7, 8)
मनोविज्ञान विभाग,
मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

6. **डॉ. रश्मि सिंह** (इकाई सं. 9)

7. **डॉ. विनस व्यास** (इकाई सं. 10)

8. **श्री अनिल कुमार जैन** (इकाई सं. 11)
टीचर एजुकेटर, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, बरुआसागर, झाँसी

9. **डॉ. रजनी रंजन सिंह** (इकाई सं. 12)
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

10. **डॉ. अनिता तलेसरा** (इकाई सं 13, 14)
मनोविज्ञान विभाग,
मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

11 **डॉ. कीर्ति सिंह** (इकाई सं. 15)
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

आभार

प्रो. विनय कुमार पाठक
पूर्व कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो .एल.आर .गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. करण सिंह
निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

डॉ. सुबोध कुमार
अतिरिक्त निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

उत्पादन - 2016 ISBN : 978-81-8496-519-3

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि.वि., कोटा, की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। व.म.खु.वि.वि. , कोटा के लिए कुलसचिव, व.म.खु.वि.वि., कोटा (राजस्थान) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

PSY 05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पेज नं.
1	मनोविज्ञान के विकास में प्लेटोअरस्तुऔर देकार्ते का योगदान ,	1
2	ब्रिटेन के अनुभववादी एवं साहचर्यवादियों के योगदान	15
3	शरीर क्रिया विज्ञानी का योगदान	26
4	वेबर, फेकनर, गाल्टन का मनोभौतिक एवं मनोशारीरिक विधियों में योगदान	36
5	विल्हैम वुण्ट व एडवर्ड बीटिचनर का मनोविज्ञान में योगदान.	45
6	विलियम जेम्स व हरमन एबिंगहॉस का मनोविज्ञान में योगदान	58
7	मनोगत्यात्मकता, नवफ्रायडवाद (एडलर, युंग तथा हार्नी) एवं व्यवहारवाद (पावलव तथा स्कीनर)	69
8	मानवतावादी एवं अस्तित्ववादी मनोविज्ञान, क्षेत्र सिद्धान्त (लेविन)	89
9	मनोविश्लेषण तथा नव- मनोविश्लेषण	107
10	सूचना संसाधन प्रक्रिया तथा चयनात्मक अवधान के सिद्धान्त या मॉडल	126
11	प्रत्यक्षीकरण स्वरूप :, सिद्धांत एवं प्रत्यक्षणात्मक अधिगम	137
12	पैटर्न प्रत्याभिज्ञान के सिद्धांत	152
13	उद्योग मनोविज्ञान	163
14	औद्योगिक मनोबल	181
15	विज्ञापन	193

इकाई -1

मनोविज्ञान के विकास में प्लेटो, अरस्तु और देकार्ते का योगदान

(Contribution of Plato, Aristotle and Decartesin the Development of Psychology)

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मनोविज्ञान:संप्रत्यय
1.4 परिभाषा
1.5 मनोविज्ञान का सतत् विकास
1.6 मनोविज्ञान के सतत् विकास में प्लेटो का योगदान
1.7 मनोविज्ञान के सतत् विकास में अरस्तु का योगदान
1.8 मनोविज्ञान के सतत् विकास में देकार्ते का योगदान
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

विज्ञान की तरह मनोविज्ञान भी मानव व्यवहार में निहित नियमों और सिद्धांतों की खोज और व्याख्या करता है। यह इस बात को सुनिश्चित करता है कि मानव अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं में क्यों और कैसे व्यवहार करता है ? मानवीय व्यवहार की विभिन्न अवस्थाओं का विस्तृत अध्ययन विज्ञान की नवोदित शाखा मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में आप मनोविज्ञान के सतत् विकास में प्लेटो, अरस्तु और देकार्ते के योगदान का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन पश्चात आप-

- मनोविज्ञान का अर्थ समझ सकेंगे और उसे परिभाषित कर सकेंगे।
- मनोविज्ञान के सतत् विकासको समझ सकेंगे।
- मनोविज्ञान के क्रमिक विकास में प्लेटो के योगदान को बता सकेंगे।
- मनोविज्ञान के क्रमिक विकास में अरस्तु के योगदान को बता सकेंगे।
- मनोविज्ञान के क्रमिक विकास में देकार्ते की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।
- मनोविज्ञान के क्रमिक विकास में प्लेटो, अरस्तु और देकार्ते के योगदान में अंतर बता सकेंगे।

1.3 मनोविज्ञान का संप्रत्यय (Perspective of Psychology)

मनुष्य की प्रवृति अपने उद्भवकाल से ही जिज्ञासु रही है, आस-पास घटनेवाली प्राकृतिक घटनाओं जैसे – सूर्य का उदय और अस्त होना, सर्दी, गर्मी और बरसात आदि के पार्श्व में छिपे रहस्यों को उजागर करने का कार्य उसने जिस तरह से किया, वह क्रमबद्ध प्रक्रिया विज्ञान के नाम से जानी जाती है। इसके माध्यम से उसने विभिन्न नियमों और सिद्धांतों की खोज की।इसी क्रम में उसने मानव प्रेरकों, भावनाओं, विचारों एवं क्रियाओं का भी अध्ययन किया जिससे विज्ञान की नवीन शाखा अस्तित्व में आयी। विज्ञान की इस नवीन शाखा को मनोविज्ञान कहा जाता है। विज्ञान की तरह यह मानव व्यवहार में निहित नियमों और सिद्धांतों की खोज और व्याख्या करता है। यह इस बात को सुनिश्चित करता है कि मानव अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं में क्यों और कैसे व्यवहार करता है ? मानव व्यवहार के अन्तर्गत निम्नलिखित क्रियाएँ सम्मिलित की जा सकती हैं –

1. **गामक क्रियाएँ**- चलना, बोलना और खेलना।

2.**ज्ञानात्मक क्रियाएँ -** ग्राहता, स्मरण, चिन्तन और तर्क।

3. **भावात्मक क्रियाएँ**- प्रसन्नता, उदासीनता, क्रोध और भय आदि।

आर. एस. वुडवर्थ ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि –"जीवन की किसी प्रकार की अभिव्यक्ति को क्रिया कहा जा सकता है।"

इस प्रकार मानवीय व्यवहार को विस्तृत रूप में बाहरी और आन्तरिक या मानसिक दोनों ही स्थितियों में महसूस किया जा सकता है जिसका अध्ययन विज्ञान की नवोदित शाखा मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

1.4 परिभाषाएं (Definitions)

मनोविज्ञान शब्द अंग्रेजी भाषा के **साइकॉलोजी (Psychology)**शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है जिसका शाब्दिक अर्थ है मन का विज्ञान। साइकॉलोजी शब्द का उद्भव यूनानी भाषा के दो शब्दों **'साइकी' (Psyche)** और **'लोगस'(Logas)**के संयुग्मन से हुआ है। 'साइकी' शब्द से तात्पर्य **आत्मा (Soul)**से है और 'लोगस'शब्द का अर्थ **अध्ययन (Study)**से है। इस प्रकार साइकॉलोजी का शाब्दिक अर्थ आत्मा का अध्ययन है।मनोविज्ञान के अर्थ को और भी स्पष्ट रूप से समझने के लिए आप विभिन्न मनोशास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं का इस प्रकार उल्लेख कर सकते हैं-

मॉर्गन के अनुसार – "मनोविज्ञान मानव एवं पशु व्यवहार का अध्ययन है।"

वाट्सन के शब्दोंमें –"मनोविज्ञान व्यवहार का धनात्मक विज्ञान है।"

वुडवर्थ के अनुसार –"मनोविज्ञान वातावरण के सम्पर्क में होने वाले मानव व्यवहारों का विज्ञान है।"

जे. पी. गिलफोर्ड के शब्दों में –"मनोविज्ञानजीवन की विविध परस्थितियों के प्रति प्राणी की अनुक्रियाओं का अध्ययन करता है। अनुक्रियाओं अथवा व्यवहार से ता त्पर्य प्राणी की सभी प्रकार की प्रक्रियाओं, समायोजनों, कार्यों एवं अभिव्यक्तियों से है।"

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि-

1. मनोविज्ञान मन का विज्ञान है।
2. मनोविज्ञान आत्मा के अध्ययन का विज्ञान है।
3. मनोविज्ञान व्यवहार का धनात्मक विज्ञान है।
4. मनोविज्ञान मानव व्यवहारों का विज्ञान है।
5. मनोविज्ञान मानव व्यवहारों की विशिष्टताओं से सम्बन्ध रखता है।

1.5 मनोविज्ञान का सतत् विकास (Continuous Development of Psychology)

छठी शताब्दी तक यही मान्यता थी कि प्राणी अपनी इन्द्रियों द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करता है। आत्मा जो कि विभिन्न इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को संगठित करने का कार्य करती है को ग्रीक मनोवैज्ञानिकों ने अस्वीकार करना शुरू कर दिया था। वे यह मानने लगे थे कि देखने, सुनने, सूंघने और स्वाद लेने आदि का कार्य बाहरी इन्द्रियां नहीं करती हैं बल्कि यह कार्य एक अदित्य शक्ति आत्मा करती है। बाहरी इन्द्रियां बिषयों का ज्ञान प्राप्त करके आत्मा को सौंप देती हैं। आत्मा-विषयक चर्चा से मनोविज्ञान का आरम्भ ग्रीक देश सेहुआ। यह धारणा लगभग सत्रहवीं शताब्दी तक बनी रही।यदि आज से अनेक शताब्दियों पूर्व मनोविज्ञान के विषय में प्रश्न पूछा जाता कि मनोविज्ञान से आप क्या समझते हैं तो सम्भव है कि इसका जबाव यही होता कि मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जिसमें आत्मा का अध्ययन किया जाता है। इस तरह मनोविज्ञान ने सदियों तक दर्शनशास्त्र की शाखा के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखा जिसमें आत्मा का अध्ययन किया जाता था।प्लेटो (Plato), अरस्तु (Aristotle) और देकार्ते(Decartes) आदि यूनानी दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को आत्मा के विज्ञान (Science of Soul) के रूप में ही मान्यता दी है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. जीवन की किसी प्रकार की अभिव्यक्ति को .....कहा जा सकता है।
2. मनोविज्ञान व्यवहार का ..... है।
3. आत्मा-विषयक चर्चा से मनोविज्ञान का आरम्भ .....से हुआ।
4. मनोविज्ञान .....की वह शाखा है जिसमें आत्मा का अध्ययन किया जाता है।
5. प्लेटो (Plato), अरस्तू (Aristotle) और डेकार्ट (Decarte) आदि यूनानी दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को ..... के रूप में ही मान्यता दी है।

1.6 मनोविज्ञान के सतत् विकास में प्लेटो का योगदान (Contribution of Plato in the Continuous Development of Psychology)

प्लेटो का जन्म एथेन्स के एक संपन्न परिवार में हुआ था ।प्लेटो के माता- पिता का नाम पेरिक्टन(Perictione)और अरिस्टन (Ariston) था । उसका वास्तविक नाम अरिस्टोक्लस (Aristocles) था, किन्तु चौड़े कंधेहोने के कारण उसका उपनाम प्लेटो प्रसिद्ध हुआ ।युवावस्था में प्लेटो के पिता का देहांत हो गया फलस्वरूप उसकी माँ नेपायरीलेम्प्स (Pyrilampes) ने दूसरी शादी कर ली। सुकरात प्लेटो का शिक्षक था जिसके सानिध्य में रहकर प्लेटो ने आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया था और अपने गुरु की शिक्षाओं के प्रचार–प्रसार हेतु एथेन्स में एकेडमी नाम की शैक्षिक संस्था का सूत्रपात किया ।प्लेटो का युग 429-347 ई . पू. का था ।उसने न केवल मनोवैज्ञानिक पक्षों बल्कि अन्य विषयों के प्रति भी अपनी रूचि को प्रकट किया है ।उसने मनोविज्ञान के सम्बन्ध में अपने मौलिक विचार दिए हैं । उसका योगदान मनोविज्ञान के लिए विशेष महत्त्व रखता है ।प्लेटो ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत का प्रतिपादन किया जिसे विचार का सिद्धांत (Theory of Idea) के नाम से जाना जाता है ।वह एक तरह से द्वैतवादी (dualist)था जिसने विचार (idea) को पदार्थ (matter) से अलग किया ।प्लेटो ने वास्तविकता(reality)को ही विचार(idea) कहा है ।उसने इस सिद्धांत के अन्तर्गत विचार (idea) की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है –

1. विचार में परिवर्तन नहीं होता है ।
2. विचार पूर्ण (perfect) होता है ।
3. विचार में समयहीनता (timelessness) होती है, अर्थात विचार समय के बंधन से मुक्त होता है ।
4. विचार पदार्थ (matter)से अलग है ।

प्लेटो के मतानुसार पदार्थ पूर्ण नहीं होता है इसका प्रत्यक्षण उन ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा होता है जो स्वयं मे अपूर्ण (imperfect) होती हैं । जहाँ विचार में आकार (form) होता है, तो वही दूसरी ओर पदार्थ में अन्तर्वस्तु (contents)होती है । इसलिए विचार को एक पैटर्न (pattern)अथवा सूत्र (formula)के रूप में समझा जा सकता है । विचार तथा पदार्थ के बीच असमानता को आप इस उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं – माना कि आप एक पूर्ण वृत के विचार की कल्पना करते हैं । ऐसा भी सम्भव है कि आप वृत के कई चित्र बनाये जिनमें पूर्णता की मात्रा कम हो । इनमें से कुछ वृत अपूर्ण हों और विषम हों तो कुछ लगभग पूर्ण वृत की तरह हों । आप जब वास्तविक पूर्ण वृत की कल्पना करते हैं तो यह विचार का उदाहरण होगा और जब आप विषम एवं अपूर्ण वृत बनाते हैं तो यह पदार्थ का उदाहरण होगा । एस प्रकार आधुनिक मनोविज्ञान के नजरिये से यह कहा जा सकता है कि प्लेटो के द्वारा प्रतिपादित विचार के सिद्धांत में संकल्पना (construct)पर अधिक जोर दिया गया है साथ ही यह सिद्धांत पृथक्करण (abstraction)का अतिमूल्यांकन (over evaluation)पर भी बल देता है ।

क्योंकि प्लेटो सुकरात का शिष्य था इसलिए अपने गुरु के समान उसने भी आत्मा (soul)के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए महत्वपूर्ण माना है ।प्लेटो ने आत्मा में निम्नलिखित तीन तत्वों को प्रधान माना है –

1. व्यक्ति का नैतिक गुण
2. चिन्तन और
3. अनेकों क्रियाओं का व्यवहारात्मक साधन।

प्लेटो आत्मा के स्वरुप को अभौतिक और अमर मानता है। आत्मा के विषय में इस तरह का विश्वास उस समय प्रचलित विश्वास और मनोवृति के अपवाद में था क्योंकि उस समय ग्रीक के दर्शन को प्रकृतिवाद का सामना भी करना पड़ रहा था। प्लेटो ने शरीर को नाशवान और भौतिक स्वरुप का माना है। इस प्रकार उसने आत्मा और शरीर में अंतर को स्पष्ट करते हुए एक द्वैतवादी होने का प्रमाण दिया है। प्लेटो के मतानुसार आत्मा का स्वरुप अभौतिक और अमर होता है , वह जिस आदर्श संसार का बोध कराती है उसके तथ्यों की जानकारी व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियों की सीमा से बाहर होती है। वह आत्मा की तीन क्रियाओं भरण-पोषण की क्रियाएँ (Nutritive Function), अनुभूति की क्रियाएँ (Sensetive Function) और बुद्धि की क्रियाएँ (Rational Function) को स्वीकार करता है। उसके अनुसार प्राणियों और पेड़-पौधों में भरण-पोषण होता है, जबकि मनुष्य में भरण-पोषण, अनुभूति और बुद्धि तीनों क्रियाएँ विद्यमान होती हैं। शिक्षा आत्मा में छिपी इन तीनों क्रियाओं का विकास करती है।

इस प्रकार आध्यात्मिक व्याख्या के कुछ प्रमाण प्लेटो के संक्रान्ति सिद्धांत (Doctrine of reminiscence) में भी मिलते हैं। यह सिद्धांत इस बात का वर्णन करता है कि किसी वास्तविक अनुभूति होने से पूर्व आत्मा में ज्ञान का संग्रहण होता है। इसे आप एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं जिसे प्लेटो ने अपने उक्त सिद्धांत के समर्थन में दिया था इस उदाहरण के अनुसार एक अनपढ़ बालक से कुछ विशेष तरह के प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने पर यह ज्ञात हुआ कि बालक को ज्यामिति का ज्ञान है, जबकि उसने इस विषय को कभी-भी नहीं पढ़ा। इस आधार पर प्लेटो यह मत प्रकट करता है कि जन्म से पूर्व आत्मा में ज्ञान संचित होता है और अनुभूति होने पर वह उस संचित ज्ञान से स्वयं परिचित हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1. अपने गुरु की शिक्षाओं के प्रचार–प्रसार हेतु एथेन्स में---------- ------नाम की शैक्षिक संस्था का सूत्रपात किया।
2. प्लेटो ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत का प्रतिपादन किया जिसे ---------- ----------के नाम से जाना जाता है।
3. प्लेटो आत्मा के स्वरुप को ---------- मानता है।
4. वह आत्मा की तीन क्रियाओं----------को स्वीकार करते थे।
5. जन्म से पूर्व ---------- में ज्ञान संचित होता है।

1.7 मनोविज्ञान के सतत् विकास में अरस्तुका योगदान (Contribution of Aristotle in the Continuous Development of Psychology)

अरस्तु अपने समय के बहु प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के साथ ही महान दर्शनिक भी थे। उन्होंने मनोविज्ञान के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि आधुनिक विषयों के लगभग सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा की

छाप छोड़ी है। वे प्लेटो की अकेडमी के सबसे अधिक प्रतिभाशाली छात्र थे। अफलातून उनकी शिक्षाओं के प्रभाव के कारण ही सिकन्दर महान बना। लुंडिन(Lundin, 1985)ने उन्हें पहले वास्तविक मनोवैज्ञानिक की संज्ञा दी है। उनके विषय में लुंडिन का यह मत है कि मनोवैज्ञानिक घटनाओं की व्याख्या करने का जो उनका स्वाभाविक तरीका था, वह आधुनिक मनोवैज्ञानिक मनोविज्ञान को व्यवहार का एक प्रकृति विज्ञान (Natural Science) मानते हैं , के तरीकों के समान है। केलर (Keller,1937)के मतानुसार अरस्तु को सभी मनोविज्ञान का पिता (Father of all Psychology) कहा जाता है क्योंकि मनोविज्ञान की उत्पत्ति का मूल इनके विचारों से मिलता है।मनोविज्ञान के प्रसिद्ध इतिहासकार मर्फी (Murphy, 1972)के अनुसार अरस्तु का महत्त्व मनोविज्ञान के इतिहास के दृष्टिकोण से उनके निम्नलिखित तीन योगदानों के लिए अधिक उल्लेखनीय है :

1. अरस्तु ने एक ऐसे ज्ञान तत्व (System of Knowledge) की सलाह दी जिसमें शरीर अथवा सजीव प्राणी (Living Organism) तथा आत्मा के बीच एक आनुभाविक (Empirical) और तर्कसंगत (Rational) सम्बन्ध के होने को प्रस्तुत किया।
2. उन्होंने स्पष्ट किया कि आत्मा और सजीव प्राणी में कोई अंतर नहीं है। आत्मा की क्रियाओं से सजीव प्राणी के विषय में जानकारी प्राप्त होती है और सजीव प्राणी की क्रियाओं से आत्मा को पहचान प्राप्त होती है। इस प्रकार आत्मा के स्वरुप की व्याख्या करने के क्रम में उन्होंने अपने गुरु प्लेटो के द्वैतवाद (dualism) को लगभग पूर्ण रूप से ख़त्म कर दिया।
3. उन्होंने अपनी ख्यातिप्राप्त पुस्तक परवा नैचुरेलिया (Parva Naturalia) में मानवीय अनुभवों और व्यवहारों की स्पष्ट व्याख्या करने का सफल प्रयास किया है। इस पुस्तक में उन्होंने कई नवीनतम विषयों यथा –युवावस्था और वृद्धावस्था की अनुभूतियों का विशद वर्णन, निद्रा, स्वप्न, जागरण, स्मृति और प्रत्यभिज्ञान का वर्णन, महिलाओं और पुरुषों के मनोविज्ञान का वर्णन तथा अतीन्द्रिय संसार की गोपनीयता का वर्णन किया है।

अरस्तु ने उपरोक्त दो योगदानों की व्याख्या अपनी पुस्तक डी अनिमा (De anima) में की है। इस पुस्तक के अतिरिक्त अरस्तु ने डी ओरेटोर (De Oratore), एथिक्स (Ethics) और पॉलिटिक्स (Politics) नाम की तीन किताबें और भी लिखीं। डी ओरेटोर में उन्होंने उन विषयों का वर्णन किया है जिनका प्रयोग वक्ता अपने श्रोताओं के संवेगों पर नियन्त्रण रखने के लिए करता है। एथिक्स और पॉलिटिक्स में अरस्तु ने आत्म-नियन्त्रण और अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों (Interpersonal Relations)पर ध्यान केन्द्रित किया है।

अरस्तु ने डिमोक्रिट्स और प्लेटो दोनों के मत का प्रबल विरोध किया है। उन्होंने पदार्थ और मन के बीच कोई भेद नहीं किया है।इस दृष्टि से उनकी अभिरुचि ठोस एवं यथार्थता में अधिक प्रतीत होती है। उनके मतानुसार मानसिक प्रक्रियाओं और शारीरिक प्रक्रियाओं में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो इन्होंने शरीर और आत्मा में असमानता नहीं अपितु समानता होने पर अधिक बल डाला है।वास्तव में शरीर विभिन्न तत्वों से निर्मित एक संरचना है और उसके द्वारा की गयीं क्रियाएँ ही आत्मा है। संरचना और पदार्थ दोनों सदैव साथ-साथ पाये जाते हैं। संरचना के द्वारा ही तत्वों या पदार्थ के अन्दर निहित छिपी अन्तःशक्तियों का प्रदर्शन होता है।संरचना के अभाव में तत्व एक निष्क्रिय ढेर की तरह दिखता है। इसे आप इस प्रकार समझ सकते हैं जैसे कि -हमारे शरीर का कोई भी अंग अपनी संरचना में यह प्रदर्शित करता है कि वह अंग किस ढंग से कौन-सा कार्य करेगा ?

इसके अभाव में वह अंग मात्र पदार्थ का उदाहरण बनकर ही रह जायेगा। इस प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग की एक विशिष्ट संरचना या रूप या आत्मा होती है। जैसे आपके कान से सुनने का कार्य होता है , सुनना आपके कान की संरचना या आत्मा हुई। एक पत्थर की मूर्ति के कान में कोई आत्मा नहीं होती है क्योंकि इसके द्वारा वह मूर्ति सुन नहीं सकती।अतः आपने यह समझ लिया कि आत्मा शरीर की क्रियाएँ हैं जो उसकी संरचना या रूप द्वारा निर्धारित होती हैं।अरस्तु ने आगे यह भी समझाने का प्रयास किया कि आत्मा से शरीर के विभिन्न अंगों की क्रियाओं का ही पता नहीं चलता बल्कि इससे सजीव प्राणी की सम्पूर्णता का बोध होता है। दूसरे शव्दों में, आत्मा सम्पूर्ण प्राणी का रूप या संरचना है। अरस्तु का यह विचार आधुनिक समय के प्रतिपादित संप्रत्यय मन (Mind) के अर्थ से काफी समानता रखता है।

अतः आपको यह भलीभांति समझ में आ गया होगा कि आत्मा या मन प्राणी का रूप या संरचना है जिसे ज्ञात वस्तुओं से पृथक नहीं किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में मन को एक प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट किया गया। अन्य शब्दों में, मन का परिचय उसके द्वारा सम्पादित क्रियाओं के रूप में होता है। मन वातावरण के अनुरूप ही क्रियाएँ करता है। अरस्तु ने प्राणी और वातावरण को एक-दूसरे से पृथक नहीं माना है वरन् एक ही तंत्र के दो ऐसे पक्षों के रूप में समझने का प्रयास किया है जो एक-दूसरे के साथ पर्याप्त अन्तः क्रिया करते हैं। उनके इस मत से मनोविज्ञान के क्षेत्र में आगे चलकर प्रकार्यवाद नाम के एक नये सम्प्रदाय का उदय हुआ।

इसके अतिरिक्त अरस्तु ने मनोविज्ञान के कई अन्य क्षेत्रों जैसे – संवेदन, सीखना, स्मृति, संवेग, कल्पना तथा तर्कना (Reasoning) आदि में भी अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने स्मरण के विषय में बहुत ही महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये जिन पर आगे चलकर दर्शनशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों के लिए अध्ययन का नया मार्ग प्रशस्त हुआ। उन्होंने स्मृति का आधार साहचर्य के तीन नियम यथा- समानता (Similarity), समीपता (Contiguity) तथा विरोध (Contrast) बताये हैं। इनमें से समानता और समीपता प्रथम दो नियमों का प्रतिपादन उनके गुरु प्लेटो ने किया था जिन्हें उन्होंने भी मान्यता प्रदान की जबकि तीसरे नियम विरोध का निरूपण उन्होंने स्वयं किया था।इन तीन नियमों के करण ही हमें किसी घटना या व्यक्ति का स्मरण होता है। इसे आप इस तरह समझें कि- हम राधा को इसलिए याद रखते हैं क्योंकि वह कृष्ण के साथ-साथ रहती थीं (समीपता), अथवा राधा में कृष्ण के समान कई गुण थे (समानता) या वह कृष्ण के विपरीत थीं (विरोध)। अरस्तु द्वारा निरुपित इस सिद्धांत के आधार पर ही आगे चलकर साहचर्यवाद नाम के सम्प्रदाय का जन्म हुआ।

अरस्तु ने पांच प्रकार की संवेदनाओं, उनके उद्दीपकों और माध्यमों की विस्तृत व्याख्या की है जिससे संरचनावादियों को मनोविज्ञान की बिषय-वस्तु को समझने में काफी सहायता मिली है।

क्र. सं.	**संवेदना का नाम**	**सम्पर्क माध्यम (Medium of Contact)**
1.	स्वाद(Taste)	मांसपेशियां (Muscles)
2.	स्पर्श (Touch)	त्वचा (Skin)
3.	गन्ध (Smell)	जल और वायु (Water and Air)

4.	श्रवण (Hearing) और	वायु (Air)
5.	दृष्टि(Sight)	वायु (Air)

उपरोक्त तालिका में आप देख रहे हैं कि स्वाद और स्पर्श का सम्पर्क माध्यम मांसपेशियां और त्वचा होती है, गन्ध का माध्यम जल और वायु है जबकि श्रवण और दृष्टि का सम्पर्क माध्यम भी वायु ही है । एक साथ विभिन्न संवेदनाओं से मिलने वाली सूचनाओं का समन्वय सामान्य ज्ञान (Commonsense) से होता है । जैसे कि – दृष्टि और स्पर्श संवेदन की संयुक्त सूचनाओं को जब सामान्य ज्ञान से जोड़ दिया जाता है, तो आप गेंद या बल्ले की पहचान आसानी से कर लेते हैं।

इस प्रकार ईसा बाद की प्रथम कुछ शताब्दियों के दौरान मनोविज्ञान का विकास धर्मविज्ञान (Theology) और दर्शनशास्त्र (Philosophy) के माध्यम से हुआ। इस अवधि के दौरान विद्वानों ने मन से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों जैसे-मन के तत्व कौन-से होते हैं, वे क्या और कैसे कार्य करते हैं आदि के उत्तर तलाशने का प्रयास किया।

अरस्तु के निधन के पश्चात ग्रीक में बौद्धिक बदलाव महसूस किया गया। उनके शिष्य सिकन्दर महान (Alaxander the great) ने सम्पूर्ण विश्व पर विजय हासिल करने के लिए रक्तपात किया । फलस्वरूप ग्रीक प्रकृतिवाद की विचारधाराओं का तेजी से पतन होने लगा।

अभ्यास प्रश्न 3

1. अफलातून उनकी शिक्षाओं के प्रभाव के कारण ही ---------- बना।
2. ---------- के मतानुसार अरस्तु को सभी मनोविज्ञान का पिता (Father of all Psychology) कहा जाता है।
3. उन्होंने अपने गुरु प्लेटो के ---------- को लगभग पूर्ण रूप से ख़त्म कर दिया।
4. उन्होंने अपनी ख्यातिप्राप्त पुस्तक ---------- में मानवीय अनुभवों और व्यवहारों की स्पष्ट व्याख्या करने का सफल प्रयास किया है।
5. मनोविज्ञान के क्षेत्र में आगे चलकर ---------- नाम के एक नये सम्प्रदाय का उदय हुआ।

1.8 मनोविज्ञान के सतत् विकास में रेने देकार्ते का योगदान (Contribution of Rene Descartes in the Continuous Development of Psychology)

आधुनिक मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र से 19वीं शताब्दी के उत्तर काल में पृथक हुआ और उसने एक स्वतंत्र प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में स्वयं को स्थापित किया। इस आधुनिक युग का आरम्भ 1601 ईसा पू से माना गया है।1601 से 1850 ईसा पू के कालखण्ड के दौरान दर्शनशास्त्र में कई महत्वपूर्ण घटनाएँ जर्मनी, फ्रांस और ब्रिटेन आदि देशों में घटित हुईं जिनका सीधा प्रभाव मनोविज्ञान के विकास पर पड़ा।17वीं शताब्दी के दार्शनिक विशेषकर देकार्ते, लाइबनिज तथा स्पाइनोजा के द्वारा

मन और शरीर के सम्बन्धों पर गंभीरतापूर्वक चिन्तन किया गया और इस दिशा में अध्ययन को आगे बढ़ाया।

देकार्ते का जन्म 1596 में फ्रांस के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। पेरिस,रोम, स्वीडनऔर एम्स्टरडम में इन्हें अध्ययन के लिए रहना पड़ा। स्वीडन की रानी क्रिश्चियाना (Christiana) ने इन्हें दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने के लिए 1619 में सम्मान सहित अपने पास बुलाया।दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने के दौरान ही इनकी पुस्तक का प्रकाशन हुआ जिसमें इन्होंने मन और शरीर के सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक विवेचन किया था। संक्षेप में देकार्ते के मनोविज्ञान को कार्टिजियन मनोविज्ञान (Cartesian Psychology) के नाम से भी जाना जाता है।बोरिंग (Boring), मर्फी (Murphy) एवं आर.आई. वाटसन (R.I. Watson) आदि विद्वानों ने इन्हें वैज्ञानिक. मनोवैज्ञानिक और गणितज्ञ इत्यादि के रूपों से सम्मानित किया है। इनके मनोवैज्ञानिक योगदान को निम्नलिखित चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. शरीर के सम्बन्ध में देकार्ते का मत (Descarte's view regarding body)
2. मन के सम्बन्ध में देकार्ते का मत (Descarte's view regarding mind)
3. शरीर तथा मन की अन्तःक्रिया सम्बन्धी देकार्ते के विचार (Descarte's view relating to interaction of body and mind)
4. जन्मजात विचार का सिद्धांत (Theory of innate ideas)

1. **शरीर के सम्बन्ध में देकार्ते का मत (Descarte's view regarding body):-** देकार्तेशरीरक्रिया-विज्ञान से पूर्णतः अवगत थे। उस समय विलियम हार्वे ने रक्त परिसंचरण तंत्र (Blood Circulation System)की खोज की थी जिसने देकार्ते के विचारों को बहुत प्रभावित किया था। उनके मतानुसार तंत्रिका एक खोखली नली होती है जिसके माध्यम से विभिन्न दिशाओं में पाश्विक प्रवृत्ति अर्थात गैसीय तत्व गति करते हैं। यह प्रवृत्ति रक्त की आसवन प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न होती है। उन्होंने इस प्रवृत्ति को एक भौतिक तत्व की संज्ञा दी है जो बहुत ही तेजी से शरीर में फैलता है। उन्होंने कहा कि आत्मा या मन के अभाव में शरीर एक मशीन मात्र है जैसे- पशु मात्र मशीन की तरह विभिन्न स्वचालित क्रियाएं करता है, क्योंकि उसके शरीर में आत्मा नहीं होती है।यदि आप अपने शरीर से मन या आत्मा को पृथक कर दें, तो यह भी एक मशीन की भांति बन जायेगा। देकार्ते के इस यांत्रिक सिद्धांत के माध्यम से यदि शरीर के स्वरुप को समझा जाये तो यही परिणाम प्राप्त होता है कि शरीर निर्जीव वस्तुओं का सगंठन मात्र है।
2. **मन के सम्बन्ध में देकार्ते का मत (Descarte's view regarding mind):-** देकार्ते का यह विचार था कि प्रत्येक मनुष्य में एक मन या आत्मा होती है जो उसकी विचारशीलता को प्रभावित करती है। शरीर पर मन का नियंत्रण होता है जो उसकी यांत्रिक क्रियाओं को निर्देशित और परिवर्तित करने का कार्य करता है। मन और शरीर दो अलग-अलग तत्वों से मिलकर बने होते हैं। शरीर विस्तरित पदार्थ (Extended matter) से बना होता है जबकि मन अविस्तरित पदार्थ (Unextended matter) से निर्मित होता है।
3. **शरीर तथा मन की अन्तःक्रिया सम्बन्धी देकार्ते के विचार (Descarte's view relating to interaction of body and mind):-** देकार्ते के मतानुसार मन और शरीर दोनों एक दूसरे के पूरक होते है यद्यपि ये दोनों पृथक तत्वों से निर्मित होते हैं। कुछ क्रियाओं जैसे – संवेदन और प्रत्यक्षण के संचालन में दोनों की सयुंक्त रूप से भूमिका होती है। यद्यपि मन

शरीर की यांत्रिक क्रियाओं को नियंत्रित और निर्देशित करता है, परन्तु कुछ क्रियाओं जैसे – संवेग, सवेदन और प्रत्यक्षण द्वारा वह स्वयं भी प्रभावित होता है। इस तरह मन और शरीर में अन्तःक्रियाएँ होती हैं, परन्तु ये क्रियाएँ सम्पादित कैसे होती हैं। यह विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्न के उत्तर में देकार्ते कहते हैं कि मस्तिष्क की केवल एकमात्र संरचना पीनियल ग्रन्थि (Pineal gland) मस्तिष्क के बीच में स्थित होती है जिसकी कोई अन्य विकल्प या अनुकृति (Duplicate) नहीं होती है। अन्तःक्रिया की इस प्रक्रिया को आप एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं – किसी व्यक्ति को दृष्टि संवेदन होने के लिए यह जरुरी है कि नेत्र पटल पर बनने वाले प्रतिबिम्ब द्वारा पाश्विक प्रवृत्ति की उत्पत्ति हो जो मस्तिष्क की पीनियल ग्रन्थि को उद्वेलित करती हो। इसके कारण नेत्र देखने की प्रक्रिया को सम्पन्न कर पाता है ।दूसरी ओर कुछ क्रियाएँ ऐसी भी होती हैं जिनका संचालन ठीक इसके विपरीत दिशा में होता है । इसे आप ऐसे समझ सकते हैं जैसे मान लिया जाये कि मन किसी घटना, वस्तु, स्थान या व्यक्ति का स्मरण करना चाहता है। मन की यह इच्छा पीनियल ग्रन्थि को उद्वेलित करती है जो मस्तिष्क के छिद्रों में पाश्विक प्रवृत्ति उत्पन्न करती है परिणाम स्वरुप व्यक्ति उस घटना या वस्तु के चिह्नों की खोज करता है।

4. **जन्मजात विचार का सिद्धांत (Theory of innate ideas):-** देकार्ते ने मन की क्रियाओं द्वारा दो प्रकार के विचार उत्पन्न होने के विषय में अपना मत प्रकट किया है। प्रथम, अर्जित विचार जो संवेदी अनुभवों से प्राप्त होते हैं। द्वित्तीय, जन्मजात विचार जैसे - ईश्वर और आत्मा से सम्बन्धित विचार जो किसी संवेदी अनुभव से प्राप्त नहीं होते हैं, परन्तु फिर भी ये विचार मन में इस भरोसे के साथ उत्पन्न होते हैं कि व्यक्ति इन्हें स्वीकार करने के लिए मजबूर होता है।देकार्ते के इस मत ने भविष्य के दार्शनिकों और गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों को नए अध्ययन के लिए सकारात्मक दिशा प्रदान की।

इस प्रकार देकार्ते की मन और आत्मा सम्बन्धी मीमांसा के फलस्वरूप मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान समझा जाने लगा क्योंकि मन और आत्मा का अनुभव व्यक्ति को चेतना से ही होता है।

अभ्यास प्रश्न 4

1. देकार्ते के मनोविज्ञान को ---------- के नाम से भी जाना जाता है।
2. उस समय विलियम हार्वे ने ----------की खोज की थी जिसने देकार्ते के विचारों को बहुत प्रभावित किया था।
3. मन ----------से निर्मित होता है।
4. मस्तिष्क की केवल एकमात्र संरचना ---------- मस्तिष्क के बीच में स्थित होती है जिसकी कोई अन्य विकल्प या अनुकृति (Duplicate) नहीं होती है।
5. ---------- मनोवैज्ञानिकों को नए अध्ययन के लिए सकारात्मक दिशा प्रदान की।

1.9 सारांश

मनोविज्ञान शब्द अंग्रेजी भाषा के **साइकॉलोजी (Psychology)**शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है जिसका शाब्दिक अर्थ है मन का विज्ञान। साइकॉलोजी शब्द का उद्भव यूनानी भाषा के दो शब्दों

'साइकी' (Psyche) और **'लोगस'(Logas)**के संयुग्मन से हुआ है। 'साइकी' शब्द से तात्पर्य **आत्मा (Soul)**से है और 'लोगस'शब्द का अर्थ **अध्ययन (Study)** से है। अतः साइकॉलोजी का शाब्दिक अर्थ आत्मा का अध्ययन है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ के अनुसार –"मनोविज्ञान वातावरण के सम्पर्क में होने वाले मानव व्यवहारों का विज्ञान है।"

मनोविज्ञान ने सदियों तक दर्शनशास्त्र की शाखा के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखा जिसमें आत्मा का अध्ययन किया जाता था। प्लेटो (Plato), अरस्तू (Aristotle) और डेकार्ट (Descartes) आदि यूनानी दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को आत्मा के विज्ञान (Science of Soul) के रूप में ही मान्यता दी है।

प्लेटो का जन्म एथेन्स के एक संपन्न परिवार में हुआ था। प्लेटो के माता- पिता का नाम पेरिक्टन(Perictione) और अरिस्टन (Ariston) था। उसका वास्तविक नाम अरिस्टोक्लस (Aristocles) था, किन्तु चौड़े कंधे होने के कारण उसका उपनाम प्लेटो प्रसिद्ध हुआ। अपने गुरु की शिक्षाओं के प्रचार–प्रसार हेतु एथेन्स में एकेडमी नाम की शैक्षिक संस्था का सूत्रपात किया। प्लेटो का युग 429-347 ई . पू. का था। प्लेटो के द्वारा प्रतिपादित विचार के सिद्धांत में संकल्पना (construct)पर अधिक जोर दिया गया है साथ ही यह सिद्धांत पृथक्करण (abstraction)का अतिमूल्यांकन (over evaluation)पर भी बल देता है। प्लेटो आत्मा के स्वरुप को अभौतिक और अमर मानता है। वह जिस आदर्श संसार का बोध कराती है उसके तथ्यों की जानकारी व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियों की सीमा से बाहर होती है। वह आत्मा की तीन क्रियाओं भरण-पोषण की क्रियाएँ (Nutritive Function), अनुभूति की क्रियाएँ (Sensetive Function) और बुद्धि की क्रियाएँ (Rational Function) को स्वीकार करता है। उसके अनुसार प्राणियों और पेड़-पौधों में भरण-पोषण होता है, जबकि मनुष्य में भरण-पोषण, अनुभूति और बुद्धि तीनों क्रियाएँ विद्यमान होती हैं। शिक्षा आत्मा में छिपी इन तीनों क्रियाओं का विकास करती है।

अरस्तु प्लेटो की एकेडमी के सबसे अधिक प्रतिभाशाली छात्र थे। अफलातून उनकी शिक्षाओं के प्रभाव के कारण ही सिकन्दर महान बना। लुंडिन (Lundin, 1985)ने उन्हें पहले वास्तविक मनोवैज्ञानिक की संज्ञा दी है।केलर (Keller,1937) के मतानुसार अरस्तु को सभी मनोविज्ञान का पिता (Father of all Psychology) कहा जाता है क्योंकि मनोविज्ञान की उत्पत्ति का मूल इनके विचारों से मिलता है। अरस्तु ने मनोविज्ञान में अपने योगदानों की व्याख्या अपनी पुस्तक डी अनिमा (De anima) में की है। इस पुस्तक के अतिरिक्त अरस्तु ने डी ओरेटोर (De Oratore), एथिक्स (Ethics) और पॉलिटिक्स (Politics) नाम की तीन किताबें और भी लिखीं। डी ओरेटोर में उन्होंने उन विषयों का वर्णन किया है जिनका प्रयोग वक्ता अपने श्रोताओं के संवेगों पर नियन्त्रण रखने के लिए करता है। एथिक्स और पॉलिटिक्स में अरस्तु ने आत्म-नियन्त्रण और अन्तर्वेयक्तिक सम्बन्धों (Interpersonal Relations) पर ध्यान केन्द्रित किया है। उन्होंने पदार्थ और मन के बीच कोई भेद नहीं किया है।उनके मतानुसार मानसिक प्रक्रियाओं और शारीरिक प्रक्रियाओं में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। अरस्तु ने आगे यह भी समझाने का प्रयास किया कि आत्मा से शरीर के विभिन्न अंगों की क्रियाओं का ही पता नहीं चलता बल्कि इससे सजीव प्राणी की सम्पूर्णता का बोध होता है। अरस्तु का यह विचार आधुनिक समय के प्रतिपादित संप्रत्यय मन (Mind) के अर्थ से काफी समानता रखता है।

17वीं शताब्दी के दार्शनिक विशेषकर देकार्ते, लाइबनिज तथा स्पाइनोजा के द्वारा मन और शरीर के सम्बन्धों पर गंभीरतापूर्वक चिन्तन किया गया और इस दिशा में अध्ययन को आगे बढ़ाया। दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने के दौरान ही देकार्ते की पुस्तक का प्रकाशन हुआ जिसमें इन्होंने मन और शरीर के सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक विवेचन किया था। संक्षेप में देकार्ते के मनोविज्ञान को कार्टिजियन मनोविज्ञान (Cartesian Psychology) के नाम से भी जाना जाता है। इनके मनोवैज्ञानिक योगदान को निम्नलिखित चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. शरीर के सम्बन्ध में देकार्ते का मत (Descarte's view regarding body)
2. मन के सम्बन्ध में देकार्ते का मत (Descarte's view regarding mind)
3. शरीर तथा मन की अन्तः क्रिया सम्बन्धी देकार्ते के विचार (Descarte's view relating to interaction of body and mind)
4. जन्मजात विचार का सिद्धांत (Theory of innate ideas)

देकार्ते की मन और आत्मा सम्बन्धी मीमांसा के फलस्वरूप मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान समझा जाने लगा क्योंकि मन और आत्मा का अनुभव व्यक्ति को चेतना से ही होता है।

1.10 शब्दावली

- **उद्भवकाल** – उत्पत्ति का समय
- **विज्ञान** – प्राकृतिक नियमों पर आधारित क्रमबद्ध ज्ञान
- **आत्मा-विषयक**– आत्मा से सम्बन्धित
- **दर्शनशास्त्र** –असत्य और सत्य पदार्थों का यथार्थ ज्ञान
- **द्वैतवादी**-प्रकृति, जीव तथा परमात्मा तीनों के अस्तित्व को मानने वाला
- **समयहीनता**–समय का कोई प्रभाव न होना
- **पृथक्करण**– अलग करने की प्रक्रिया
- **संकल्पना**– निर्माण करना
- **अभौतिक**– पदार्थ रहित या अमूर्त
- **मनोवृत्ति**– किसी व्यक्ति के मन की अवस्था
- **संक्रान्ति** –किसी वस्तु का वह गुण जो अन्य का सूचक होता है
- **अफलातून**– आदर्शवादी या आध्यात्मिक
- **साहचर्यवाद**–ऐसा सिद्धांत जो यह बताता है कि मन तत्वों से बना है
- **धर्मविज्ञान**– धर्म का तर्कसंगत और व्यवस्थित अध्ययन
- **प्रयोगात्मक विज्ञान**–अवलोकन या प्रयोगों पर आधारित व्यवस्थित अध्ययन
- **कार्टिजियन मनोविज्ञान**– मन और शरीर के बीच अंतर स्पष्ट करने वाला क्रमबद्ध अध्ययन
- **अन्तःक्रिया** –पारस्परिक क्रिया

- **रक्त परिसंचरण तंत्र**– प्राणी के शरीर में विभिन्न अंगों से होकर रक्त का भ्रमण करना
- **संवेदन**– अनुभव या उत्साह की सामान्य भावना
- **प्रत्यक्षण** –प्रत्यक्ष ज्ञान
- **मीमांसा**– विवेचन करना या विश्लेषण करना

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1

1. क्रिया 2. धनात्मक विज्ञान 3. ग्रीक देश 4. दर्शनशास्त्र 5. आत्मा के विज्ञान

अभ्यास प्रश्न -2

1. एकेडमी 2. विचार का सिद्धांत 3. अभौतिक और अमर

4. भरण-पोषण, अनुभूति एवं बुद्धि 5. आत्मा

अभ्यास प्रश्न -3

1. सिकन्दर महान 2. केलर (1937)3.द्वैतवाद 4.परवा नैचुरेलिया 5. प्रकार्यवाद

अभ्यास प्रश्न -4

1. कार्टिजियन मनोविज्ञान 2. रक्त परिसंचरण तंत्र 3. अविस्तरित पदार्थ 4. पीनियल ग्रन्थि

5. गेस्टाल्टवादी

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- शर्मा, आर. एन. एवं शर्मा, रचना (2004). *एडवांसड एप्प्लायड सायकोलोजी*, नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- ए. रहमान (2008) ,*मनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास,* नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स।
- शर्मा, जी. आर. एवं शर्मा, एच. (2013). *अधिगम-शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक आधार*, जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
- माथुर, एस.एस. (2009).*सामान्य मनोविज्ञान*,आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सिंह, ए. के. (2008).*मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास*, नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स।

1,13 निबंधात्मक प्रश्न

1. मनोविज्ञान को विज्ञान की श्रेणी में क्यों रखते हैं? स्पष्ट कीजिए।
2. मनोविज्ञान की विभिन्न परिभाषाओं का मूल्यांकन कीजिए। जिस परिभाषा को आप सर्बाधिक उपयुक्त समझते हैं, उसकी विस्तृत व्याख्या कीजिए।

3. मनोविज्ञान के सतत् विकास में प्लेटो के योगदान का वर्णन करें।
4. अरस्तु का मनोविज्ञान के सतत् विकास में क्या योगदान है ? संक्षेप में वर्णन करें।
5. "आत्मा सम्म्बन्धी मीमांसा के फलस्वरूप मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान समझा जाने लगा।" क्यों ? स्पष्ट कीजिए।
6. मनोविज्ञान के विकास में प्लेटो, अरस्तु तथा देकार्ते के योगदान में क्या विभेद है ? वर्णन कीजिए।

इकाई - 2

ब्रिटेन के अनुभववादी एवं साहचर्यवादियों के योगदान

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 ब्रिटेन का अनुभवाद

2.3.1 थॉमस हॉब्स

2.3.2 जॉन लॉक

2.3.3 जार्ज बर्केली

2.3.4 डेविड ह्यूम

2.4 ब्रिटेन का साहचर्यवाद

2.4.1 डेविड हार्टले

2.4.2 जेम्स मिल

2.4.3 जॉन स्टुआर्ट मिल

2.4.4 एलेक्जेण्डर बेन

2.5 सारांश

2.6 बोध प्रश्न

2.7 संदर्भसूची

2.1 प्रस्तावना

19वीं शताब्दी के मध्य तक जहां युरोप के अधिकांश भागों पर देकार्ते का प्रभाव रहा वहीं इंगलैंड में अनुभववाद तथा साहचर्यवाद के दर्शन तेजी से विकसित हुए। देकार्ते के समय में और उनके बाद दर्शनशास्त्र के अन्दर दृष्टिकोण के बड़े परिवर्तन हुए जिनमें तीन प्रमुख हैं - 1. प्रत्यक्षवाद 2. पदार्थवाद और 3. अनुभववाद का विकास। इस नये दृष्टिकोण ने नये मनोविज्ञान का आधार तैयार किया। अनुभववाद और साहचर्यवाद के बीच बड़ा गहरा सम्बन्ध है। साहचर्यवाद का प्रारंभ प्लुटो ने किया तथा अरस्तू ने इसे आगे बढ़ाया।

2.2 उद्देश्य

इस अध्याय में अनुभववाद एवं साहचर्यवाद के सम्बन्ध को समझाया जा रहा है जिससे मनुष्य में उत्पन्न होने वाले विचार किस प्रकार से आते हैं उनकी क्या प्रक्रिया है, वे किस प्रकार साहचर्यित

होकर सरल विचार से जटिल विचार में परिवर्तित होते हैं तथा कौन-कौन से सिद्धान्त इनमें लगते हैं, आदि पर प्रकाश डाला जा रहा है। साथ ही द्वेतवाद यानी मन एवं शरीर सम्बन्ध पर अनुभववादियों ने अपने विचार प्रस्तुत किये, मानसिक क्रियाओं जैसे प्रत्यक्षण, दूरी प्रत्यक्षण पर जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। प्रभाव व विचार में अन्तर का विश्लेषण किया जा रहा है। कारण एवं प्रभाव के संबंध में विचार प्रस्तुत किए जा रहे है।

2.3 ब्रिटेन का अनुभवाद

अनुभववाद एक आन्दोलन के रूप में ग्रेट ब्रिटेन में तीनों यूरोपीय दार्शनिकों अर्थात् देकार्ते, लाइबनिज तथा स्पाइनोजा के विचारधाराओं के विरोध में जन्मा। यही कारण है कि इसे ब्रिटिश अनुभववाद भी कहा जाता है। अनुभववाद के चार समर्थक हैं - थामस हॉब्स जॉन लॉक, जार्ज बर्केली तथा डेविड हयूम ये चारों ब्रिटिश दार्शनिक हैं।

2.3.1 थॉमस हॉब्स

हॉब्स का जन्म 1588 ई. में विल्टशायर में हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा ऑक्सफार्ड में हुई। शिक्षा समाप्त होने के बाद वे अध्यापन कार्य में लीन रहे। उनके विचारों की झलक हमें उनकी दो प्रमुख पुस्तकें अर्थात् 'ह्यूमन नेचर' तथा 'लेवियाथन' में मिलती है। इनमें से 'लेवियाथन' काफी चर्चित पुस्तक है। हॉब्स के समय इंगलैंड में अशान्ति व्याप्त थी एवं काफी उथल-पुथल मची हुई थी। यहां तक कि वहां के राजाचार्ल्स प्रथम को फांसी दे दी गयी थी। हॉब्स राजन्य वर्ग के थे तथा उनका दृष्टिकोण अभिजात-तन्त्रीय था। उन्हें व्यापारी एवं राजनीति दोनों सम्प्रदायों से घृणा थी। उन्हें दर्शनशास्त्र तथा राजनीति में काफी अभिरुचि थी। इन दोनों क्षेत्रों में शिक्षण एवं अध्यापन करते हुए उनका देहावसान 1679 में हो गया। हॉब्स ने व्यक्ति के मौलिक स्वभाव तथा अनुभव की उपज में अन्तर किया है। उन्होंने कुछ मानव व्यवहारों को जन्मजात शरीर-रचना से जोड़ा है तथा अधिकतम व्यवहारां को अर्जित माना है। भूख, प्यास, यौन को उन्होंने जन्मजात प्रवृत्ति कहा है जिनकी व्याख्या करना आसान है। अधिकतम व्यवहार अर्जित प्रवृत्तियों के कारण होती है और इसकी व्याख्या करने के लिए उन्होंने अभिप्रेरण-नियमों पर बल डाला है।

हॉब्स ने मानसिक क्रियाओं की एक सामान्य व्याख्या करते हुए कहा कि मानसिक क्रियाएं स्नायु मण्डल में गति जो बाहरी दुनिया के गति के फलस्वरूप उत्पन्न होता है, के कारण होता है। जैसे - संवेदन की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि बाह्य-वातावरण में जो गति होती है, उसका प्रभाव हमारे ज्ञानेन्द्रियों एवं मस्तिष्क के रूप में हॉब्स द्वारा की गयी है। हॉब्स से स्पष्ट है कि उनके मन में मानसिक क्रिया तथा गति सहवर्ती होते हैं, परन्तु उन्होंने यह कभी नहीं बतलाया कि वे दोनों किस तरह से एक साथ-साथ अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं।

हॉब्स का सबसे प्रमुख योगदान विचारों के साहचर्य के क्षेत्र में हैं। उन्होंने कहा कि विभिन्न विचारों या चिन्तनों में क्रमबद्धता से साहचर्य की उत्पत्ति होती है। उन्होंने साहचर्य को दो प्रकार बतलाया है- स्वतन्त्र या अनियन्त्रित साहचर्य तथा निदेशित या उद्देश्यपूर्ण साहचर्य। स्वतन्त्र साहचर्य या अनियंत्रित साहचर्य, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, में स्थिरता होती है तथा यह कोई निश्चित दिशा में निदेशित भी नहीं होती है। इसका आधार कोई नियम नहीं होता है। दूसरे तरफ निदेशित या उद्देश्यपूर्ण साहचर्य वैसे साहचर्य को कहा जाता है, जो कुछ नियमों जैसे- समानता तथा सामीप्यता पर

आधारित होता है तथा यह निश्चित दिशा में किसी उद्देश्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर रहता है। हॉब्स ने निदेशित या उद्देश्यपूर्ण साहचर्य को ही तुलनात्मक रूप से अधिक महत्वपूर्ण माना है।

अतः हॉब्स का अनुभववादी मनोविज्ञान ऐसा था जिसमें संवेदन तथा अन्य मानसिक क्रियाओं की व्याख्या गति के रूप में की गयी तथा स्वतंत्र साहचर्य एवं नियंत्रित साहचर्य की एक ऐसी रूपरेखा तैयार की गयी जो अनुभूति के विभिन्न तत्वों के बीच अन्तरसम्बन्धों की व्याख्या करने में सफलीभूत हो सका।

2.3.2 जॉन लॉक

जॉन लॉक का जन्म इंगलैंड के एक छोटे से गाँव में हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हुई। उन्होंने चिकित्साशास्त्र की पढ़ाई तो अवश्य पढ़ी परन्तु उपाधि नहीं मिल सका। उन्होंने अपने जीवन के कुछ समय राजनीति तथा सरकारी दफ्तरों में भी बिताया। 58 वर्ष की आयु में उनका एक महत्वपूर्ण किताब 'एन एस्से कनसरनिंग ह्यूमन अन्डरस्टैडिंग' का प्रकाशन हुआ जिसका कई बार संशोधन हुआ और अन्तिम चौथा संस्करण1670 ई. में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उन्होंने जिन मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर बल दिया है, वह आधुनिक मनोविज्ञान के लिए वरदान साबित हुआ।

लॉक के योगदानों की विवेचना निम्न है -

1. ज्ञान का सिद्धान्त
2. साहचर्य
3. द्वैतवाद

1. ज्ञान का सिद्धान्त - लॉक के अनुसार मन की इकाई को ही विचार कहा जाता है। अतः विचार चिन्तन का एक वस्तु होती है। अपने तर्क के पक्ष में उन्होंने निम्न तथ्य प्रदान किए -

I. अगर विचार जन्मजात होते, तो वे सभी व्यक्तियों के मन में एक समान होते। परन्तु ऐसा नहीं होता।

II. अगर विचार जन्मजात होते, तो वे स्थिर होते और उनका विकास नहीं होता। लेकिन विचार स्थिर नहीं होते हैं और धीरे-धीरे वे विकसित होते रहते हैं।

III. चूंकि विचार की उत्पत्ति व्यक्ति की अनुभूति से होती है, अतः वे जन्मजात हो ही नहीं सकते।

लॉक ने विचार के प्रकार बतलाये हैं- साधारण तथा जटिल। साधारण विचार वैसे विचार को कहा जाता है जो शुद्ध एवं अमिश्रित होते हैं परन्तु वे विश्लेषण योग्य नही होते हैं। ऐसे विचार या अनुभूति की उत्पत्ति संवेदन से होती है। जैसे- लाल रंग देखने से उत्पन्न अनुभूति या विचार साधारण विचार के उदाहरण है। जटिल विचार वैसे विचार को कहा जाता है जो साधारण विचारों या अनुभवों के मिलने से बना होता है। जटिल विचार की उत्पत्ति में प्रतिबिम्बन न कि संवेदन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। लॉक के लिए यह मानसिक सम्मिश्रण तथा विश्लेषण इतना महत्वपूर्ण था कि इससे साहचर्यवादियों एवं आगे चलकर संरचनावादियों ने मनोरसायन के संप्रत्यय का विकास किया।

2. **साहचर्य -** विचारों के साहचर्य से तात्पर्य विचारों के सम्बन्धया संयोग से था। विचार जो प्रायः एक-दूसरे के साथ आते हैं, वे आपस में आसानी से संयोजित हो जाते हैं। लॉक ने बारंबारता के नियम की ओर इशारा किया जो बाद में साहचर्यवाद का एक महत्वपूर्ण नियम बन गया।

3. **द्वैतवाद -** लॉक का द्वैतवाद में विश्वास था। लॉक ने मात्र यह कहा कि मन तथा शरीर दोनों अलग-अलग अपना-अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं। वे किस तरह से सम्बन्धित है, इसे जानने या न जानने से कोई फर्क नहीं पड़ता है।

2.3.3 जार्ज बर्केली

ब्रिटिश अनुभववाद में लॉक का तात्कालिक उत्तराधिकारी जार्ज बर्केली हैं जिनका जन्म 1685 में हुआ था। वे आयरलैंड के थे और इनकी शिक्षा डबलिन के ट्रिन्टी कॉलेज में हुई थी। वे एक काफी धार्मिक व्यक्ति थे और अपने दर्शनशास्त्रीय विचारों को दो प्रमुख पुस्तकों में प्रकाशित किया। पहली पुस्तक का नाम 'एन ऐस्से टूवार्डस ए न्यू थियोरी ऑफ विजन' था जिसका प्रकाशन 1709 में हुआ तथा दूसरी पुस्तक का नाम 'ए ट्रीटाइज कनसरनिंग दी प्रिन्सिपल ऑफ ह्यूमन नॉलेज' था जिसका प्रकाशन 1710 में हुआ। इन दोनों पुस्तकों में लिखे गये तथ्यों के आधार पर उनके योगदानों को जिनका बाद में मनोविज्ञान के विकास में काफी प्रभाव पड़ा, जिसे तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है-

1. नया सिद्धान्त
2. दृष्टि दूरी प्रत्यक्षण
3. अर्थ का सिद्धान्त

1. **नया सिद्धान्त -** इस नये सिद्धान्त में वर्केली द्वारा बताया गया कि व्यक्ति बाह्य दुनिया का ज्ञान किस तरह से प्राप्त करता है। इस नियम या सिद्धान्त के तहत पदार्थ या शरीर के महत्व को नजरअंदाज किया गया है तथा मन को एक वास्तविकता के रूप में स्वीकारा गया है। बर्केली के अनुसार भौतिक तत्व वास्तविक नहीं होते हैं। जब उनका व्यक्ति प्रत्यक्षण कर पाता है, तभी वे वास्तविकता का रूप ले पाते हैं।

2. **दृष्टि दूरी प्रत्यक्षण का सिद्धान्त -** उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अपनी पहली पुस्तक 'एन एस्से....' में किया जिसका प्रकाशन 1709 में हुआ था। बर्केली ने बताया कि वस्तुओं की दूरी के प्रत्यक्षण का कारण विशिष्ट अनुभवों का आपस में साहचर्यित होना है। जैसे, जब हम किसी दूर या नजदीक के वस्तुओं को देखते समय आंख का समायोजन करते हैं, तो कुछ दृष्टि अनुभूतियां स्पर्श एवं गति संवेदन के साथ साहचर्यित हो जाती है। इस तरह के साहचर्य का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति को दूरी का प्रत्यक्षण होता है। इस सिद्धान्त में उन्होंने दूरी के तीन कसौटियों का वर्णन किया है- अभिसरण, धुंधलापन तथा आंखों में तनाव। इन तीन कसौटियों के लिए किए गए वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्याख्या अधिक सुस्पष्ट नही है।

3. **अर्थ का सिद्धान्त** बर्केली के अनुभववाद में मन से पदार्थों की उत्पत्ति होती है। अतः बर्केली के लिए मन द्वारा उत्पन्न विचारों में 'अर्थ' से सम्बन्धित समस्या का समाधान ढूंढना

आवश्यक था। इसके समाधान के रूप में उनका कहना था कि जब विचार एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित हो जाते हैं, तो उनका एक विशेष अर्थ हो जाता है। बर्केली ने यह भी स्पष्ट किया कि मूल विचार नाम की कोई चीज नहीं होती है और इसे शब्दों का भ्रमजाल के अलावा कुछ नहीं कहा जा सकता है।

2.3.4 डेविक ह्यूम

डेविड ह्यूम का जन्म एडिनबर्ग में 1711 में हुआ। दर्शन और साहित्य में उनकी रुचि अधिक होने के कारण वे अन्य विषयों के अध्ययन की ओर कोई रूझान नहीं दिखलाये। मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से उनका सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'ए ट्रीटाइज ऑन ह्यूमन नेचर' था जिसका प्रकाशन 1739 में किया गया। ह्यूम एक संवेदनशील, आत्म-आलोचक, महत्त्वाकांक्षी एवं सामाजिक अनुमोदन के अभिलाषी व्यक्ति थे। चूंकि उनका दर्शनशास्त्री विचार संदेहवादी था, इसलिए लोगों से उन्हें पर्याप्त आदर-सम्मान नहीं मिल पाया। अपने स्वतंत्र विचारों को प्रकट करते हुए ह्यूम 1776 में परलोकवासी बन गए।

मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से उनके महत्त्वपूर्ण योगदानों को निम्नांकित तीन भागों में बांटा है-

1. प्रभाव एवं विचार में अन्तर
2. साहचर्य
3. कारण एवं प्रभाव का सिद्धान्त

1. **प्रभाव एवं विचार में अन्तर** - लॉक के दर्शनशास्त्रीय विचारों से यह स्पष्ट हो रहा है कि विचार के संप्रत्यय के भीतर ही उन्होंने प्रभाव को भी समेट लिया था। परन्तु ह्यूम ने ऐसा नहीं किया। विचार तथा प्रभाव में मुख्य अन्तर उनके सजीवता के ख्याल से है प्रभाव विचार की तुलना में अधिक कमजोर अस्पष्ट एवं धुंधले होते हैं। इसलिए ह्यूम ने विचार को प्रभाव का एक धुंधला कॉपी माना है। ह्यूम के अनुसार प्रभाव एवं विचार में एक कारणात्मक सम्बन्ध होता है।

I. साधारण या सरल विचार प्रभाव के सादृश्य होता है।
II. सरल विचार तथा सरल प्रभाव गत समय में कभी अवश्य ही हुए होंगे।
III. प्रारम्भ में प्रभाव विचार से पहले हुआ करते हैं।
IV. विचार की उत्पत्ति उस समय नहीं होती है जब सम्बन्धित प्रभाव नहीं होते हैं।

2. **साहचर्य** - लॉक तथा वर्केली ने साहचर्य के मात्र दो नियमों का वर्णन किया था- समानता का नियम तथा सामीप्यता का नियम। ह्यूम ने इस सूची में साहचर्य के एक और नियम को जोड़ा। इसे कारण एवं प्रभाव का नियम कहा गया।

3. **कारण तथा प्रभाव का सिद्धान्त** - ह्यूम के मनोविज्ञान का यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है जो यह बताता है कि कारण से कुछ ऐसी क्रियाएं उत्पन्न होती हैं जिनका एक प्रभाव होता है।

I. कारण तथा प्रभाव में समय एवं स्थान के दृष्टिकोण से सामीप्यता होती है। अगर इन दोनों के बीच इस तरह की सामीप्यता नहीं हो, तो कारण का प्रभाव स्पष्ट नही होगा।

II. कारण हमेशा प्रभाव के पहले होता है।

III. कारण तथा उसके प्रभाव में आवश्यक सम्बन्ध होते हैं।

2.4 ब्रिटिश साहचर्यवाद

साहचर्यवाद का आन्दोलन ब्रिटिश अनुभववाद का एक अपवृद्धि है। साहचर्यवादियों का मुख्य बल यह व्याख्या करना था कि किस तरह से विभिन्न विचार आपस में साहचर्यित होते हैं तथा साहचर्य के कितने नियम हैं, आदि-आदि। प्रमुख साहचर्यवादियों जिनका योगदान मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण रहा है, के नाम हैं- डेविड हार्टले, जेम्स मिल तथा उनके सुपुत्र जॉन स्टुआर्ट मिल तथा एलेक्जेण्डर बेन।

2.4.1 डेविड हार्टले

हार्टले, ह्यूम के समवयस्क थे। हार्टले एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। किन्तु ह्यूम की तर ह महान व्यक्ति नहीं थे। वे महत्त्वपूर्ण इसलिए थे क्योंकि उन्होंने ही साहचर्यवाद की स्थापना की थी। हार्टले चिकित्सा पेशा में प्रशिक्षित थे तथा इस पेशे के प्रति उनकी हीनता जीवन भर काफी बनी रही। उन्हें लैटिन का भी ज्ञान था और 1746 में उन्होंने लैटिन भाषा में ही विचारों के साहचर्य पर उत्तम लेख लिखा था। एक तरफ वे लॉक के दर्शनशास्त्रीय विचारधारा से काफी प्रभावित हुए और दूसरे तरफ न्यूटन के उस प्रेक्षण को भी वे महत्त्वपूर्ण मानते थे जिसके अनुसार सभी भौतिक वस्तुओं को गति का एक रूप माना जाता था। इसे न्यूटन का कम्पन सिद्धान्त कहा गया। सचमुच में, हार्टले का मनोविज्ञान लॉक द्वारा प्रतिपादित विचारों के साहचर्य के सिद्धान्त तथा न्यूटन द्वारा प्रतिपादित कम्पन्न के सिद्धान्त का एक संकरण है। हार्टले का सम्पूर्ण मनोविज्ञान उनके मशहूर पुस्तक 'आब्जरवेशन ऑफ मैन'में संकलित है, जिसका प्रकाशन 1749 में हुआ। इस पुस्तक के प्रकाशन के 8 साल बाद उनका देहावसान हो गया।

मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से हार्टले के महत्त्वपूर्ण योगदानों को दो प्रमुख भागों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

I. द्वैतवादी विचारधारा

II. साहचर्य के नियम

1. **द्वैतवादी विचारधारा -** शरीरक्रिया शास्त्री के रूप में हार्टले ने शारीरिक क्रियाओं की व्याख्या में न्यूटन द्वारा प्रतिपादित गति के नियम या सिद्धान्त की उपयोगिता पर बल डाला है। इनका मत था कि संवेदन एवं शारीरिक गतियां मस्तिष्क, सुषुम्ना तथा तंत्रिका पर आधारित होते हैं। किसी वस्तु द्वारा उत्तेजित होने के बाद तंत्रिका में छोटे-छोटे कम्पन होते हैं। इन लघु कम्पनों से व्यक्ति संवेदन होते हैं। जैसे-जब रोशनी से आंख उत्तेजित होते हैं, तो आँख के संचिका में कम्पन उत्पन्न होते हैं, जिसके कारण गति का दृष्टि संवेदन होता है। हार्टले ने यह भी कहा कि मस्तिष्क और सुषुम्ना के तंत्रिका में होने वाले कम्पन से भी छोटे-छोटे कम्पन होते हैं जिसे उन्होंने वाइब्रेटिंकल्सया लघुरूपीय कम्पन कहा। हार्टले ने लघुरूपीय कम्पन को विचार का दैहिक प्रतिरूप माना है।

अत: यह कहा जा सकता है कि संवेदन तथा विचार दोनों ही कम्पन पर आधारित है। संवेदन के लिए कम्पन तंत्रिका में उत्पन्न होता है तथा विचार के लिए कम्पन मस्तिष्क तथा सुषुम्ना में होता है।

2. **साहचर्य के नियम -** हार्टले का मत है कि संवेदनों या विचारों या गतियों या उनमें से सभी में साहचर्य की प्रक्रिया हो सकती है। उनके अनुसार साहचर्य के प्रकार होत हैं- समकालिक साहचर्य तथा आनुक्रमिक साहचर्य। समकालिक साहचर्य के कारण चिन्तन की सिलसिला प्रारंभ होती है तथा आनुक्रमिक साहचर्य के कारण सरल विचार मिलकर जटिल विचार का निर्माण करते हैं। चूंकि साहचर्य में समकालिक एवं आनुक्रमिक दोनों तरह के साहचर्य सम्मिलित होते हैं, अतः इसे मानसिक संयोजक का एक उत्तम आधार भी माना गया। हार्टले के लिए साहचर्य का एक ही नियम था सामीप्यता का नियम। उनका मत था कि जब दो संवेदन एक साथ या बारी-बारी से मस्तिष्क में पहुंचता है तो उससे इस तरह का कम्पन्न उत्पन्न होता है कि सामीप्यता के आधार पर वे एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित हो जाते हैं। जब किसी विचार से एक कम्पन उत्पन्न होता है, तो वह कम्पन दूसरे विचार के कम्पन को अपने आप उत्पन्न कर देता है।

   अतः यह कहा जा सकता है कि हार्टले ने भरसक मानसिक क्रियाओं (विचार) को दैहिक अवस्थाओं (कम्पन) से साहचर्यित करने की कोशिश की है और मस्तिष्क के कम्पित गति के रूप में विचार या मानसिक क्रियाओं का एक दैहिक व्याख्या प्रदान की है। उनके इस विचार को मनोदैहिकी समानान्तरवाद भी कहा जाता है।

2.4.2 जेम्स मिल

जेम्स मिल जन्म से स्कौटिश थे। वे कोई पेशेवर दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक नहीं थे। उनकी अभिरुची इतिहास एवं राजनीतिक में अधिक थी। 1802 में वे सर जॉन स्टुआर्ट के साथ लंदन गए और वहीं उनकी अभिरुची दर्शनशास्त्र में हुई और वे मनोविज्ञान एवं दर्शनशास्त्र के लिए लेखन आरम्भ कर दिये। यही लेखन कार्य उनकी आय के प्रमुख स्रोत थे। 1805 में उनकी शादी हुई और बाद में उन्हें एक पुत्र हुआ जिसका नाम जॉन स्टुआर्ट मिल रखा गया। उनकी दो किताबें प्रकाशित हुई। एक पुस्तक 1829 में जिसका नाम 'एन अनालिसिस ऑफ दी फेनोमेनन ऑफ ह्यूमन माइन्ड'तथा दूसरी पुस्तक जिसका नाम 'दी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'था, का प्रकाशन 1817 में हुआ। इस दूसरी पुस्तक ने उनके भाग्य के बन्द दरवाजे को खोल दिया क्योंकि उससे उन्हें काफी अच्छी आय प्राप्त हुई और ईस्ट इण्डिया कम्पनी में एक उच्च पद भी।

मिल ने यह मत प्रकट किया था कि विचार के साहचर्य की शक्ति परिवर्तित होती रहती है और उन्होंने साहचर्य की शक्ति को मापने के तीन कसौटियों का प्रस्ताव किया है, जो निम्न है -

1. **स्थायित्व -** साहचर्य स्थायी या अस्थायी होते हैं। एक अस्थायी साहचर्य से स्थायी साहचर्य हमेशा मजबूत होते हैं।
2. **निश्चितता -** एक सही विचार के उत्पन्न होने की निश्चितता का गलत विचार के उत्पन्न होने की निश्चितता से अधिक होती है। अतः सही विचार गलत विचार की तुलना में हमेशा मजबूत होता है।

3. **सुसहायता -** सुसहायता से तात्पर्य विचारों के निर्णय में विशेष प्रयास करेने की कमी से या एक तरह की सहज स्वतः प्रवृत्ति से होता है। सहज विचार वैसे विचार से अधिक मजबूत होते हैं जो अत्यधिक प्रयास के फलस्वरूप बनते हैं।

2.4.3 जॉन स्टुअर्ट मिल

जॉन स्टुआर्ट मिल एक दूसरे व्यक्ति थे जिनके प्रयासों से साहचर्यवाद की प्रखरता में वृद्धि हुई। ये जेम्स मिल के सुपुत्र थे। इनकी शिक्षा-दीक्षा स्कूल या कॉलेज में न होकर घर पर ही माता-पिता के निर्देशन में हुई। मनोविज्ञान से सम्बन्धित उनके विचार उनकी प्रसिद्ध पुस्तक लॉजिक में संग्रहित है। इस पुस्तक का प्रकाशन 1843 में हुआ। इसके अलावा मनोविज्ञान के लिए उपयुक्त उनके छिटपुट विचार अन्य दो पुस्तकें जिसका प्रकाशन 1865 तथा 1869 में हुआ, पाया जाता है। 1865 में जिस पुस्तक का प्रकाशन हुआ उसका नाम था- 'एक्जामिनेशन ऑफ सर विलियम हैमिल्टन्स फिलॉसॉफी' तथा 1869 में जिस पुस्तक का प्रकाशन हुआ था, उसका नाम था- 'एनालिसिस ऑफ ह्यूमन माइण्ड'। जॉन मिल के योगदानों को तीन रूप में वर्णित किया गया है -

I. साहचर्य का सिद्धान्त
II. मनो रसायन
III. प्रत्यक्षण का सिद्धान्त

1. **साहचर्य का सिद्धान्त -** जॉन मिल ने अपने पिताश्री द्वारा प्रतिपादित साहचर्य के नियम को स्वीकार तो किया परन्तु उसे अधूरा समझकर उसमें और कई नियमों को जोड़ा। जेम्स मिल के अनुसार साहचर्य का मात्र एक नियम अर्थात् सामीप्यता का नियम ही था उनके पुत्र अर्थात् जॉन मिल ने 1843 में सामीप्यता के अलावा समानता तथा तीव्रता के नियम को भी इसमें सम्मिलित किया। 1865 में इस सूची मे पुनः संशोधन किया गया और साहचर्य के चार नियमों की घोषणा की गयी- समानता, सामीप्यता, बारंबारता तथा अलगाव।
2. **मनोरसायन -** मनोरसायन के इस सिद्धान्त के अनुसार जटिल विचार सरल विचारों का योग नहीं होता है। जब कई सरल विचार आपस में एक साथ मिल जाते हैं, तो इससे जटिल विचार की उत्पत्ति होती है जिसकी अपनी विशेषताएं होती हैं जो किसी भी सरल विचार की विशेषताओं से भिन्न होती है। उसे उन्होंने एक उदाहरण से इस प्रकार व्याख्या किया है- जब सात रंगों को किसी डिस्क पर रखकर जोर से घुमाया जाता है, तो उससे व्यक्ति को उजला रंग दिखाई देता है जो स्पष्टतः सातों रंग से भिन्न होता है।
3. **प्रत्यक्षण के सिद्धान्त -** जॉन मिल का प्रत्यक्षण का सिद्धान्त या जिसे अधिक उपयुक्त भाषा में पदार्थ का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त कहा गया है, में उन्होंने संवेदन तथा प्रत्यक्षण में विभेद कर प्रत्यक्षण के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। जॉन मिल के प्रत्यक्षण सिद्धान्त के अनुसार यह कहा जा सकता है कि संवेदन क्षणिक एवं अस्थायी होता है जबकि प्रत्यक्षण स्थायी होता है क्योंकि प्रत्यक्षण सम्भावी संवेदनाओं पर आधारित होता है। मनोविज्ञान के इतिहास में जॉन मिल का यह सिद्धान्त दो कारणों से महत्वपूर्ण है -

I. इस सिद्धान्त में साहचर्य, संवेदनाओं एवं पदार्थों के क्किास की संभावनाएं प्रस्तुत करता हैं। मन को किसी पदार्थ के अस्तित्व का प्रत्यक्षण इसलिए हो पाता है क्योंकि कई संभावी संवेदनाएं आपस में साहचर्यित हो जाती है।

II. इस सिद्धान्त जिसमें संवेदन के स्थायी संभावनाओं पर बल डाला गया है, में प्रत्यक्षण के आधुनिक सिद्धान्त की पूर्वकल्पना की गयी है। प्रत्यक्षण के बारे में आधुनिक विचार यह है कि व्यक्ति उन्हीं वस्तुओं को देखता है जिसे वह देखने की इच्छा करता है। उनके बिना संवेदन का अनुभव किये ही व्यक्ति उस संवेदन की संभावना से अवगत हो सकता है। इस तर्ज पर यह बतलाया गया कि व्यक्ति चेतन में किसी वस्तु या घटना के प्रतिनिधि के उपस्थित हुए बिना ही उसके अर्थ को समझ सकता है। इस तथ्य का महत्व उर्जवर्ग स्कूल तथा टिचेनर के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हुआ।

2.4.4 एलेक्जेण्डर बेन

एलेक्जेण्डर बेन का जन्म स्कॉटलैंड के एक गरीब परिवार में 1818 ई. में हुआ। गरीबी के कारण इनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा अस्त-व्यस्त रही। स्कॉटलैंड के विश्वविद्यालय के उच्च पद नहीं मिलने के कारण वे लंदन चले आये और जॉन स्टुआर्ट मिल से इनकी पहचान बढ़ी। इनकी संगति में आने से उनमें दर्शनशास्त्र की ओर झुकाव बढ़ा। उन्होंने जॉन स्टुआर्ट मिल को उनकी पुस्तक 'लॉजिक' के संशोधन में भी काफी मदद किया। इन्होंने अपनी तीन प्रमुख पुस्तकों का प्रकाशन किया। इनकी पहली पुस्तक 'दी सेन्सेज एण्ड दी इन्टेलेक्ट' थी जिसका प्रकाशन 1855 में किया गया, दूसरी पुस्तक 'दी इमोसन्स एण्ड दी विल' थी जिसका प्रकाशन 1859 में किया गया तथा तीसरी पुस्तक 'माइन्ड एण्ड वॉडी' थी जिसका प्रकाशन 1872 में किया गया। 1876 में उन्होंने एक जरनल का भी शुभारम्भ किया जो संसार का पहला मनोवैज्ञानिक जरनल था।

मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से बेन के प्रमुख योगदानों को निम्न चार भागों में बांटकर उपस्थित किया जा रहा है -

I. मनोदैहिक समानान्तरवाद
II. शरीरक्रिया मनोविज्ञान
III. साहचर्यवाद का सिद्धान्त
IV. इच्छा का सिद्धान्त

1. **मनोदैहिक समानान्तरवाद -** बेन का मत है कि प्रत्येक मानव कार्य के दो पहलू होते हैं- दैहिक पक्ष तथा मानसिक पक्ष। प्रत्येक शारीरिक क्रिया के समानान्तर एक मानसिक क्रिया होती है। अतः ये दोनों क्रियाएं एक-दूसरे के समानान्तर चलने वाली होती है। शारीरिक क्रियाएं एक ऐसी तंत्र के तहत कार्य करती है जिनमें कारण तथा परिणाम करीब-करीब परिमाणात्मक रूप से तुल्य होते हैं। ऐसी तुल्यता मानसिक क्रियाओं में नहीं पायी जाती है। परंतु वे स्वयं ही इस तरह के समानान्तरवाद के प्रति स्पष्ट नहीं थे।
2. **शरीरक्रिया मनोविज्ञान -** बेन ने मस्तिष्क तंत्रिका तथा ज्ञानेन्द्रियों का विस्तृत अध्ययन किया और पूरे साहचर्यवाद को शरीरक्रिया परिणामों पर आधारित किया। इन्होंने प्रतिवर्त चाप तथा मूलप्रवृत्तियों को व्यवहार का प्रमुख तत्व माना। अरस्तू द्वारा बतलाये गए पांच ज्ञानेन्द्रियों की सूची में 'आंगिक' की श्रेणी को अलग से उन्होंने जोड़ा इससे उनका तात्पर्य मांसपेशीय संवेदनाओं से था जो भूख, प्यास एवं अन्य आन्तरिक अवस्थाओं में सम्मिलित होते हैं। उन्होंने बताया कि किस तरह से मांसपेशियां विरोधी युग्मों में संगठित होकर कार्य करती है। इन सब

कारणों से बोरिंग ने सुझाव दिया है कि एलेक्जेण्डर बेन पहले आधुनिक शरीरक्रिया मनोविज्ञानी थे।

3. **साहचर्यवाद का विज्ञान -** बेन ने यह मत व्यक्त किया है कि वैसे साहचर्य जो वैयक्तिक रूप से गत अनुभूति या संवेदन को उत्पन्न करने के ख्याल से काफी कमजोर होते हैं, वे एक साथ आपस में मिलकर अपने इस उद्देश्य में भी कामयाब हो जाते हैं। इसे बेन ने संयोजित साहचर्य की संज्ञा दिया है। इसी संयोजित साहचर्य की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करनेके लिए उन्होंने समानता के नियम का का प्रतिपादन किया। उन्होंने आगे कहा कि वे ही साहचर्य आपस में मिलते हैं, जो एक-दूसरे के समान होते हैं। इस तरह के साहचर्य से मन नये संयोग या समुच्चय बनाने की क्षमता विकसित कर लेता है जिसकी जरूरत स्मृति, चिन्तन आदि में होता है। परन्तु समानता का नियम उतना लोकप्रिय नहीं हो सका।

4. **इच्छा का सिद्धान्त -** बेन का मत था कि क्रियाएं स्वतः प्रवर्तित होती हैं। जब कोई भी क्रिया बाहरी उत्तेजना से प्रभावित हुए बिना ही उत्पन्न होती है तो इस क्रिया को स्वतः प्रवर्तित कहा जाता है। प्रतिवर्त क्रियाएं तथा मूलप्रवृत्तिक क्रियाएं इसके उदाहरण हैं। इस तरह की क्रियाएं तन्त्रिका तंत्र द्वारा नियन्त्रित होती हैं। आगे बेन ये भी स्पष्ट किया कि सभी क्रिया में वास्तविक गति सम्मिलित होती है। बेन के साहचर्यवाद में आधुनिक मनोविज्ञान के कई पहलुओं के बारे में अंदाज लगाया जा चुका था। उनके इस अवधि में साहचर्यवाद इस बिन्दु पर पहुंच गया कि उसे आसानी से प्रयोगात्मक परिपेक्ष्य में समझा जा सके। अत: कहा जा सकता है कि दर्शनशास्त्रीय अनुभववाद को मनोवैज्ञानिक साहचर्यवाद में बदलने का अधिकतम श्रेय बेन को ही जाता है।

2.5 सारांश

इस अध्याय में ब्रिटेन के अनुभववादी एवं साहचर्यवादी मनोवैज्ञानिकों द्वारा मनोविज्ञान में दिये गये उनके योगदानों पर प्रकाश डाला गया है। अनुभववादी मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के विचार किस प्रकार बनते हैं, उनके साहचर्य के नियम, संवेदनाओं, स्मृतियों आदि पर जानकारी दी। वहीं साहचर्यवादी मनोवैज्ञानिकों ने मन की रचना के दो तत्व - संवेदन और विचार होते हैं, बताया। साथ ही संदर्भ सिद्धान्त की व्याख्या की। मानसिक क्रियाओं और उनकी सहजता पर बल दिया गया। इस प्रकार दोनों ही विचारों वालों मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

2.6 बोध प्रश्न

1 मनोविज्ञान के विकास में जान लॉक एवं जार्ज वर्केली के योगदान का वर्णन कीजिये?

2 साहचर्यवादी मनोवैज्ञानिकों में से किन्हीं दो योगदान की व्याख्या कीजिये।

3 एलेक्जेण्डर बेन द्वारा मनोविज्ञान के विकास में किये गये योगदानों का उल्लेख कीजिए।

4 कारण एवं प्रभाव का सिद्धान्त किसने दिया विस्तार से समझाइये।

2.7 संदर्भ सूची

- Wolman, B.E. (1979), Contemporary Theories and Systems in Psychology, Delhi : Freeman Book Co.

- Ram Nath Sharma : Applied Psychology.
- Shukla, K.C., Applied Psychology, Common Wealth Publishers.
- सिंह, डॉ. अरूण कुमार, सिंह, डॉ. आशीष कुमार (2009), 'मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, छठा संशोधित संस्करण
- डॉ. ए. रहमान, मनोविज्ञान का इतिहास
- राज कुमार ओझा, मनोविज्ञान का इतिहास, उदयपुर

इकाई - 3

शरीर क्रिया विज्ञानी का योगदान

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 शरीरक्रिया विज्ञान का विकास

3.3.1 संवेदी एवं पेशीय तन्त्रिका: बेल एवं मेगेनडाई

3.3.2 विशिष्ट तन्त्रिका ऊर्जा: जोहान्स मूलर

3.4 तंत्रिका आवेगों का आरभिक अध्ययन: इसके वैद्युतीय स्वरूप एवं वेग

3.4.1 कपाल विज्ञान: फ्रैंज जोसेफ गाल

3.4.2 मस्तिष्क के कार्यों का स्थान निर्धारण: फ्लोरेंस तथा ब्रोका

3.5 प्रतिवर्त क्रिया तथा प्रतिक्रिया समय

3.5.1 संवेदांग शरीर क्रिया विज्ञान: हेल्महोल्ज

3.5.2 इवाल्ड हेरिंग

3.6 सारांश

3.7 बोध प्रश्न

3.8 संदर्भ सूची

3.1 प्रस्तावना

शरीर क्रिया विज्ञान का विकास के अन्तर्गत सर चार्ल्स बेल, स्नायु प्रवाह के प्रारंभिक अध्ययनों, फ्रैंज जोसेफ गॉल, मस्तिष्क का दैहिक अध्ययन, जोहान्स मूलर तथा विशिष्ट तन्त्रिका ऊर्जा, हेमहोल्ज, हेरिंग आदि के योगदानों तथा उनका आधुनिक मनोविज्ञान पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जा रहा है। शरीरक्रिया वैज्ञानिकों के योगदान प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण रहे। मस्तिष्क की संरचना, तन्त्रिका आवेगों, स्नायुतन्त्र की बनावट तथा उनके कार्यों पर विवेचना की जाएगी।

3.2 उद्देश्य

शरीरक्रिया विज्ञान का मनोविज्ञान पर सार्थक प्रभाव पड़ा है। शरीर में होने वाली संवेदी एवं पेशीय तन्त्रिका क्रिया, विशिष्ट तंत्रिका उर्जा, तन्त्रिका आवेगों एवं मस्तिष्क की जटिल क्रियाओं के स्वरूप को समझना आवश्यक है। प्रतिवर्त क्रिया के अन्तर्गत श्वसन गति, एच्छिक गतियों तथा अनैच्छिक गतियों की क्रियाओं की व्याख्या की गई है। साथ ही हेल्महोल्ज ने दृष्टि रंग सिद्धान्त का प्रतिपादन

किया जो कि मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जिन मनोवैज्ञानिकों ने इन विषयों पर योगदान दिया उनका वर्णन आगे किया जा रहा है।

3.3 शरीरक्रिया विज्ञान का विकास

आधुनिक मनोविज्ञानिकों ने मनोविज्ञान की उत्पत्ति को जीवविज्ञान के कुछ शाखाओं से जोड़ा है। यही कारण है कि कुछ लोग तो मनोविज्ञान को जीवविज्ञान की ही एक शाखा मानते हैं। मनोविज्ञान जीवविज्ञान की शाखा हो या न हो, लेकिन जीवविज्ञान का मनोविज्ञान पर सार्थक प्रभाव पड़ा है तथा इन प्रभावों से भी मनोविज्ञान का स्वरूप बहुत हद तक प्रयोगात्मक हुआ है। शरीरक्रिया विज्ञान के प्रभावों को कई वैज्ञानिकों के योगदानों द्वारा दिखलाया गया है। मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से इस क्षेत्र में जो कुछ भी प्रमुख विकास हुए हैं, उन्हें प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है -

1. संवेदी एवं पेशीय तंत्रिका- बेल एवं मेगेनडाई
2. विशिष्ट तंत्रिका ऊर्जा: जोहान्स मूलर
3. तंत्रिका आवेगों का आरम्भिक अध्ययन: इसके वैद्युती स्वरूप का वेग
4. कपाल विज्ञान: फ्रैज जोसेफ गॉल
5. मस्तिष्क में कार्यों का स्थान निर्धारण: फ्लोरेन्स तथा ब्रोका
6. प्रतिवर्त क्रिया तथा प्रतिक्रिया समय
7. संवेदांग शरीरक्रिया विज्ञान: हेल्महोल्ज एवं हेरिंग

3.3.1 संवेदी एवं पेशीय तंत्रिका: बेल एवं मेगेनडाई

सर चार्ल्स बेल एक योग्य एवं प्रखर बुद्धि के स्कौटिश शरीर-क्रिया विज्ञानी थे। वे एक उत्तम शल्य चिकित्सक तथा शरीरशास्त्री भी थे। यद्यपि उनका जन्म एडिनवर्ग में हुआ था। वे संवेदी तंत्रिका तथा पेशीय तंत्रिका के बीच अन्तर करने के लिए मशहूर हैं। वेल का मत है कि संवेदी तंत्रिका तथा पेशीय तंत्रिका कार्यात्मक रूप से तथा रचना की दृष्टिकोण से एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। इसे बेल नियम कहा गया और बाद में इसे बेल-मेगेनडाई नियम कहा गया क्योंकि फ्रेन्कोइस मेगेनडाई जो एक फ्रेंच शरीरक्रिया वैज्ञानिक थे, इसी तरह की खोज स्वतंत्र प्रयोग करके की थी। 1811 में बेल ने तंत्रिका के विशिष्ट ऊर्जा सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

1. एक उद्दीपक विभिन्न तरह की तंत्रिका को उत्तेजित करके विभिन्न तरह का संवेदन उत्पन्न करता है। जैसे- यदि आंख, कान एवं सिर की त्वचा पर समान रूप से हल्का चोट किया जाए, तो व्यक्ति को क्रमशः प्रकाश की बिम्ब, झनकने की आवाज तथा दर्द का अनुभव होगा।

2. अगर विभिन्न उद्दीपक एक ही तंत्रिका को उत्तेजित करता है, तो प्रत्येक उत्तेजन में एक ही तरह का संवेदन उत्पन्न होगा। जैसे- अगर रोशनी आंख पर पड़ती है, तो इससे दृष्टि संवेदन होती है।

विशिष्ट ऊर्जा का सिद्धान्त यह बतलाता है कि प्रत्येक तंत्रिका द्वारा एक विशेष गुण वाला संवेदन की उत्पत्ति होती है और ये गुण तंत्रिका की संरचना तथा कार्य पर निर्भर करता है न कि उद्दीपक की विशेषताओं पर।

3.3.2 विशिष्ट तंत्रिक ऊर्जा: जोहान्स मूलर

जोहान्स मूलर का जन्म 1801 में जर्मनी में हुआ। 1822 में उन्होंने बॉन विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। उनकी सबसे प्रमुख पुस्तक 'हैण्डबुक ऑफ फिजीयोलॉजी' जिसका पहला संस्करण 1833 में, दूसरा संस्करण 1834 में तथा तीसरा संस्करण 1840 में प्रकाशित हुए। मूलर के सबसे महत्त्वपूर्ण शोधों मे आँख के बाह्य मांसपेशियों के साथ तथा दिक् प्रत्यक्षण के जन्मजात स्वरूप के क्षेत्र में किये गए शोध हैं। मूलर का दूसरा महत्त्वपूर्ण योगदान प्रतिवर्त क्रिया का प्रयोगात्मक अध्ययन है। जिसके तीन चरण हैं -

I. ज्ञानेन्द्रिय से स्नायु प्रवाह का उत्पन्न होकर पृष्ठीय जड़ के माध्यम से तंत्रिका केन्द्र तक जाना।
II. सुषुम्ना में सम्बन्ध स्थापित होना।
III. सुषुम्ना से ऊपरी जड़ द्वारा स्नायु प्रवाह का निकलकर मांसपेशियों तक जाना।

मूलर का तीसरा महत्वपूर्ण योगदान तंत्रिका के विशिष्ट ऊर्जा का सिद्धान्त है जिसका प्रतिपादन तो बेल द्वारा ही कर दिया गया था परन्तु उसका अधिक मनोवैज्ञानिक एवं स्पष्ट व्याख्या मूलर द्वारा किया गया। मूलर ने इस सिद्धान्त की व्याख्या निम्न छः विभिन्न नियमों के रूप में किया है -

1. तंत्रिका मन एवं प्रत्यक्षित वस्तु के बीच माध्यम के रूप में कार्य करता है।
2. पांच तरह के तंत्रिका होते हैं और मन पर प्रत्येक तंत्रिका अपने विशिष्ट गुणों की छाप छोड़ता है।
3. एक ही उद्दीपक यदि विभिन्न तंत्रिका को उत्तेजित करता है, तो प्रत्येक उत्तेजक से सम्बन्धित तंत्रिका के विशिष्ट गुण उत्पन्न होते हैं।
4. चूंकि मन मस्तिष्क में अवस्थित होता है, बाह्य एवं आन्तरिक उद्दीपकों में तुल्यता होती है। अतः मूलर मन को बाह्य घटनाओं के तुल्य बनाने की कोशिश किया है।
5. संवेदांगों को भौतिक उद्दीपकों से निश्चिततया सम्बध किया है।
6. मन को तंत्रिकाओं के विशिष्ट ऊर्जाओं पर कुछ चयनात्मक शक्ति प्राप्त होती है जिसके परिणामस्वरूप, उसका संवेदन पर सीधा नियंत्रण होता है। यही कारण है कि व्यक्ति उद्दीपक के कुछ अंश पर ध्यान देता है तथा कुछ पर अपनी इच्छानुसार वह ध्यान नहीं देता है। मूलर के इस अन्तिम नियम से आगे चलकर उच्चतर मानसिक प्रक्रिया के क्षेत्र में काफी शोध किये गए।

मूलर ने मन-शरीर समस्या के समाधान के सिलसिले में कोई ठोस कदम नहीं उठाया। अगर मूलर के सिद्धान्त से कुछ उत्तम तथ्य प्राप्त हुआ है तो वह मात्र इतना ही है कि उनके सिद्धान्त के आधार पर दृष्टि एवं श्रव्य के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने में आगे चलकर कुछ सुविधा अवश्य हुई है।

3.4 तंत्रिका आवेग आरम्भिक अध्ययन: वैद्युतीयस्वरूप

18वीं शताब्दी के अन्त में लुईगी गालवानी स्नायु प्रवाह के स्वरूप को दिखलाने के लिए मेढ़क के पैर को उत्तेजित करके प्रयोग करना प्रारंभ किए। उन्होंने बताया कि मेढ़क के तंत्रिका के कटे हुए भाग को विभिन्न वस्तु के बने शलाकों से जोड़कर मेढ़क के पैर में पदाघात उत्पन्न करना सम्भव है। 1791 में वे मेढ़क के पैर से भींगी-कोशा बैट्री विकसित किये। मेढ़क पर इस तरह के कई प्रयोगों के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पशु उत्तक से विद्युत उत्पन्न होता है। 1800 में एलेसान्ड्रो वोल्टा ने यह दिखलाया कि गालवानी के प्रयोगों में बिजली के उत्पन्न होने के कारण दो विभिन्न धातुओं को व्यवहृत किया जाना है तथा मेढ़क की मांसपेशियां सिर्फ वैद्युतीय अन्तःशक्ति का संसूचक है। इसे वोल्टा तथा गालवानी के दाबों में विवाद हो गया जिसका अन्तिम समाधान एलेक्जेण्डर ऊमबोल्ड द्वारा किया गया जिन्होंने बताया कि सचमुच में दो तरह के मिलते-जुलते विद्युत होते हैं- आन्तरिक पशु विद्युत तथा द्विधातुक विद्यु त।

कुछ वैज्ञानिकों जैसे-जोहान्स मूलर को यह विश्वास था कि स्नायु प्रवाह का संचरण को मापना सम्भव नहीं है क्योंकि वह बहुत तीव्र होता है। मूलर ने यह भी कहा था कि स्नायु आवेग की वेग निश्चित रूप से रोशनी के वेग के तुल्य होती है। लेकिन 1850 में हरमान हेल्महोल्ज ने तन्त्रिका आवेग के वेग को मापा और इसे रोशनी के वेग से काफी कम बतलाया। इनके निष्कर्ष के अनुसार मेढ़क के पेशीय तन्त्रिका में यह वेग प्रति सेकण्ड 50 मीटर था। व्यक्ति के संवेदी तन्त्रिका में स्नायु आवेग की वेग 50 से 100 मीटर प्रति सेकण्ड बतलायी गयी। इन सभी मापनों के आधार पर बाद के वैज्ञानिकों को कुछ विशेष अनुसंधान करने में अधिक मदद मिली। ऐसे अनुसंधानों में दुर्जेय अवस्था तथा 'सम्पूर्ण-या-बिल्कुल-नहीं' नियम की खोज की प्रधानता थी। तन्त्रिका के दुर्जेय अवस्था से तात्पर्य एक ऐसी अवस्था से होती है जिसमें आवेग के उत्पन्न होने के बाद तन्त्रिका थोड़े समय के लिए अउत्तेजन की अवस्था में होती है। आराम के दौरान फिर धीरे-धीरे प्रतिप्राप्ति होती है। 'सम्पूर्ण-या-बिल्कुल नहीं' का नियम यह बतलाता है कि उत्तेजित होने के बाद तन्त्रिका तन्तु पूर्णतः निरावेशित हो जाती है।

3.4.1 कपाल विज्ञान: फ्रैंज जोसेफ गाल

फ्रैंज जोसेफ गाल जिनका जन्म वियाना में हुआ था। वे एक शरीररचना विज्ञानी थे जो मस्तिष्क में विभिन्न कार्यों के स्थाननिर्धारण के अध्ययन में अभिरुचि रखते थे। मनोविज्ञान के प्रसिद्ध इतिहासकार बोरिंग का है कि जब गाल स्कूल में पढ़ते थे, तो वे अपने दोस्तों के मस्तिष्क के बनावट तथा उनके व्यक्तित्वशील गुणों के बीच एक सम्बन्ध ढूंढने का स्पष्ट प्रयास करते थे। उस समय वे पूर्ण विश्वास के साथ यह कहा करते थे, जिन व्यक्तियों की आंखें बड़ी-बड़ी होती है, उनकी स्मरण शक्ति अधिक तीक्ष्ण होती है।

गाल द्वारा प्रतिपादित कपाल विज्ञान की तीन प्रतिज्ञप्ति हैं, जो इस प्रकार है -

I. मस्तिष्क के भीतरी भाग में संरचनाओं के समाकृति के अनुरूप खोपड़ी के बाहरी हिस्से का निर्माण होता है।

II. स्कोटिश स्कूल के थॉमस रीड तथा डुगलस स्टीवार्ट द्वारा प्रस्तावित मस्तिष्क के विभिन्न मनःशक्तियों को गाल ने स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप स्पुरजीम के परिवर्द्धित कपाल

विज्ञान ने यह स्पष्टतः स्वीकार किया कि मस्तिष्क को सही-सही 37 कार्यों या मनःशक्तियों में बांटा जा सकता है।

III. ये सभी 37 मनःशक्तियाँ मस्तिष्क के 37 विभिन्न भागों में अवस्थित होते हैं। किसी भी विशेष कार्य की श्रेष्ठता होने पर मस्तिष्क के सम्बन्धित क्षेत्र में उभार आ जाती है।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में इससे मस्तिष्क के कार्यों एवं संरचनाओं से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण शोध आरम्भ किये गए।

3.4.2 मस्तिष्क कार्यों का स्थान निर्धारण: फ्लोरेंस तथा ब्रोका

फ्लोरेंस एक शरीरक्रिया विज्ञानी थे। वे पेरिस में शरीरक्रिया विज्ञान के प्राचार्य के पद पर कार्यरत थे। इनकी मुख्य अभिरुची मस्तिष्क के कार्यों के बारे में जानना था। उन्होंने अपना प्रयोग कबूतरों पर ही अधिक किया है।

कई प्रयोगों के आधार पर फ्लोरेंस इस परिणाम पर पहुंचे कि मस्तिष्क के विभिन्न भाग की विशेषताएं कार्य एवं गुण अलग-अलग होती हैं। मस्तिष्क में कार्यों के इस तरह के स्थान निर्धारण के बावजूद स्नायुमंडल समग्र रूप से कार्य करता है। उसमें सम्पूर्ण समन्वय पाया जाता है। इस परिणाम का आधार यह था कि मस्तिष्क से निकाले गए अंग का कार्य मस्तिष्क के दूसरे अंगों द्वारा धीरे -धीरे सम्पन्न किया जाने लगा है। फ्लोरेंस के शोध कार्यों के आधार पर निम्न परिणाम मुख्य रूप से सामने आए -

I. मन का केन्द्र मस्तिष्क होता है तथा मनोविज्ञान या मनोवैज्ञानिक कार्यों को समझने के लिए शरीर की संरचना का ज्ञान आवश्यक है।

II. अध्ययनों की सही विधि प्रयोगात्मक विधि है न कि हार्टले द्वारा प्रतिपादित आराम कुर्सी चिन्तन।

फ्लोरेंस के बाद मस्तिष्क की संरचना तथा कार्य का अध्ययन थोड़ा धीमा पड़ गया और उसके बाद इसमें पॉल ब्रोका के प्रयासों से तेजी आयी। इन्होंने 1861 ई. में भाषा क्षेत्र के बारे में एक महत्वपूर्ण रहस्योद्घाटन किया जो यह था कि बायें मस्तिष्कीय गोलार्द्ध के बगल में भाषा केन्द्र अवस्थित होता है। इस क्षेत्र को बाद में ब्रोका क्षेत्र कहा गया। ब्रोका द्वारा इस क्षेत्र की खोज एक विशेष प्रयोग पर आधारित है। ब्रोका के इस दावे का समर्थन दो अन्य जर्मन शरीरक्रिया विज्ञानियों अर्थात् फ्रिट्श तथा हिटजिग द्वारा 1870 ई. में किया गया। इस तरह से 1870 ई. के दशाब्दी के समाप्त होते-होते मस्तिष्क में पेशीय केन्द्रों का भी पता चल गया। कॉर्टेक्स के पीछे अर्थात् दृष्टि पालि में दृष्टि संवेदन अवस्थित होता पाया गया, कॉर्टेक्स के बगल में अर्थात् शंखपालि में श्रव्य संवेदन अवस्थित होता पाया गया तथा शारीरिक संवेदनाएं उत्तरकेन्द्रीय भाग में अवस्थित पाए गए।

3.5 प्रतिवर्त क्रिया तथा प्रतिक्रिया समय

प्रतिवर्त क्रिया से तात्पर्य वैसी क्रिया से होती है जो किसी उद्दीपक के प्रति स्वतः तथा अनैच्छिक रूप से हो जाता है। मार्शल हॉल ने उन्नीसवीं शताब्दी के पहले भाग में प्रतिवर्त क्रिया पर महत्वपूर्ण प्रयोग किये तथा परिणामस्वरूप चार तरह के शारीरिक गतियों में अन्तर किया जो इस प्रकार है -

I. ऐच्छिक गति - ऐच्छिक गति वैसे गति को कहा जाता है जो चेतन तथा लघु मस्तिष्क पर आधारित होता है।

II. श्वसन गति - इस तरह की गति से तात्पर्य वैसे गति से होता है जो मेडुला पर निर्भर करता है तथा स्वभाव से अनैच्छिक होते हैं।

III. अनैच्छिक गति - ऐसे गति से तात्पर्य उन गतियों से होता है जो प्रत्यक्ष उत्तेजनों द्वारा उत्पन्न पेशीय उत्तेजनशीलता पर निर्भर करता है।

IV. प्रतिवर्त गति - इस तरह की गति सुषुम्ना पर आधारित होती है परन्तु मस्तिष्क तथा चेतन से स्वतंत्र होती है। अतः प्रतिवर्त क्रियाएं अचेतन रूप से होती है।

पलफ्लूगर ने 1853 ई. में हॉल के इस विचार का विरोध किया कि प्रतिवर्त क्रियाएं सिर्फ सुषुम्ना द्वारा नियंत्रित होती है एवं अचेतन होती है। पलफ्लूगर का मत था कि सुषुम्ना तथा मस्तिष्क के कार्य में अन्तर करना सम्भव नहीं है। अत: प्रतिवर्त क्रियाएं सुषुम्ना तथा मस्तिष्क दोनों द्वारा ही नियंत्रित होती है।

3.5.1 संवेदांग शरीरक्रिया विज्ञान: हेल्महोल्ज एवं हेरिंग

हेल्महोल्ज का पूरा नाम हरमान लुडविग फेरडिनैण्ड वॉन हेल्महोल्ज था जो सामान्यतः हरमान वॉन हेल्महोल्ज से अधिक लोकप्रिय थे। इनका जन्म 1821 ई. में बर्लिन के निकट पोस्टडैम में हुआ था। चिकित्साशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। प्रकाश विज्ञान तथा ध्वनिकी के दैहिक अध्ययनों में अभिरुचि के कारण उन्होंने एक शरीरक्रिया विज्ञानी के रूप में भी महत्वपूर्ण कार्य किये। 1849 ई. में उन्हें शरीरक्रिया विज्ञान के प्राचार्य के पद पर निगसवर्ग विश्वविद्यालय में नियुक्ति किया गया। 1917 ई. में मैगनस की मृत्यु हो गयी। उनके महत्वपूर्ण योगदानों को चार भागों में बांटकर उपस्थित कर रहे हैं-

1. संवेदांग शरीरक्रिया विज्ञान
2. हेल्महोज का अनुभववाद
3. अचेतन अनुमान
4. प्रत्यक्षण का सिद्धान्त

1. संवेदांग शरीरक्रिया विज्ञान – 1850 ई. में हेल्महोल्ज के कार्यों को ख्याति मिली। जब उन्हें स्नायु प्रवाह की गति को मापने में सम्पूर्ण सफलता मिल गयी। मांसपेशीय संकुचन को मापने के लिए एक विशेष उपकरण जिसे माइयोग्राफ कहा जाता है, उसका निर्माण हेल्महोल्ज द्वारा किया गया। इस उपकरण की सहायता से वे मेढ़क के पेशीय तन्त्रिका के आवेग को माप सकने में समर्थ हुए।

हेल्महोल्ज का दूसरा महत्वपूर्ण योगदान दृष्टि तथा श्रवण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाना है। 1851 ई. में हेल्महोज ने एक विशेष उपकरण का निर्माण किया था जिसे ऑपथेलमोस्कोप कहा गया और इसके सहारे वे प्रयोज्य के आंख में सीधे देखने का कार्य कर सकते थे। 1851 ई. में वे रंग दृष्टि का एक सिद्धान्त का एक सिद्धान्त बताया जिसे रंग दृष्टि का यंग-हेल्महोल्ज सिद्धान्त कहा जाता है। हेल्महोल्ज ने कहा कि दृष्टि तन्त्रिका के भीतर तीन विशिष्ट तन्तु होते हैं, जो तीन तरह के शुद्ध रंग के तरंगदैर्ध्य के प्रति अनुक्रियाशील होते हैं- लाल, हरा एवं नीला। प्रत्येक तन्तु एक विशेष तरंगदैध्र्य से सर्वाधिक प्रभावित होता है तथा स्पेक्ट्रम पर के ठीक अगले तरंगदैध्र्य द्वारा कम-से-कम प्रभावित होते हैं। फिर भी बगल वाले तरंगदैध्र्य अन्य दोनों तन्तुओं को प्रभावित करते हैं

जिसके कारण हम मिश्रित रंग देखते हैं। उदाहरणस्वरूप- हम लोग पीला रंग इसलिए देख पाते हैं कि लाल और हरा के उत्तेजक आपस में मिश्रित हो जाते हैं। जब ये तीनों रंग सन्तुलित ढंग से मिश्रित होते हैं तो हमें धूसर रंग का संवेदन होता है। इस सिद्धान्त में यह भी माना गया है कि मस्तिष्क में कुछ विशिष्ट क्षेत्र होते हैं जो इन तीनों रंगों या उनके मिश्रण की संवेदना उत्पन्न करने के लिए विशेष रूप से सक्षम होते हैं।

1863 ई. में हेल्महोल्ज ने Tonempfindungen का प्रकाशन किया जिसमें उन्होंने श्रव्य के एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा बताया कि अन्तःकर्ण में जो वेसिलर मेमब्रेन होता है वो ही व्यक्ति द्वारा प्रत्यक्षित सभी तरह के स्वर एवं प्रबलता में होने वाले परिवर्तन के लिए जिम्मेवार होता है। बेसिलर मेमब्रेन कई ऐसे तंत्रिका तन्तु से जुड़े होते हैं, जो मस्तिष्क के श्रवण क्षेत्र में समाप्त होते हैं। हेल्महोल्ज का मत था कि प्रत्येक ऐसे तंत्रिका तन्तु विशेष स्वर एवं प्रबलता उत्पन्न करने वाले आवाज के प्रति सक्षम होता है।

2. **हेल्महोल्ज का अनुभववाद -** हेल्महोल्ज ने ब्रिटिश अनुभववादियों के विचारों को समर्थन प्रदान किये। हेल्महोल्ज ने लॉक के इस सिद्धान्त को सही ठहराया कि मन की कोरी पट्टी के समान होता है जिस पर अनुभव से कुछ लिखा जाता है। वे यह सिद्ध करने में जुटे रहे कि जितनी भी स्वयंसिद्धियां हैं वे सभी व्यक्ति के अनुभव द्वारा निर्धारित होती है। हेल्महोल्ज के इस तरह के अनुभववादी चिन्तन से प्रत्यक्षण में सहजवाद तथा अनुभववाद के दावों से वाद-विवाद उत्पन्न हो गयी जिसमें लौज, हेल्महोल्ज तथा वुण्ट अनुभववाद के पक्षधर थे तथा मूलर, हेरिंग तथा स्टुम्प सहजवाद के पक्षधर थे।

3. **अचेतन अनुमान -** अचेतन अनुमान का सिद्धान्त हेल्महोल्ज द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षण के सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण भाग है। इनका यह सिद्धान्त अनुभववाद में उनके विश्वास के फलस्वरूप प्रतिपादित किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार जब व्यक्ति प्रत्यक्षण करता है तो उसक प्रत्यक्षणात्मक अनुभूति में कुछ ऐसी अनुभूतियां भी होती है जिसमें न तो उद्दीपक का योगदान होता है और न ही ज्ञानेन्द्रिय का बल्कि हमारी गत अनुभूतियां अचेतन रूप से उसमें योगदान करती हैं जिससे प्रत्यक्षण में स्पष्टता आती है। शायद यही कारण है कि इसे अचेतन अनुमान का सिद्धान्त कहा जाता है। हेल्महोल्ज के अनुसार अचेतन अनुमान के निम्नांकित तीन विशेषताएं हैं-

   I. **अचेतन अनुमान अप्रतिरोधनीय होता है -** इसका अर्थ है कि जब हम प्रत्यक्षण करते हैं, तो उत्पन्न प्रत्यक्षणात्मक अनुभूतियां अपने आप मन में आ जाती है। किसी चेतन प्रक्रिया द्वारा उसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

   II. **अचेतन अनुमान अनुभव द्वारा निर्धारित होते हैं -** हेल्महोल्ज का मत था कि अचेतन पहले चेतन होता है तथा साहचर्य एवं पुनरावृत्ति के नियम के सहारे, वह अचेतन अनुमान में विकसित हो जाती है।

   III. **चेतन अनुमान के समान अचेतन अनुमान भी आगमनात्मक होता है -** जिस तरह से चेतन अनुमान में कुछ सादृश्यता के आधार पर हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, ठीक उसी तरह की सादृश्यता के आघार पर अचेतन अनुमान में भी हम तुरंत किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं।

4. **प्रत्यक्षण का सिद्धान्त -** प्रत्यक्षण के स्वरूप के बारे में हेल्महोल्ज के विचार बिल्कुल सरल हैं तथा उस पर लॉक के द्वितीय गुण सिद्धान्त तथा जॉन स्टुआर्ट मिल के विचारों के स्पष्ट प्रभाव दिख पड़ते हैं। हेल्महोल्ज का मत है कि किसी उद्दीपक से जो संवेदी पैटर्न प्राप्त होते हैं, वही प्रत्यक्षण है। उन्होंने यह भी कहा कि शुद्ध प्रत्यक्षण बिरले ही कभी होता है क्योंकि संवेदी पैटर्न का प्रारूप हमेशा कामनाओं, स्मृतियों एवं अचेतन अनुमान द्वारा परिवर्तित होते रहता है। उसके अनुसार प्रत्यक्षण में सेवदन एवं प्रतिबिम्ब तथा उत्तेजना एवं अचेतन अनुमान का समावेश होता है। सचमुच में, हेल्महोल्ज के इस विचार से प्रत्यक्षण के प्रति ब्रिटिश साहचर्यवादियों तथा प्रत्यक्षण के प्रति मनोवैज्ञानिकों द्वारा अभिव्यक्त विचारधारा के बीच एक ऐतिहासिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

परिणामस्वरूप हेल्महोल्ज का योगदान अन्य शरीरक्रिया विज्ञानियों के योगदानों से सार्थक रूप से भिन्न है तथा मनोविज्ञान के स्वरूप को अधिक प्रयोगात्मक बना दिया है।

3.5.2 इवाल्ड हेरिंग

इवाल्ड हेरिंग का जन्म 1834 ई. में जर्मनी में हुआ। इनकी आरंभिक शिक्षा लिपजिंग विश्वविद्यालय में हुई। यहां उन्होंने वेबर, फेकनर, फुन्के तथा कारस आदि विज्ञानियों से शिक्षा प्राप्त की। 1860 ई. में उन्होंने लिपजिग में रोगियों का इलाज प्रारंभ कर दिये। 1861 से 1864 ई. तक वे दृष्टि दिक् या दूरी प्रत्यक्षण पर महत्वपूर्ण कार्य किया और पांच खण्डों में एक पुस्तक भी प्रकाशित की। उनकी मृत्यु 1918 ई. में हो गयी।

प्रत्यक्षण की व्याख्या करने में हेरिंग का हेल्महोल्ज के विचारों से स्पष्ट टकराव था। हेरिंग सहजवाद के पक्षधर थे जबकि हेल्महोल्ज अनुभववाद के पक्षधर थे। हेरिंग का विचार था कि दूरी प्रत्यक्षण करने की क्षमता व्यक्ति में जन्मजात होती है, क्योंकि दृष्टिपटल के प्रत्येक बिन्दु में तीन स्थानीय चिह्न होते हैं। एक ऊँचाई के लिए, एक बायें-दायें स्थिति के लिए तथा एक गहराई की तीसरी वीमा के लिए।

संवेदांग शरीरक्रिया विज्ञान में हेरिंग ने और भी कई कार्य किये जिससे हमें उनपर अनुभववाद के प्रभाव के सबूत मिलते हैं। दो क्षेत्र में उनके द्वारा किये गए कार्य काफी महत्वपूर्ण हैं जो निम्न हैं -

1. **ताप संवेदन -** हेरिंग के अनुसार ताप संवेदन की अनुभूति चर्म तापक्रम के घटने या बढ़ने से नहीं होता है बल्कि चर्म के सापेक्ष तापक्रम पर निर्भर करता है। हेरिंग ने कहा कि यदि दोनों हाथ को दो अलग-अलग तापक्रम वाले पानी में डुबाने के बाद दोनों हाथ को यदि गुनगुने पानी में डुबाये तो पायेंगे कि गर्म पानी से निकले हाथ को वह पानी ठंडा तथा ठंडे पानी से निकले हाथे को वही पानी गर्म मालूम होता है। हेरिंग ने इस ताप संवेदन की व्याख्या के लिए दलील प्रदान करते हुए कहा कि हमारी त्वचा एक निश्चित तापक्रम पर अभियोजित हो जोती है जिसे दैहिक शून्य बिन्दु कहा जाता है। इस उदाहरण में गर्म पानी से निकले हाथ को वह पानी ठंडा अनुभव इसलिए होता है क्योंकि गुनगुने पानी का तापक्रम इस दैहिक शून्य बिन्दु से नीचे है तथा ठंडे पानी से निकले हाथ को वही पानी गर्म मालूम पड़ता है क्योंकि गुनगुने पानी का तापक्रम इस दैहिक शून्य बिन्दु से ऊपर है।
2. **प्रकाशिकी -** हेरिंग का दूसरा महत्त्वपूर्ण योगदान प्रकाशिकी के क्षेत्र में विशेषकर रंग प्रत्यक्षण के सिद्धान्त के प्रतिपादन में है। हेरिंग का रंग प्रत्यक्षण सिद्धान्त हेल्महोल्ज के रंग

प्रत्यक्षण सिद्धान्त के विरूद्ध में था। हेरिंग ने तीन तत्व छः रंग सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार दृष्टिपटल में तीन तरह के तत्व होते हैं - 'लाल-हरा तत्व', 'पीला-नीला तत्व' तथा 'काला-उजला तत्व'। प्रत्येक तत्व दो विरोधी प्रतिक्रियाओं में से किसी एक के द्वारा उत्तेजित होता है। ये दो विरोधी प्रतिक्रिया है- अपचय अर्थात् टूटने की प्रक्रिया तथा उपचय अर्थात् बनने की प्रक्रिया। पदार्थों में अपचय के फलस्वरूप काला, नीला तथा हरा का प्रत्यक्षण होता है तथा उनके उपचय होने से उजला, पीला तथा लाल का प्रत्यक्षण होता है। इसका मतलब यह हुआ कि एक ही तत्व या पदार्थ से उसके भीतर हुए अपचय या उपचय की रासायनिक प्रक्रिया के अनुसार मस्तिष्क को विशेष रंग का अनुभव होता है। अगर इन दो विरोधी कार्य (अपचय तथा उपचय) एक ही साथ तीनों में से किसी भी तत्व में होते हैं तो उससे धूसर का प्रत्यक्षण व्यक्ति को होता है। ऋणात्मक उत्तर प्रतिमा की व्याख्या भी इसके द्वारा आसानी से कर ली जाती है। जैसे- यदि व्यक्ति लाल रंग पर कुछ देर तक एक टक से देखता है तो अपचय की प्रक्रिया से उत्तक टूट जाते हैं और उसके विपरीत अर्थात् उपचय की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। फलस्वरूप व्यक्ति को हरा रंग दिखता है। उसी तरह से प्रत्यक्षण विरोध की व्याख्या भी की जा सकती है। जब धूसर पृष्ठभूमि में लाल उद्दीपक पर व्यक्ति अपना आंख एक टक कर देखता है तो इससे एक दृष्टिपटलीय क्षेत्र में अपचय होता है तथा इर्द-गिर्द के क्षेत्र में उपचय की प्रक्रिया होती है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को विरोध का अनुभव होता है। हेरिंग के सिद्धान्त से यह भी स्पष्ट हे कि तीन जोड़ों से छह को प्राथमिक रंग की मान्यता दी गयी है जबकि हेल्होल्ज के सिद्धान्त में मात्र तीन प्राथमिक रंग की मान्यता दी गयी थी। हेल्महोल्ज सिद्धान्त की सबसे बड़ी कठिनाई अर्थात् लाल-हरा रंग वाले अन्धे व्यक्ति भी पीला रंग किस प्रकार देख लेते हैं, क्योंकि पीला रंग एक प्राथमिक रंग तो नहीं है। इसका समाधान हेरिंग सिद्धान्त द्वारा कर लिया गया क्योंकि इस सिद्धान्त में पीला को एक प्राथमिक रंग माना गया है।

अत: हेरिंग का योगदान संवेदांग शरीरक्रिया विज्ञान में बहुत महत्वपूर्ण था। इनके प्रयासों का प्रभाव मनोविज्ञान के प्रयोगात्मक स्वरूप पर काफी अधिक पड़ा।

3.6 सारांश

शरीरक्रिया विज्ञान का प्रभाव मनोविज्ञान के प्रयोगात्मक स्वरूप पर काफी गहरा पड़ा है। शरीरक्रिया विज्ञान के अन्तर्गत कई ऐसे कार्य हुए जिनका प्रभाव मनोविज्ञान पर गहरा पड़ा। इनमें संवेदी एवं पेशीय तन्त्रिका, विशिष्ट तन्त्रिका उर्जा जिसमें जोहान्स मूलर का योगदान प्रमुख है। तन्त्रिका आवेग के वैद्युतीय स्वरूप का अध्ययन कपाल विज्ञान, मस्तिष्क के कार्यों का स्थान निर्धारण, प्रतिवर्तक्रिया तथा प्रतिक्रिया समय एवं संवेदांग शारीरिक क्रिया विज्ञान जिसमें हेल्महोल्ज एवं हेरिंग का योगदान प्रमुख है, आदि मनोवैज्ञानिकों की भूमिकाएं प्रधान रही है।

3.7 बोध प्रश्न

1 उन प्रमुख न्यूरोशरीरक्रिया मनोवैज्ञानिकों का वर्णन करें जिन्होंने आधुनिक वैज्ञानिक मनोविज्ञान की स्थापना के लिए आधार प्रस्तुत किया।

2 मनोविज्ञान के क्षेत्र में हरमान हेल्महोल्ज के योगदानों का उल्लेख कीजिए।

3 इवाल्ड हेरिंग के योगदानों का मूल्यांकन कीजिए।

4 ''विशिष्ट तंत्रिका उर्जा किस मनोवैज्ञानिक ने बताया? प्रकाश डालिए।

3.8 संदर्भ सूची

1. Wolman, B.E. (1979), Contemporary Theories and Systems in Psychology, Delhi : Freeman Book Co.
2. Ram Nath Sharma : Applied Psychology.
3. Shukla, K.C., Applied Psychology, Common Wealth Publishers
4. सिंह, डॉ. अरूण कुमार, सिंह, डॉ. आशीष कुमार (2009), ''मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, छठा संशोधित संस्करण
5. डॉ. ए. रहमान, मनोविज्ञान का इतिहास
6. राज कुमार ओझा, मनो विज्ञान का इतिहास

इकाई-4

वेबर, फेकनर, गाल्टन का मनोभौतिक, मनोशारीरिक विधियों में योगदान

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मनोभौतिकी: प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का शुभारंभ

4.4 अर्नस्ट हिनरिच वेबर

4.4.1 मनोविज्ञान में योगदान

4.5 गसटॉव थियोडोर फेकनर

4.5.1 मनोविज्ञान में योगदान

4.6 सर फ्रेंसिस गाल्टन

4.6.1 मनोविज्ञान में योगदान

4.7 सारांश

4.8 बोध प्रश्न

4.9 संदर्भ सूची

4.1 प्रस्तावना

मनोभौतिकी प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का अग्रणी था, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। मनोभौतिकी के क्षेत्र में प्रमुख योगदानकर्ता वेबर तथा फेकनर माने माने गए हैं जिन्होंने संवेदन के क्षेत्र में इतने महत्वपूर्ण काये किये हैं कि इस क्षेत्र के आधुनिक मनोविज्ञानी आज भी इनके ऋणी हैं। आधुनिक समय में मनोभौतिकी विधियों का प्रभाव काफी है और संवेदन के मापन के क्षेत्र में इसका कोई समानान्तर नहीं है। यही कारण है कि आजकल मनोभौतिकी जो उद्दीपक तथा अनुभूति के बीच परिणामात्मक संबंध का अध्ययन करता है, को प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की एक प्रमुख शाखा माना गया है। इस अध्याय में वेबर, फेकनर तथा गाल्टन के योगदानों का अवलोकन किया जा रहा है।

मनोविज्ञान में मनोभौतिकी एवं मनोशारीरिक विधियों ने प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई है। मनोभौतिकी का अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा मानसिक क्रियाओं एवं दैहिक क्रियाओं के बीच के सम्बन्ध को समझा व मापा जा सकता है। इसी उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए मनोशारीरिक क्षेत्र में किये गये प्रयोगों जैसे ताप संवेदन, स्पर्श, संवेदन तथा मांसपेशिय संवेदन तथा मनोभौतिकी विधियों जैसे- सीमा विधि, सतत उद्दीपन विधि, औसत त्रुटि की विधि का वर्णन किया जा रहा है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप मनोभैतिक एवं मनोशारीरिक विधियों में -

- फ्रेकनर के योगदान को स्पष्ट कर सकेंगे
- वेबर के योगदान का वर्णन कर सकेंगे
- गाल्टन के योगदान की व्याख्या कर सकेंगे।

4.4 अर्नस्ट हिनरिच वेबर

19वीं शताब्दी के प्रमुख शरीर क्रियाविज्ञानी वेबर थे। इनका जन्म 1795 में जर्मनी के विटेनवर्ग शहर में हुआ था। 1815 में लिपजिग विश्वविद्यालय से उन्होंने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की तथा 1817 में वे उसी विश्वविद्यालय में शरीररचना तथा शरीरक्रिया विज्ञान के अध्यापक नियुक्त हुए। 1818 में उनकी नियुक्ति शरीररचना के प्राचार्य के रूप में तथा 1840 में शरीरक्रिया विज्ञान के प्राचार्य के रूप में हुआ। वे अपने पूरे बाकी बचे जीवन काल में लिपजिग विश्वविद्यालय में ही रहे और 1878 में यहीं इनकी मृत्यु हो गयी।

वेबर द्वारा संवेदाग शरीरक्रिया में महत्वपूर्ण कार्य किए गए जिसका महत्व मनोविज्ञान के प्रयोगात्मक स्वरूप के लिए काफी अधिक साबित हुआ। वेबर के शोधों को उनके दो प्रसिद्ध पुस्तकों में प्रकाशित किया गया। 'डी-टैक्टु नामक पुस्तक का प्रकाशन 1834 में तथा 'डर टेस्टसिन' का प्रकाशन 1846 में हुआ।

4.4.1 मनोविज्ञान में योगदान

मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से वेबर द्वारा किये गए प्रयोगों एवं अन्य सम्बन्धित योगदानों को निम्न तीन भागों में बांट कर प्रस्तुत किया जा रहा है -

I. ताप संवेदन के क्षेत्र में किये गए प्रयोग
II. स्पर्श संवेदन के क्षेत्र में किये गये प्रयोग
III. मांसपेशीय संवेदन के क्षेत्र में किए गए प्रयोग

ताप संवेदन के क्षेत्र में किये गये प्रयोग - ताप संवेदन के क्षेत्र में वेबर द्वारा किये गए प्रयोगों से एक विशेष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाना संभव हो पाया है। इस सिद्धान्त के अनुसार ठंड एवं गर्म की संवेदना वास्तविक तापक्रम उत्तेजन पर निर्भर नहीं करता है बल्कि इसकी अनुभूति त्वचा के तापक्रम में परिवर्तन पर निर्भर करता है। जैसे, यदि व्यक्ति साधारण गर्म पानी में अपना हाथ डुबोता है तो उसे गर्म की संवेदन नहीं होती है क्योंकि हाथ गर्म पानी के साथ समायोजन कर लेता है। परन्तु यदि पानी के तापक्रम में वृद्धि होती है, तो इससे व्यक्ति को गर्म का संवेदन होता है क्योंकि इससे त्वचा के तापक्रम में भी परिवर्तन अर्थात् वृद्धि होती है।

स्पर्श संवेदन के क्षेत्र में किए गए प्रयोग - वेबर का मत था कि स्पर्श संवेदन में तीन विभिन्न तरह के संवेदन होते हैं - दबाव का संवेदन, ताप का संवेदन तथा स्थानीयता का संवेदन। इन तीनों से सम्बन्धित कई प्रयोग किए गए। स्पर्श संवेदन के एक प्रयोग में वेबर ने यह दिखलाया कि जब व्यक्ति के त्वचा को दो नुकीले बिन्दुओं से स्पर्श कराया गया, तो वह स्पष्टतः दो बिन्दुओं का प्रत्यक्षण

करता है। फिर इन दोनों नुकीले बिन्दुओं के आपसी दूरी को उसके त्वचा की दो नुकीले बिन्दु से स्पर्श किया गया था। इसे वेबर ने द्विबिन्दु देहली की संज्ञा दी है। अगर दो नुकीले बिन्दु का आपसी दूरी इस द्विबिन्दु देहली से ऊपर है, तो व्यक्ति स्पष्टतः दो बिन्दु के द्वारा स्पर्श होने का अनुभव व्यक्ति करता है और यदि उसकी आपसी वास्तविक दूरी इस द्विबिन्दु देहली से कम है, तो व्यक्ति को एक बिन्दु द्वारा स्पर्श किये जाने का संवेदन होता है। ऐसे कई तरह के प्रयोगों के आधार पर वेबर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि द्विबिन्दु देहली शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों के लिए अलग-अलग होता है। शरीर के कुछ अंग अधिक संवेदनशील होते हैं तथा कुछ अंग कम संवेदनशील होते हैं। अधिक संवेदनशील अंगों में द्विबिन्दु देहली कम होते पाये गये तथा कम संवेदनशील अंगों में द्विबिन्दु देहली अधिक पायी गयी। शायद यही कारण है कि अंगुली के अग्र भागों के लिए द्विबिन्दु देहली कम तथा पीठ के लिए द्विबिन्दु देहली अधिक पाया। इतना ही नहीं, एक ही अंग का द्विबिन्दु देहली एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के लिए अलग-अलग और कभी-कभी एक ही व्यक्ति के लिए परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते पाया गया।

मांसपेशीय संवेदन के क्षेत्र में किये गए प्रयोग - सबसे महत्वपूर्ण योगदान जिसके लिए वेबर की ख्याति अधिक हुई, मांसपेशीय संवेदन के क्षेत्र में किये गए प्रयोग हैं। यद्यपि इस तरह के संवेदन के बारे में थॉमस ब्राउन पहले ही अपने विचार व्यक्त कर चुके थे, फिर भी उसका क्रमबद्ध अध्ययन वेबर ने किया। वेबर ने यह दिखलाने की कोशिश की कि स्पर्श के संवेदन में मांसपेशियों, त्वचा एवं शरीर के आन्तरिक अंगों का एक संयुक्त योगदान होता है। वेबर ने इस बात में अभिरुचि दिखायी कि विभिन्न वजनों के वस्तुओं को उठाकर तथा आपस में तुलना करके व्यक्ति कहां तक उनमें अन्तर कर सकता है। दूसरे शब्दों में, मांसपेशीय संवेदन कहां तक वजन के विभेदन मे योगदान करता है। वेबर यह जानना चाहते ये कि विभेदन दो परिस्थितियों में से किस परिस्थिति में उत्तम होता है - एक परिस्थिति वैसी हो सकती है जिसमें विभेदन करते समय सिर्फ स्पर्श संवेदन हो जैसे प्रयोज्य के हाथ पर वजन को प्रयोगकर्ता द्वारा रखा जाता हो और मात्र हाथ से उठाने के लिए कहा जाए ताकि विभेदन कार्य में हाथ एवं बांह की मांसपेशियां भी अपना योगदान कर सके। वेबर ने अपने कई प्रयोगों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि दूसरी परिस्थिति के होने पर पहली परिस्थिति की तुलना में विभेदन कार्य अधिक सही एवं स्पष्ट ढंग से किया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि वजन के प्रत्यक्षण के प्रति संवेदनशीलता उस समय बढ़ जाती है, जब स्पर्श संवेदन में मांसपेशीय संवेदन का भी योगदान होता है। इन प्रयोगों के आधार पर दूसरा महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह था कि उद्दीपकों के बीच छोटे-छोटे अन्तरों में विभेद करने की क्षमता उद्दीपक की मात्र तीव्रता पर निर्भर नही करता है बल्कि मानक उद्दीपक तथा तुलनात्मक उद्दीपक के बीच के अन्तर के अनुपात पर भी निर्भर करता है। इस नियम को वेबर नियम कहा गया जिससे प्रेरणा पाकर अनेक मनोवैज्ञानिक शोध बाद में किये गए। इस नियम की खोज के लिए वेबर ने एक प्रयोग किया था जिसमें वजनों के दो सेट लेकर वे कार्य किये थे। एक सेट में मानक वजन 32 औंस का तथा दूसरे सेट में मानक वजन 4 औंस का था। बाद में भी उन्होंने कई प्रयोग किए जिसमें मानक वजन 7.5 औंस का था। इन बाद के प्रयोगों में प्रयोजों को मानक वजन तथा तुलनात्मक वजन कभी बारी-बारी से तो कभी एक ही साथ उठाने के लिए कहा गया। इन सभी प्रयोगों के आधार पर जो प्रमुख तथ्य उभर कर सामने आया, वह यह था कि विभेदन दो वजनों के अन्तर के निरपेक्ष मात्रा पर नहीं बल्कि मानक वजनों तथा तुलनात्मक वजन की मात्रा के अनुपात पर आधारित रहता है। अधिकतर परिस्थति में जब यह अनुपात 1:40 का था,

तो विभेदन सही-सही किया गया तथा उद्दीपकों में सही अन्तर का प्रत्यक्षण किया गया। इसका मतलब यह हुआ कि 41 ग्राम का वजन 40 ग्राम के मानक वजन से भिन्न के न्यूनतम ज्ञेय रूप में प्रत्यक्षित किया गया है। उसी तरह से 82 ग्राम का वजन न्यूनतम ज्ञेय के समान से 80 ग्राम के मानक वजन से भिन्न प्रत्यक्षित किया गया है। सिर्फ स्पर्श संवेदन होने पर (अर्थात् वजन उठाये जाने के बजाए जब प्रयोज्य के हाथ पर प्रयोगकर्ता द्वारा धीरे से रख दिया जाता था) यह अन्तर मानक वजन का एक चैथाई पाया गया। मानक उद्दीपक तथा तुलनात्मक उद्दीपक के उस न्यूनतम अन्तर को जिसका सही प्रत्यक्षण किया गया, न्यूनतम ज्ञेय भेद कहा गया।

वेबर के प्रयोग वास्तव में मनोवैज्ञानिक प्रयोग थे, क्योंकि इससे विभेदन का मापन होता था। वेबर नियम पर बाद के मनोवैज्ञानिकों द्वारा कई प्रयोग किये गए तथा शरीर के विभिन्न अंगों के द्विबिन्दु देहली का निर्धारण करने के लिए भी कई प्रयोग किए गए। इन सबका महत्वपूर्ण लाभ यह हुआ कि मनोविज्ञान का स्वरूप तेजी से प्रयोगात्मक हो गया।

4.5 गसटॉव थियोडोर फेकनर

फेकनर का जन्म जर्मनी के एक छोटे से गांव में 1801 में हुआ था। जब वे पांच साल के थे जो उनके पिता की मृत्यु हो गयी। फलस्वरूप उनका पालन-पोषण चाचा द्वारा किया गया। 1817 में लिपजिग विश्वविद्यालय में चिकित्सा विज्ञान में मैट्रिक पास किया और 1822 में इसी विश्वविद्यालय से चिकित्सा विज्ञान की उपाधि प्राप्त की। 1817 से 1824 तक उनकी अभिरुचि शरीरक्रिया विज्ञान के अध्ययन में काफी रही। बाद में उनकी रुचि भौतिकी में हुई। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने अन्य भाषाओं में छपी भौतिकी के पुस्तकों का अनुवाद जर्मन भाषा में करना प्रारंभ कर दिया और इस सिलसिले में उन्हें भौतिकी में अच्छी ख्याति प्राप्त हुई। 1824 में उन्हें लिपजिग विश्वविद्यालय में व्याख्याता के पद पर नियुक्त कर लिया गया। 1826 में ओम ने बिजली के प्रतिरोध के बारे में अपने प्रसिद्ध नियम जिसे ओम नियम कहा जाता है, का प्रतिपादन किया। इससे उनकी अभिरुचि भौतिकी में अधिक बढ़ी। बिजली के दिष्ट धारा के परिमाणात्मक मापन के सम्बन्ध में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान किये जिससे भौतिकी में उनकी प्रसिद्धि काफी मिली। 1930 ई. तक अनुवाद सहित करीब उनके 40 से अधिक शोधपत्र प्रकाशित कर चुके थे। इन सब शोधों के आधार पर अन्त में उन्हें लिपजिग विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्राचार्य पद पर नियुक्ति 1934 ई. में हुई।

इस तरह से यदि फेकनर के जीवन काल का विश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि वे सात वर्षों तक एक शारीरक्रिया विज्ञानी रहे। 1817-1824 ई., 15 वर्षों तक एक भौतिकशास्त्री रहे (1824-1839 ई.), लगभग 12 वर्षों तक अशक्त रहे (1839-1851 ई.), 14 वर्षों तक मनोभौतिकी के विशेषज्ञ रहे (1851-1865 ई.), 11 वर्षों तक प्रयोगात्मक सौन्दर्यविज्ञानी रहे (1865-1876 ई.) और अंतिम 11 वर्षों में एक ऐसे बुजुर्ग बने रहे जिनकी बौद्धिक अभिरुचियां मनोभौतिकी को आलोचनाओं से उबारना था (1876-1887 ई.)। उनकी दार्शनिक अभिरुचियां 1836-1879 ई. तक अधिक सक्रिय रहीं।

4.5.1 मनोविज्ञान में योगदान

मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से फेकनर का सबसे महत्वपूर्ण योगदान मनोभौतिकी के क्षेत्र में किए गए शोध एवं प्रयोग से है। उन्होंने मनोभौतिकी विधियों का प्रतिपादन किया है, वे विधियां तीन हैं

I. सीमा विधि
II. सतत उद्दीपन की विधि
III. औसत त्रुटि की विधि

सीमा विधि - इस विधि में फेकनर उद्दीपक की तीव्रता को छोटे-छोटे परिकल्पित कदमों में तब तक बढ़ाते जाने की सिफारिश की है जब तक की प्रयोग अपने संवेदन में परिवर्तन न अनुभव कर ले। पहले उद्दीपक की तीव्रता काफी कम रखी जाती है। इससे प्रयोज्य में कोई संवेदन नहीं होता है। फिर धीरे-धीरे छोटी-छोटी इकाईयों में इसकी मात्रा को तब तक बढ़ायी जाती है जब तक कि प्रयोज्य को स्पष्ट संवेदन न होने लगे। दूसरी बारी में ठीक इसके विपरीत दिशा में कार्य किया जाता है। इस परिस्थिति में उद्दीपक की तीव्रता काफी अधिक होती है जिससे प्रयोज्य को स्पष्ट संवेदन होता है। फिर धीरे-धीरे इसकी तीव्रता को छोटी-छोटी इकाइयों में तब तक कम की जाती है जब तक कि प्रयोज्य कोई संवेदन की अनुभूति न होने का दावा कर देता है। पहली परिस्थिति को आरोही क्रम तथा दूसरी परिस्थिति को अवरोही क्रम कहा जाता है। इन दोनों क्रमों के औसत के आधार पर देहली का निर्धारण किया जाता है।

सतत उद्दीपन की विधि - इस विधि में उद्दीपकों या उद्दीपक के अन्तरों को यादृच्छिक क्रम में उपस्थित किया जाता है। प्रत्येक उद्दीपक के अन्तर को सतत रखते हुए, फेनकर ने प्रत्येक उद्दीपक के लिए किए गए विशिष्ट निर्णय की सापेक्ष आवृति को परिकल्पित करने का सुझाव दिया है। इस परिकलन के आधार पर वे फिर देहली ज्ञात करने का सुझाव दिया।

औसत त्रुटि की विधि - इस विधि में फेकनर अपने प्रयोज्य के सामने एक मानक उद्दीपक तथा एक तुलनात्मक उद्दीपक उपस्थित करते थे तथा तुलनात्मक उद्दीपक को प्रयोज्य तब तक घटा-बढ़ा करते रहते थे जबतक कि वे संतुष्ट न हो जाय कि इसकी मात्रा या तीव्रता मानक उद्दीपक के बराबर हो गयी है ऐसी परिस्थिति में प्रयोज्य द्वारा किये गए समायोजन में त्रुटियां होती थी क्योंकि उनके द्वारा समायोजित तुलनात्मक उद्दीपक कभी तो मानक उद्दीपक से बड़ा तो कभी मानक उद्दीपक से छोटा होता था। इन त्रुटियों के औसत के माध्य के आधार पर देहली का परिकलन किया जाता है। औसत त्रुटि की विधि को समायोजन की विधि भी कहा जाता है।

इन विभिन्न विधियों का उपयोग अपने प्रायोगिक कार्यक्रम के गहन रूप से करके उन्होंने एक नियम बनाया जो सभी ज्ञानेन्द्रियों के संवेदनों अर्थात् दृष्टि, श्रवण, स्पर्श आदि पर समान रूप से लागू होते हैं। इस नियम का आधार वेबर का नियम था। वेबर ने मात्र इतना ही कहा था कि दो उद्दीपकों के बीच विभेदन की क्षमता मानक उद्दीपक तथा तुलनात्मक उद्दीपक के बीच के अन्तर के अनुपात पर निर्भर करता है। इस सम्बन्ध को सूत्र के रूप में व्यक्त करने का श्रेय फेकनर को गया जिन्होंने इस सम्बन्ध का वर्णन इस प्रकार किया है -

$$\frac{\Delta R}{R} = K$$

यहां ΔR = न्यूनतम ज्ञेय भेद

R = मानक उद्दीपक

K = नियतांक

इसे एक उदाहरण द्वारा इस सम्बन्ध को स्पष्ट किया जा रहा है - अगर R = 40 औंस हैं,] ΔR=1 औंस है तो दो वजनों जिसमें मानक 40 औंस का है तथा तुलनात्मक उद्दीपन 1 औंस का है, के बीच के अंतर का सही प्रत्यक्षण के लिए तुलनात्मक उद्दीपन में 1 औंस की वृद्धि आवश्यक है। उसी तरह से यदि R = 120 औंस है तो न्यूनतम ज्ञेय भेद ΔR = 3 औंस का होगा। इसी परिस्थिति तथा पहली परिस्थिति का K एक ही है, अर्थात् 40:1 वेबर के इस नियम को फेकनर ने और अधिक तीक्ष्ण किया और कहा कि अगर भौतिक उद्दीपक की तीव्रता को ज्योमितीय क्रम में अर्थात् 1,2,4,8,16 आदि में बढ़ाया जाता है तो न्यूनतम ज्ञेय भेद के संवेदन की मात्रा में होने वाली वृद्धि गणितीय क्रम अर्थात् 1,2,3,5 आदि में होगी। इस तरह से फेकनर ने उद्दीपक की तीव्रता तथा संवेदन की तीव्रता के बीच एक लघुगणकीय सम्बन्ध होने का दावा किया। इस नियम को आजकल फेकनर नियम तथा कुछ आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा वेबर-फेकनर नियम की संज्ञा दी है।

फेकनर की अभिरुचि दर्शनशास्त्र में भी थी। उनका विचार था कि संसार के प्रत्येक चीज चेतनशील हैं। अतः उनमें एक आत्मा या मन होता है। वे मन-शरीर समस्या का समाधान चाहते थे और इसके समाधान की दिशा में एक तथ्य बलाते हुए उन्होंने कहा कि मन तथा शरीर एक-दुसरे से ऐसे सम्बन्धित हैं, जैसे, किसी वृत्त का बाहरी तथा भीतरी भाग जो एक ही रेखा के दो विपरीत भाग होते हैं। मन-शरीर समस्या के इस समाधान को पहचान प्राक्कल्पना कहा जाता है। फेकनर ने यह भी कहा वेबर-फेकनर नियम द्वारा मन शरीर समस्या का समाधान मोटे तौर पर किया जा सकता है। मन को शरीर का लघुगुणक माना जा सकता है।

फेकनर के आलोचकों में विलियम जेम्स का नाम अधिक मशहूर है। विलियम जेम्स के अनुसार फेकनर का पूरा प्रयास मनोविज्ञान के लिए बिना किसी फल का माना जा सकता है। उनके द्वारा प्रतिपादित मनोदैहिक या मनोभौतिक विधियां व्यर्थ एवं नीरस है।इस आलोचना के बावजूद फेकनर को पहला प्रयोगात्मक मनोविज्ञानी यदि माना जाय, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

4.6 सर फ्रैंसिस गाल्टन

सर फ्रैंसिस गाल्टन का जन्म 1822 में इंगलैंड में हुआ। ये चार्ल्स डार्विन के चचेरे भाई थे। गाल्टन अपने वैज्ञानिक जीवन की शुरूआत एक भूगोलज्ञ एवं अन्वेषक के रूप मे प्रारंभ किया। वे अफ्रीका के भीतरी भागों का भ्रमण किये और उनकी अभिरूचि धीरे-धीरे मौसमविज्ञान में बढ़ती गयी। लंदन लौटने पर उन्होंने ब्रिटिश उपद्वीप का पहला मौसम नक्शा बनाया जो अप्रैल 1875 से प्रतिदिन 'टी टाइम्स' में प्रकाशित होते रही। इस भ्रमण का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह था कि उनकी अभिरुचि भौगोलिक एवं मौसमी या वायुमण्डलीय चीजों से हटकर मानवशास्त्र में अधिक हो गयी। इस भ्रमण के दौरान उन्होंने स्पष्टतः यह पाया कि विभिन्न संस्कृति के लोगों मे काफी अन्तर होता है तथा एक ही संस्कृति के विभिन्न लोगों में भी काफी अंतर होता है। यहीं से उनकी अभिरुचि मानव स्वभाव के अध्ययन में उत्पन्न हुई जो आधुनिक मनोविज्ञान के लिए एक देन साबित हुई। गाल्टन के प्रमुख योगदानों का सारांश उनके चार प्रमुख पुस्तकों में संकलित हैं - 'हेरेडिटरी जिनियस', इंगलिश मेन ऑफ साइन्स, इन्क्वायरिज इनटू ह्यूमन फैकल्टी एण्ड इट्स डेवलपमेन्ट तथा नेचुरल इन्हेरिटैन्स।

4.6.1 मनोविज्ञान में योगदान

सर फ्रैंसिस गाल्टन का मनोविज्ञान में योगदान मनोविज्ञान पर सीधा प्रभाव डालने वाले उनके योगदानों को निम्न चार प्रमुख भागों में बांट कर उपस्थित किया गया है -

1. मानसिक वंशगति
2. मानसिक परीक्षण एवं सांख्यिकीय विधियां
3. मानसिक प्रतिमा से सम्बन्धित अध्ययन
4. साहचर्य से सम्बन्धित अध्ययन

मानसिक वंशागति - मानसिक वंशागति से गाल्टर का तात्पर्य यह था कि मानसिक क्षमताएं व्यक्ति को विरासत में मिलती है और फिर वह अपने अलगे पीढ़ी को वैसी क्षमताएं प्रदान करने में सक्षम होता है। दूसरे शब्दों में, मानसिक क्षमताएं अर्जित नहीं होती है बल्कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अपने आप मिलते जाती है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध पुस्तक हेरेडिटरी जिनियस, इंगलिश मेन ऑफ साइन्स तथा नेचुरल इन्हेरिटैन्स में उसका वर्णन किया है। अपनी पहली पुस्तक हेरेडिटरी जिनियस में उन्होंने 300 ब्रिटिश परिवारों से कुल 537 श्रेष्ठ व्यक्तियों को अध्ययन के लिए चुना। इनमें वैज्ञानिक, अभियंता, लेखक, जज आदि को प्रयोज्य के रूप में चुना। इस अध्ययन में तथा ऐसे ही कई अन्य अध्ययनों मे वंशावली विधि, जीवनी लेखनी विधि, पारिवारिक इतिहास विधि, जुड़वां-समानता विधि तथा प्रजातियों की तुलना विधि आदि का प्रयोग किया गया। इन अनुसंधानों के बाद गाल्टन इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मानसिक क्षमता व्यक्ति में अर्जित नहीं बल्कि जन्मजात होती है। इस तरह की क्षमता के विकसित होने में प्रशिक्षण की कोई भूमिका नहीं होती है। इनका मत था कि जो व्यक्ति महान होते हैं, उनमें कुछ असाधारण क्षमता होती है और ऐसे लोग प्रतिकूल वातावरण के होने के बावजूद भी महान हो जाते हैं (क्योंकि इन्हें महानता का गुण विरासत में मिला होता है)। इनके इस अध्ययन का प्रमुख दोष यह बतलाया गया कि इसमें सिर्फ चुने गये परिवार के ही सदस्यों को सम्मिलित किया गया था। अतः परिणाम वैसा आना स्वाभाविक ही था।

मानसिक परीक्षण एवं सांख्यिकी विधियां- मानसिक वंशागत सम्बन्धी किये गये अध्ययनों के आधार पर गाल्टन पूर्णतः यह विश्वस्त हो गए थे कि मानव प्रजाति में मानसिक गुण तथा शारीरिक गुण दोनों के ख्याल से वैयक्तिक विभिन्नता होती है। -

I. मानसिक परीक्षण, तथा
II. सांख्यिकीय विधियां।

उन्होंने पहली बार मानसिक परीक्षण का निर्माण किया और इस अर्थ में कुछ इतिहासकारों ने उन्हें मानसिक परीक्षण का जनक कहा है। मानसिक परीक्षण का उद्देश्य वैयक्तिक विभिन्नता का पता लगाना है। 1884 में अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य मेला जो लन्दन में लगाया गया था, गाल्टन में एक मानवमितिक प्रयोगशाला खोली जिसमें उन मानसिक परीक्षाओं एवं उपकरणों का उपयोग किया गया जिसे उन्होंने स्वयं बनाये थे। मानसिक एवं शारीरिक क्षमताओं की जांच की गई। इन मानसिक एवं शारीरिक परीक्षणों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए कुछ विशेष सांख्यिकीय विधियों का भी विकास गाल्टन द्वारा किया गया जिसमें श्रेणीकरण की विधि, शततमक श्रेणीकरण तथा सहसम्बन्ध प्रधान है। श्रेणीकरण की विधि के सहारे मनोवैज्ञानिक मापन के कुछ विशिष्ट पहलुओं पर व्यक्ति को उनके निष्पादन के अनुार उच्चतम से न्यूनतम में श्रेणीबद्ध किया जाना संभव हो पाया। शततमक श्रेणीकरण के सहारे व्यक्तियों को उनकी योग्यता के अनुरूप समूहन करना संभव हो पाया

तथा सहसम्बन्ध द्वारा व्यक्तियों के निष्पादनों के बीच उच्च या निम्न सम्बन्ध का पता लगाना संभव हो पाया। गाल्टन ने संख्या 1 का प्रयोग करके पूर्ण सहसम्बन्ध तथा '+', '-' तथा '0' द्वारा क्रमशः धनात्मक, ऋणात्मक एवं 'सम्बन्ध नहीं' को दर्शाया।

मानसिक प्रतिमा सम्बन्धित अध्ययन - बोरिंग के अनुसार मानसिक प्रतिमाओं का अध्ययन गाल्टन के सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से है। गाल्टन ने मानसिक प्रतिमा का अध्ययन प्रश्नावली से न कि प्रयोग द्वारा किया है। मनोविज्ञान के इतिहास में पहली बार प्रश्नावली विधि का प्रयोग मनोवैज्ञानिक मापन के लिए किया गया। इस प्रश्नावली में प्रयोज्य को अपने सामने किसी ठोस वस्तु जैसे- 'टेबुल', 'कुर्सी', आदि की कल्पना करने के लिए कहा जाता था और उसके बाद उससे जो प्रतिमा उसके मन में आये, उनका वर्णन करते हुए यह बतलाने के लिए कहा जाता था कि वे स्पष्ट हैं या धुंधले, दीप्त हैं या मन्द, रंगीन हैं या रंगहीन, स्थिर हैं या अस्थिर आदि। प्राप्त प्रतिमाओं का गाल्टन ने उसकी तीव्रता या उसमें उत्पन्न समान संवेदन के आधार पर '0' से 100 तक एक क्रम में सुव्यवस्थित किया। इसका विश्लेषण करने के बाद गाल्टन ने यह पाया कि कुछ व्यक्तियों में तीव्र मानसिक प्रतिमाएं पायी गयी। मानसिक प्रतिमाओं के अध्ययन में गाल्टन की मुख्य अभिरुचि वैयक्तिक विभिनता के अध्ययन के साथ-ही-साथ आनुवंशिक समानता का पता लगाना था। उन्होंने अपने इस अध्ययन में पाया कि एक ही माता-पिता के बच्चों के मानसिक प्रतिमाओं में यादृच्छिक रूप से चुने गए बच्चों की मानसिक प्रतिमा की तुलना में अधिक समानता है।

साहचर्य से सम्बन्धित अध्ययन - गाल्टन ने साहचर्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया। साहचर्य अध्ययन की उनकी विधि मनोविश्लेषण स्कूल द्वारा प्रतिपादित स्वतंत्र साहचर्य विधि के समान था। गाल्टन ने साहचर्य पर किये गए अपने एक प्रयोग में उन्होंने 75 शब्दों की एक सूची तैयार किया और प्रत्येक शब्द को एक-एक अलग कागज के टुकड़े पर लिख लिये। इस प्रयोग में वे प्रयोज्य स्वयं थे। इन परचों में से वे यादृच्छिक रूप सेएक-एक परचा उठाते गए और परचे के शब्द को देखकर दो साहचर्य चाहे शब्द के रूप में हो या कोई विशेष प्रतिमा के रूप में हो, को लिखा। उद्दीपक शब्द तथा इन दोनों साहचर्य शब्दों के बीच के समय अंतराल को भी वे स्प्रींग क्रोनोमीटर के सहारे मापन किया। इसके बाद इन विचारों या साहचर्य की उत्पत्ति के स्रोत का पता लगा तथा उनका उद्दीपक शब्द के साथ सम्भावित सम्बन्ध का पता लगाने की कोशिश किये। इस प्रयोग में वे 75 शब्दों की सूची से एक-एक महीना के अन्तराल पर चार बार साहचर्यों को लिखा। परिणाम में देखा गया कि वे कुल 505 साहचर्य या विचार उत्पन्न कर सकने में समर्थ हो पाये थे जिसमें 29 विचार ऐसे थे जो सभी चारों प्रयास या बारी में उत्पन्न हुए थे, 36 ऐसे थे जो मात्र तीन प्रयासों में उत्पन्न हुए थे, 57 ऐसे थे जो मात्र दो प्रयासों में तथा 107 ऐसे थे जो मात्र एक प्रयास में उत्पन्न हुए थे। इनमें जो विचार अधिक बार उत्पन्न हुए थे, वे बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के थे तथा जो मात्र एक बार उत्पन्न हुए थे, वे हाल की अनुभूतियों से सम्बन्धित थे। विश्लेषण से यह भी पता चला कि 32 प्रतिशत विचार दृष्टि प्रतिमाएं की थी, 22 प्रतिशत विचारों का सम्बन्ध किसी विशेष क्रिया या व्यवहार से था, 42 प्रतिशत पूर्णतः शाब्दिक साहचर्य की थी तथा 1 प्रतिशत साहचर्य अस्पष्ट थे। इस प्रयोग का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव बाद में जर्मन मनोविज्ञानी जैसे- विलियम वुण्ट पर अधिक पड़ा और साथ-ही-साथ इससे यह भी साबित हो चुका कि साहचर्य का प्रयोगात्मक अध्ययन संभव है। अत: गाल्टन का मनोविज्ञान में मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

4.7 सारांश

मनोविज्ञान के प्रयोगात्मक स्वरूप पर मनोशारीरिक एवं मनोभौतिकी विधियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। इसमें वेबर, फ्रेकनर तथा गाल्टन के योगदानों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। वेबर ने ताप संवेदन के क्षेत्र, स्पर्श संवेदन के क्षेत्र में मांसपेशिय संवेदन के क्षेत्र में प्रयोग कर वेबर नियम को प्रतिपादित किया। वेबर के प्रयोगों में विभेदन का मापन होता था जिसमें शरीर के विभिन्न अंगों के द्विबिन्दु देहली का निर्धारण किया जाता था। फेकनर को मनोभौतिकी का जनक कहा जाता है। इन्होंने वेबर-फेकनर नियम द्वारा मन-शरीर समस्या का समाधान बड़े रूप में किया जिसमें मन को शरीर का लघुगुणक माना जा सकता है, को बताया। इसी प्रकार गाल्टन ने मानसिक क्षमताओं, वैयक्तिक विभिन्नता, मानसिक प्रतिभाओं एवं विचारों के साहचर्य आदि प्रयोगात्मक अध्ययन पर प्रकाश डाला। अतः मनोभौतिकी एवं मनोशारीरिक वैज्ञानिकों का मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

4.8 बोध प्रश्न

1 मनोभौतिकी के जनक कौन हैं? मनोविज्ञान में योगदान पर प्रकाश डालिए।

2 वेबर फेकनर नियम की व्याख्या कीजिए।

3 वेबर के मनोशारीरिक क्षेत्र में किये गये कार्यों का उल्लेख कीजिए।

4 सर फ्रेंसिस गाल्टन तथा वेबर के योगदानों की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए।

4.9 संदर्भ सूची

1. Wolman, B.E. (1979), Contemporary Theories and Systems in Psychology, Delhi : Freeman Book Co.
2. Ram Nath Sharma : Applied Psychology.
3. Shukla, K.C., Applied Psychology, Common Wealth Publishers.
4. सिंह, डॉ. अरूण कुमार, सिंह, डॉ. आशीष कुमार (2009), ''मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास'', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, छठा संशोधित संस्करण
5. डॉ. ए. रहमान, मनोविज्ञान का इतिहास
6. राज कुमार ओझा, मनो विज्ञान का इतिहास

इकाई 5

विल्हैम वुण्ट व एडवर्ड बी.टिचनर का मनोविज्ञान में योगदान

Contribution Wilhelm Wundt & Edward B.Titchner in Psychology

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 विल्हैम वुण्ट का जीवन परिचय

5.4 विल्हैम वुण्ट का कार्य क्षेत्र

5.5 विल्हैम वुण्ट का प्रयोग

5.6 वुण्ट का संरचनात्मक मनोविज्ञान

5.7 विल्हैम वुण्ट के योगदान का विश्लेषण

5.8 एडवर्ड बी. टिचनर का जीवन परिचय

5.9 एडवर्ड बी.टिचनर का संरचनात्मक मनोविज्ञान

5.10 एडवर्ड बी.टिचनर का योगदान

5.11 संरचनात्मक मनोविज्ञान में वुण्ट व टिचनर का योगदान

5.12 सारांश

5.13 अभ्यास प्रश्न

5.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान विज्ञान के रूप में मानव व्यवहार का प्रेरकों, भावनाओं, विचारों एवं क्रियाओं के संदर्भ में क्रमानुसार अध्ययन करता है। विज्ञान की भांति यह व्यवहार में निहित नियमों और सिद्धान्तों की खोज और व्याख्या करता है। हम विकास की अवस्थाओं में क्यों और कैसे व्यवहार करते है। व्यवहार के अन्तर्गत किस प्रकार का कार्य निहित रहता है। इसके अन्तर्गत गामक जैसे चलना, बोलना। ज्ञानात्मक जैसे ग्राह्यता, स्मरण, चिन्तन, तर्क एवं भावनात्मक जैसे प्रसन्नता, उदासीनता, क्रोध, भय आदि क्रियाऐं निहित रहती है। वुडवर्थ के शब्दों में ''जीवन की किसी प्रकार की अभिव्यक्ति को क्रिया कहा जा सकता है।''व्यवहार प्रतिक्रियाओं का पुंज है जिन्हें व्यक्ति किसी

विशेष अवसर पर उद्घाटित करता है। व्यक्ति के व्यवहार व सामाजिक क्रियाओं पर पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है। व्यवहार को वातावरण से अलग नही किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर हम अकस्मात् कोई ध्वनि सुनते है, खड़े हो जाते हैं और उस ओर अपना सिर मोड़ लेते हैं जिधर से ध्वनि आती है। ध्वनि उद्दीपक है और रूकना एवं सिर मोड़ना अनुक्रिया है। व्यवहार प्राणी उद्दीपक अनुक्रिया की विवेचना प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में की गई है। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान को विकसित करने में विल्हैम वुण्ट का सर्वाधिक योगदान रहा है। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पूर्ण रूप से प्रयोगों पर आधारित अध्ययन करता है। विल्हैम वुण्ट ने सर्वप्रथम जर्मनी के लिपजिंग विश्वविद्यालय में सन् 1879 में मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला स्थापित की। यह विश्व की प्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला थी। विल्हैम वुण्ट का योगदान संवेदना, साहचर्य, संवेग, प्रतिक्रियाकाल, भावना, विचार, मनोभौतिकी आदि क्षेत्रों में रहा है। वुण्ट का सबसे बडा योगदान मनोविज्ञान को विज्ञान बनाने में तथा मनोविज्ञान की समस्याओं का प्रयोगशाला में वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा हल करने में रहा है। वुण्ट को सहयोग करने वाला उनका प्रिय शिष्य टिचनर था जिसने वुण्ट के मार्ग पर चलते हुए इस कार्य को अमेरिका में मनोविज्ञान की प्रयोगशाला की स्थापना करके आगे बढाया। वुण्ट ने जर्मनी व टिचनर ने अमेरिका में संरचनावादी सम्प्रदाय की स्थापना की। वुण्ट की प्रयोगशाला मनोवैज्ञानिक गतिविधियों का केन्द्र बनी और विश्व के अनेक देशों के लोग वुण्ट के शिष्य बने और उनकी प्रयोगशाला में दृष्टि, प्रत्यक्षीकरण, श्रवण, स्पर्श और स्वाद प्रतिक्रियाकाल, साहचर्य आदि समस्याओं का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में दोनो के योगदान का वर्णन करेंगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- विल्हैम वुण्ट के जीवन परिचय को बता सकेंगें।
- विल्हैम वुण्ट के कार्यों को समझ सकेंगें।
- विल्हैम वुण्ट के प्रयोगों की व्याख्या कर सकेंगें।
- विल्हैम वुण्ट के संरचात्मक मनोविज्ञान की व्याख्या कर सकेंगें।
- एडवर्ड बी.टिचनर के जीवन परिचय को बता सकेंगें।
- एडवर्ड बी.टिचनर के कार्यक्षेत्र को बता सकेंगें।
- एडवर्ड बी.टिचनर के प्रयोंगो की व्याख्या कर सकेंगें।
- विल्हैम वुण्ट के संरचनात्मक व प्रकार्यात्मक मनोविज्ञान में अन्तर कर सकेंगें ।
- विल्हैम वुण्ट व टिचनर के संरचनात्मक सम्प्रदाय को बता सकेंगें।
- विल्हैम वुण्ट के प्रयोगात्मक मनोविज्ञान को समझ सकेंगें।

5.3 विल्हैम वुण्ट का जीवन परिचय(Life history of Wilhelm Wundt)

विल्हैम वुण्ट का जन्म 16 अगस्त 1832 ईस्वी में नेकाऊ के पास बेडन जर्मनी में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा ट्यूविनजेन विश्वविद्यालय में की और 1852 में हैडिलबर्ग विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा में

पदार्पण किया। वुण्ट ने शरीर क्रियामनोविज्ञान व चिकित्सा के क्षेत्र में **कार्लहेसे** के निर्देशन में शोध उपाधि प्राप्त की। उनकी रूचि शरीर विज्ञान की अपेक्षा प्राकृतिक मनोविज्ञान में अधिक थी। वे 1856 में बर्लिन चले गये वहाँ जान्स मुलर के इंस्टीट्यूट में विशेष अध्ययन किया। जान्स मुलर, वुण्ट के सलाहकार बने। 1858 में अपनी पहली पुस्तक **Physiological Psychology** को प्रकाशित कराया। 1864 में हैडिलबर्ग विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद पर कार्य किया यहाँ उनकी मुलाकात हेल्महौल्ज से 1871 में हुई तदुपरान्त उनकी नियुक्ति जर्मनी के लिपजिंग विश्वविद्यालय में दर्शन के प्रोफेसर के पद पर हुई यहीं पर 1879 में विश्व की प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना की। मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना के बाद वुण्ट विश्व भर में प्रसिद्ध हो गये |वुण्टका प्रयोग मनोवैज्ञानिकों के बीच चर्चा का विषय बन गया | इसलिए सभी मनोवैज्ञानिकों ने वुण्ट को प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का जन्मदाता कहा गया। वुण्ट ने कई पत्रिकाओं, लेख व पुस्तकों की रचना की। वुण्ट की पुस्तक " Principle of Physiological Psychology" का प्रथम अर्द्धभाग 1873 में तथा द्वितीय भाग 1874 में प्रकाशित हुआ। वुण्ट की दृष्टि में शरीर क्रिया मनोविज्ञान से तात्पर्य उस मनोविज्ञान से था, जिसका अनुसंधान शरीर क्रियात्मक विधियों से किया जाये। उनके लिए अन्तर्दर्शन विधि एक प्रमुख साधन थी। यद्यपि फेक्नर (Fechner) व हेल्महोल्ज अपने प्रयोग में अन्तर्दर्शन का उपयोग करते थे किन्तु वुण्ट की तरह नही। इस प्रकार वुण्ट ने व्यवस्थित मनोविज्ञान का विकास किया। वुण्ट असीम ज्ञान के धनी थे। वे कल्पनाशील, एकान्तप्रिय, चिकित्सक, शरीर वैज्ञानिक, दार्शनिक व प्रोफेसर थे। मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान करते-करते 31 अगस्त 1920 में सैक्सोनी, जर्मनी में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के जन्मदाता वुण्ट का स्वर्गवास हो गया।

5.4 विल्हैम वुण्ट का कार्यक्षेत्र (Working area Wilhelm Wundt)

विल्हैम वुण्ट ने 'Physiological Psychology और Psychology' के क्षेत्र में कार्य किया। वुण्ट के निर्देशन में एडवर्ड बी.टिचनर, जी. स्टेनले हॉल, आंसवाल्ड कुल्पे, हुयूगो मुन्सटबर्ग, वलादिमिर बेकटर्व, जेम्स मैक्कीन कैटल, लाइटनर विटमर इत्यादि ने अनुसंधान कार्य किया। वुण्ट के सभी शिष्यों में से टिचनर का विशेष योगदान रहा है। जिन्होंने वुण्ट का अनुनायी बनकर अन्तर्दर्शनात्मक व संरचनात्मक मनोविज्ञान के कार्य को आगे बढाया। वुण्ट ने मानव मस्तिष्क के चेतन स्तर का अन्तर्दर्शन (Introspection) के द्वारा वैज्ञानिक अध्ययन किया। वुण्ट के असीमित ज्ञान को बोरिंग ने एनसाइक्लोपीडिया (encyclopedia) की संज्ञा दी। वुण्ट ने मनोवैज्ञानिक जरनल की स्थापना की जिसका नाम है Philosophical Studies(1881) था।

वुण्ट ने मनोविज्ञान की अध्ययन सामग्री को व्यवस्थित किया और बताया कि मनोविज्ञान का अध्ययन करने वाले को अपने सामने तीन उद्देश्य रखने चाहिए:-

1. चेतना से संबंधित प्रक्रियाओं का अध्ययन उनके मूल तत्वों के संदर्भ में करना चाहिए।
2. ये सभी तत्व आपस में संगठित कैसे हैं।
3. तत्वों के संगठन संबंधी नियमों की खोज करना।

5.5 वुण्ट के प्रयोग (Wundt's Experiment)

वुण्ट ने संरचनात्मक मनोविज्ञान की नींव डाली और टिचनर ने उसका विकास किया। वुण्ट के योगदानों को दो भागों में बांटा जाता है।

1. वुण्ट एक व्यवस्थित मनोवैज्ञानिक के रूप में
2. वुण्ट एक प्रयोग कर्ता के रूप में

1 वुण्ट एक व्यवस्थित मनोवैज्ञानिक के रूप में:- वुण्ट ने मानव स्वभाव का अनेक दृष्टिकोण से अध्ययन किया है और अध्ययन सामग्री के विश्लेषण में अन्तर्दर्शन विधि का सहारा लिया है। उसको पाँच भागों में वर्गीकृत किया है:-

1. वुण्ट का सिद्धान्त(Wundt system)
2. मनोविज्ञान का व्यवस्थित आधार (Systematic Fundamentals)
3. मानसिक प्रक्रियाऐं (Mental Process)
4. मानसिक नियम (Mental Law)
5. संप्रत्यक्ष (Apperception)

➢ वुण्ट का सिद्धान्त (Wundt System)

वुण्ट ने 1860 में एक मनोवैज्ञानिक तंत्र या सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे ''अचेतन अनुमान के सिद्धान्त'' (Doctrine of Unconscious Interference) के रूप में स्वीकार किया। वुण्ट ने प्रत्यक्षीकरण और भावनाओं की क्रियाओं को एक-दूसरे से भिन्न बताया।इन दोनों की क्रियाओं में भिन्नता के साथ-साथ एक विशेष अंतर भी होता है| वुण्ट ने 1773 में मनोवैज्ञानिक सम्मिश्रण का सिद्धान्त 'Doctrine of Psychological Compounding' प्रतिपादित किया। उन्होने बताया कि चेतना में बहुत सारे तल पाये जाते हैं जैसे भावना (Affection), संवेदना (Sensation), इच्छा आदि। साहचर्य के आधार पर ये तत्व आपस में मिश्रण की क्रिया के माध्यम से संगठित हो जाते हैं और चेतना को क्रियाशील करते हैं। चेतना के इन तत्वों से यौगिक (Compounds) का निर्माण होता है। वुण्ट ने 1896 में 'Grundiss' पुस्तक में भावना का त्रिविमीय सिद्धान्त 'Tridimensional Theory of Feeling' प्रतिपादन किया। भावाना की तीन विमाऐ हैं - सुख-दुःख (Pleasure-Pain), खिंचाव विश्रान्ति (Strain-Relaxation) तथा उत्तेजना-प्रशान्त (Excitement-Calm) । वुण्ट का कहना है कि प्रत्येक भावना इस त्रिविमीय सीमा में रखी जाती है। वुण्ट ने भावना का नवीन सिद्धांत तथा सम्प्रत्यक्ष का प्रत्यय 1903 में 'Physiological Psychology' पुस्तक में प्रकट किया है|

➢ मनोविज्ञान का व्यवस्थित आधार(Systematic Fundamentals)

मनोविज्ञान को अनुभव का विज्ञान (science of experience) माना है। उन्होने मनोविज्ञान को दर्शन तथा भौतिकी से अलग करते हुए मनोविज्ञान में आन्तरिक अनुभव का अध्ययन किया है। वुण्ट ने आन्तरिक अनुभव, विचारों व संवेदना को अन्तर्दर्शन विधि द्वारा ज्ञात किया है। इस मत के अधर पर उन्होंने मनोविज्ञान को दर्शन से अलग किया| वास्तव में वुण्ट दार्शनिक थे किन्तु वो मनोविज्ञान को दर्शन के अभाव से दूर रखने की बात कहते है| इसी संदर्भ में अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने एक जगह लिखा भी है कि दर्शन के कारण मनोविज्ञान की प्रगति रुकी हुई है|

वुण्ट की दूसरी विचारधारा मनोविज्ञान की विधि से सम्बंधित है| अन्तर्दर्शन (Introspection) को उन्होंने मनोविज्ञान के अध्ययन की प्रमुख विधि माना | इसके साथ–साथ यह भी बताया की अंतर्दर्शन के द्वारा पूर्ण रूप से मानव स्वभाव का अध्ययन नहीं कर पायेगें | उसने अंतर्दर्शन को प्रयोगों से सम्बद्ध कर दिया | वुण्ट ने मनोविज्ञान की तीन समस्याएं बताई – (1) चेतन–प्रक्रियाओं का तत्वों के माध्यम से विश्लेषण (2) तत्वों के आपसी संबंधों का अध्ययन (3) तत्वों के संबंधो की जानकारी हेतु विशेष नियमों को ज्ञात करना |

➢ **मानसिक प्रक्रियाऐं(Mental Process)**

वुण्ट ने मन (mind) व मस्तिष्क (Brain) में अन्तर बताया। उसके विचार में मन का प्रत्येक तत्व मानसिक प्रक्रिया है। इस संबंध में वुण्ट ने क्रियाशीलता के सिद्धान्त (theory of activity) का प्रतिपादन किया। वुण्टने मानसिक प्रक्रिया व मन को वास्तविक माना है किन्तु घटना को नहीं|

➢ **मानसिक नियम(Mental Law)**

मानसिक प्रक्रियाओं की प्रगति तथा उनके कार्यों को समझने के लिए वुण्ट ने मानसिक दुर्घटनाओं का सिद्धान्त (theory of psychic casuality) का प्रतिपादन किया। प्रत्येक मानसिक क्रिया का कोई न कोई कारण होता है। चेतन क्रियाओं व मानसिक क्रियाओं को पारस्परिक साहचर्य द्वारा समझाया गया है। साहचर्य निर्माण में चार क्रियाएँ गतिमान होती है-

i) संगलन (Fusion) ii) स्वांगीकरण (assimilation) iii) जटिलता (Complication) iv) स्मृति सम्बन्धी साहचर्य (memorial associations)

➢ **संप्रत्यक्ष(Apperception)**

वुण्ट ने सम्प्रत्यक्ष (Apperception)को वास्तविक चेतना माना है। इसे घटनाओं का स्वरूप कहा है। चेतना के अन्दर क्रियाऐं निहित होती है और जब चेतना अधिक स्पष्ट हो जाती है तो वह संप्रत्यक्ष का प्रारूप बन जाती है। संप्रत्यक्ष चेतना के प्रवाह के समान है। संप्रत्यक्ष निरन्तर सक्रिय होता है। वुण्टके अनुसार सम्प्रत्यक्ष की तीन विशेषताएं है- i) सम्प्रत्यक्ष एक घटना है| ii) सम्प्रत्यक्ष एक ज्ञान है| iii) सम्प्रत्यक्ष एक सक्रियता है|

2. वुण्ट एक प्रयोगकर्ता के रूप में (Wundtas an Experientialist)

वुण्ट को प्रयोगकर्ता के रूप में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के इतिहास का जनक मानाजाता है। वही एक मात्र व्यक्ति है जिसने मनोविज्ञान की सामग्री को प्रायोगिक रूप में संजोया और मनोवैज्ञानिक जगत में हलचल उत्पन्न कर दी। विश्व की सबसे पहली मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना जर्मन विद्वान वुण्ट ने ही की थी। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में वुण्ट का योगदान प्रमुख है:-

i) **दृष्टि तथा श्रवण का मनोविज्ञान और दैहिकी**:-हैल्महोल्ज ने पहले ही दृष्टि व श्रवण संबंधी कार्य किये परन्तु वुण्ट के प्रयोगों के माध्यम से नेत्रगति, रेटिना की क्रियाशीलता की अवधि, श्रवण क्रिया के पक्ष आदि पर बहुत सा कार्य किया।

ii) **प्रतिक्रिया काल (Reaction Time)** :- वुण्ट की प्रयोगशाला में प्रतिक्रिया काल पर बहुत से प्रयोग किये। हैल्महोल्ज तथा डोन्डर्स (Donders) ने भी प्रतिक्रिया काल पर प्रयोग किये परन्तु वुण्ट ने प्रतिक्रिया काल के द्वारा मानसिक प्रक्रियाओं को समझा| उसने प्रतिक्रिया काल की सहायता से

आत्मबोध संबंधी क्रियाओ का अध्ययन किया। उन्होंने संवेदी तथा पेशीय दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं को ज्ञात किया। वुण्ट ने समझा की प्रतिक्रिया काल में जब प्रयोज्य उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया करता है तब तीन अवस्थाऐं होती हैं - प्रत्यक्ष (Perception), संप्रत्यक्ष या समाकल्पन (Apperception) तथा संकल्प (will) । जब प्रयोज्य को उद्दीपक दिया जाता है तब वह सर्वप्रथम उसको प्रत्यक्ष करता है फिर वह उसका समाकल्पन करता है और अन्त में वह प्रतिक्रिया करने का संकल्प करता है। फलस्वरूप पेशीय (muscular) उत्तेजना पैदा हो जाती है। प्रायः विषय पात्र या प्रयोज्य अभ्यस्त हो जाते हैं और उनमें प्रत्यक्षीकरण व संप्रत्यक्ष की प्रक्रियाएं मिल जाती है जिसके कारण उन्हें भिन्नता की अनुभूति नहीं होती है। प्रतिक्रिया काल की सहायता से संज्ञान (cognition), प्रभेद (discrimination), समीक्षा (will), साहचर्य (association) आदि का मापन कर सकते हैं।

iii)**अवधान (Attention)**:- वुण्ट ने अवधान के दो पक्षों पर कार्य किया। (1) ध्यान का विचलन (Fluctuation of Attention)तथा (2) ध्यान का विस्तार (Range of attention) । इनके अध्ययन हेतु वुण्ट ने 'Complications Experiment' पर कार्य किया। वुण्ट ने अवधान को द्विविमीय बताया। simultaneous तथा successive अवधान का विस्तार दोनो दिशाओं में होता है। वुण्ट ने कम शक्ति के उद्दीपकों पर प्रयोग किये जिनकी सहायता से उसने अवधान के विचलन पर कार्य किया।

iv) **भावना (Feeling)**:- भावना के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन वुण्ट ने किया था, उस पर अनेक प्रयोग किये गये थे। वुण्ट के शिष्य कोहन ने 1894 में paired comparisons विधि का प्रतिपादन किया था जो फैश्नर (Fechner) के Method of Expression पर आधारित थी। वुण्ट ने paired comparisons विधि का सहारा लेकर नाड़ी गति (Pulse Rate), श्वासोच्छवास (Breathing) आदि शारीरिक क्रियाओं का भावना से क्या संबंध है? यह जानने के लिए भावना के त्रिवीमिय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

v) **साहचर्य प्रयोग (Association)**:- गाल्टन पहला व्यक्ति था जिसने साहचर्य पर प्रयोग किये थे। वुण्ट ने अपनी प्रयोगशाला में गाल्टन पद्धति के द्वारा प्रयोगों को नवीन व सरल बनाया। वुण्ट ने साहचर्य को दो भागों में बाँटा है:- 1. आन्तरिक साहचर्य (Internal association) 2.बाह्य साहचर्य (Outer association) । आन्तरिक साहचर्य वह होता है जिसमें दो शब्दों के अर्थों में आन्तरिक संबंध होता है, उदाहरण के लिए परिभाषायें आन्तरिक साहचर्य होती है | प्रत्युत्तर शब्द बोला जाये और उत्तर हो 'पशु' , इस प्रत्युत्तर में विषयपात्र उद्दीपक शब्द के एक पक्ष पर विशेष बल देते हुये सामान्यीकारण का रूप देता है | आन्तरिक साहचर्य दो प्रकार के होता है (i) व्यापक व्याप्त (Subordination) तथा (ii) समकक्ष साहचर्य (Co-ordination association)|उद्दीपक शब्द भेड़ पशु अनुक्रिया को पैदा करते है, जिनमें सार्थक संबंध होते हैं। व्यापकव्याप्य का उदाहरण अमरूद फल है तथा संवर्ग का उदाहरण गाय, घोड़ा है।बाह्य साहचर्य वे होते है जिनमें उद्दीपक और प्रत्युत्तर के बीच आकस्मिक सम्बन्ध होता है, जैसे मोमबती उद्दीपक शब्द बोला जाये और दीपावली प्रत्युत्तरके रूप में बोला जाये | वुण्ट के शिष्यों में क्रेपेलिन (Krapelin) थे जिन्होंने वुण्ट की प्रयोगात्मक विधि को मनोविकृति विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रयोग किया। उन्होंने थके हुए, शराब पिये हुए व भूखे व्यक्तियों पर प्रयोग किये हैं। वुण्ट ने उपर्युक्त चार प्रयोगात्मक क्षेत्रों संवेदना की मनोभौतिकी,

प्रतिक्रिया समस्त प्रयोग, मनोभौतिकी प्रयोग,साहचर्य प्रयोग ने उनको तथा उनके शिष्यों को अत्यन्त व्यस्त रखा। वुण्ट ने बाल मनोविज्ञान तथा पशु मनोविज्ञान में भी रूचि ली।

5.6 वुण्टका संरचनात्मक मनोविज्ञान (Cognitive Psychology of Wundt)

उन्नीसवीं शताब्दी में जो विद्वान संवेदनाओ तथा अनुभवों के अध्ययन में रूचि ले रहे थे अपनी अध्ययन सामग्री को मनोवैज्ञानिक जगत में प्रस्तुत कर रहे थे, वे सभी संरचनावादी कहे गये| इस सम्प्रदाय के अंतर्गत दो प्रमुख व्यक्तियों को रखा जाता है- वुण्ट व टिचनर |

वुण्टने जर्मनी में संरचनावादी सम्प्रदाय की स्थापना की | वुण्टने मानव चेतना का स्त्रोत मानसिक प्रक्रियाओं में निहित बताया है| मानव चेतना की कार्य प्रणाली में मानसिक तत्व सक्रियता प्रदान करते है, इसलिए मानव चेतना को समझने के लिए सम्पूर्ण मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण अति आवश्यक है | संरचनात्मक मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियो की गतिशीलता और उसको सक्रिय बनाने वाले मानसिक तत्वों से सम्बंधित है| मानव चेतना मानसिक प्रक्रियाओं का एक मिला जुला क्रियात्मक पक्ष है | वुण्ट ने संरचनात्मक मनोविज्ञान को अन्तर्दर्शनात्मक मनोविज्ञान माना है, क्योंकि वह अंतर्दर्शन विधि पर आधारित है| संरचनात्मक मनोविज्ञान विशेष रूप से मानव चेतना (human conscious), संवेदना(emotions), अनुभूति (Perception) और अनुभवों (Experience) का अध्ययन करता है| संरचनावाद मनोविज्ञान (structural psychology) का विश्लेषण करते हुए वुण्टने लिखा है कि "मनोविज्ञान को आन्तरिक अनुभव की खोज करनी चाहिए अर्थात हमें अपने संवेदना और अनुभव, अपने विचार और संकल्प जैसे मानसिक तत्वों का अध्ययन करना चाहिए'| वुण्टने मन और मस्तिष्क में अंतर बताया कि मन का प्रत्येक तत्व मानसिक प्रक्रिया है | संरचनावाद मनोविज्ञान की विषयवस्तु चेतन अनुभव, तात्कालिक अनुभव, संवेदनाये तथा प्रतिमाओ का मिश्रण है|

5.7 विल्हैम वुण्ट के योगदान का विश्लेषण:- (Analysis of Wilhelm Wundt contribution)

विल्हैम वुण्ट की सबसे अधिक आलोचना उनके सिद्धान्तों को लेकर हुई है। मनोवैज्ञानिकों ने वुण्ट के संप्रत्यक्ष सिद्धान्त तथा भावना का त्रिविमीय सिद्धान्त की सर्वाधिक आलोचना की। किन्तु प्रयोगात्मक मनोविज्ञान वुण्ट से ऋण मुक्त नही हो सकता है, क्योंकि वुण्ट ने अध्ययन पद्धतियों को निर्धारित करने के लिए प्रयोगों का आविष्कार किया । उनके द्वारा स्थापित विश्व की प्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला ने मनोवैज्ञानिकों को अनुसरण करने हेतु विवश कर दिया। वुण्ट ने प्राचीन मनोविज्ञान से नवीन मनोविज्ञान को अलग कर दिया और एक नवीन प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की स्थापना की। वुण्ट ने बाल मनोविज्ञान, पशु मनोविज्ञान, जन मनोविज्ञान पर भी अपने विचार व प्रयोग प्रकट किये। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि मनोविज्ञान का श्रेय वुण्ट को ही जाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1 जर्मनी में मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना किसने की ?

2 भावना के त्रिविमीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया ?

3 विल्हैम वुण्ट का जन्म कहाँ हुआ ?

4 विल्हैम वुण्ट ने संरचनावाद की स्थापना कहाँ पर की थी?

5 विल्हैम वुण्ट के शिष्यों के नाम बताइये ?

6 विल्हैम वुण्ट किसके विचारों से सबसे ज्यादा प्रभावित हुये ?

7 वुण्ट ने किस विषय में शोध उपाधि की डिग्री प्राप्त की ?

8 वुण्ट के कार्यक्षत्रों का विवेचन कीजिये ?

9 "Principles of Physiological Psychology" पुस्तक किसने लिखी ?

10 वुण्ट ने समाकल्पन सिद्धान्त के कौन-कौन से पक्ष दिये हैं ?

Edward Bradford Titchener (1867-1927)

5.8 एडवर्ड बी.टिचनर का जीवन परिचय (Life history of Edward B. Titchener)

एडवर्ड ब्रेडफोर्ड टिचनर का जन्म 11 जनवरी 1867 को चिचेस्टर इंग्लैण्ड में हुआ था। टिचनर की प्रारम्भिक शिक्षा मालवर्न कॉलेज में हुई तत्पश्चात् 1885 से 1890 तक आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। टिचनर ने पहली बार ऑक्सफोर्ड में विल्हैम वुण्ट के ग्रंथों को पढा और पढ कर के वह बहुत ज्यादा प्रभावित हुआ। इसके बाद टिचनर वुण्ट की प्रयोगशाला में जर्मनी चला गया। वहाँ उसने वुण्ट के निर्देशन में 1892 में डॉक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। उसका मन, विचार, कार्य और अनुसंधान सभी वुण्ट के रंग में रंगे हुए थे। वह वुण्ट का अनन्य भक्त व अनुयायी बन गया। वुण्ट के बौद्धिक कार्यों व प्रयोगात्मक अनुसंधानों से प्रभावित होकर टिचनर 1892 में अमेरिका के कार्नेल विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर कार्य करने लगा। जीवन पर्यन्त वह वहीं रहा और 3 अगस्त 1927 में इनकी न्यूयॉर्क (New York) में ब्रेनट्यूमर (Braintumor) के कारण मृत्यु हो गई।

टिचनर वुण्ट की विचारधारा का प्रमुख प्रचारक था। टिचनर ने वुण्ट से जो कुछ सीखा था उसको क्रियान्वित करने के लिए अमेरिकीवादी विचारधारा को चरम सीमा पर पहुँचाया। अमेरिका में रहते हुए भी उसने जर्मन तथा ब्रिटिश परम्पराओं और दृष्टिकोण ही अपने कार्यक्षेत्र का केन्द्र बिन्दु रखा। टिचनर ने वुण्ट की पुस्तक Principle of Philosophical Psychology का जर्मन से अंग्रेजी में अनुवाद किया। वुण्ट की कई ऐसी पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। टिचनर का कार्यक्षेत्र पूर्णतया मनोवैज्ञानिक ही था। टिचनर की प्रयोगशाला में कई योग्य छात्रों ने मनोवैज्ञानिक अनुसंधान कार्य किये जिनमें से Edwin Garrigue Boring तथा Margared Floy Washburn प्रमुख थे। वाशबर्न प्रथम महिला थी जिसने 1894 में टिचनर के निर्देशन में मनोविज्ञान में पीएचडी की। टिचनर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोचता था इसलिए उसने 1898 में संरचनात्मक मनोविज्ञान तथा प्रकार्यात्मक मनोविज्ञान दोनो का प्रयोग किया। उसने वुण्ट के मनोविज्ञान की संरचनात्मक तथा अमेरिकी

मनोविज्ञान को प्रकार्यात्मक मनोविज्ञान के नाम से पुकारा। टिचनर ने Structural and Functional Psychology पर लेख लिखा।

मर्फी के अनुसार ''टिचनर का संरचनावाद एक प्रकार से वुण्ट के विचारों का ही सरल रूप है।''

5.9 टिचनर का संरचनात्मक मनोविज्ञान (Titchener and Structural Psychology)

संरचनावाद मनोविज्ञान के विषय में टिचनर ने अपने विचारों को निम्न रूप से प्रकट किया है।

1. **मनोविज्ञान का उद्देश्यतथा विषय सामग्री (Aims and subject matter of Psychology)**

   टिचनर का कहना है प्रत्येक मनोवैज्ञानिक घटना के दो पक्ष होते हैं - संरचना (Structure) तथा 2. कार्य (Function) । उसने बताया कि मनोविज्ञान चेतना का अध्ययन (psychology is the study of conscious) है। मनोविज्ञान का उद्देश्य चेतना की रचना का अध्ययन करना ही होना चाहिए। रचना का अध्ययन पहले और कार्य का अध्ययन बाद में किया जाना चाहिए। रचना में क्या और कार्य में कैसा या किसलिए प्रश्नों का अध्ययन किया जाता है।

   टिचनर का कहना था कि प्रकार्यात्मक की अपेक्षा संरचनात्मक अध्ययन को प्राथमिकता देनी चाहिए क्योंकि जब तक हम पूर्व रूप से चेतन क्रिया को नही जान लेते तब तक यह जानने की इच्छा नही करते कि वे जीव के लिए क्या करती हैं। इस विचारधारा के द्वारा टिचनर ने मनोविज्ञान के उद्देश्य व विषय सामग्री को निश्चित किया। Postulates of Structural Psychology नामक लेख में वह लिखता है कि मनोविज्ञान के द्वारा हमें सम्पूर्ण जीवनकाल की अर्जित की हुई चेतना के तत्वों का, उनके गुणों का तथा उससे संबंधित भावना एवं अनुभूति का अध्ययन करना चाहिए।

2. **संरचनात्मक मनोविज्ञान की समस्याऐं (Problems of Structural Psychology)**

   टिचनर के अनुसार संरचनात्मक मनोविज्ञान के अन्तर्गत चार समस्याओं का अध्ययन किया जाना चाहिए -(1) संरचना के तत्वों एवं उनके यौगिकों (The elements and their attributes), (2) तत्वों के सम्मिश्रण का रूप (Elements modes of composition), (3) सामान्य यौगिकों के प्रकार की रचनात्मक विशेषताऐं (The structural characteristics of familiar types of compounds), (4) अवधान की प्रकृति एवं कार्य (The nature and role of attention) ।

3. **संरचनात्मक मनोविज्ञान की विधियाँ (Methods of structural Psychology)**

   टिचनर ने वुण्ट की भाँति अन्तर्दर्शन विधि को ही प्रमुख माना। उसने विवरण (Description) तथा व्याख्या (Explanation) को भी स्वीकार किया। विवरण में क्या और कैसे तथा व्याख्या में क्यों के प्रश्न पर विचार किया जाता है। टिचनर कहता है कि विवरण में दो क्रियाऐं आती है जो संरचनात्मक मनोविज्ञान में काम आती है। मानसिक व शारीरिक क्रियाओं का अध्ययन करने वाली विधियों का संरचनात्मक मनोविज्ञान में प्रयोग

किया जाना चाहिए। उसने अन्तर्दर्शन पर बल देते हुए कहा कि इस विधि का प्रयोग करने वाले प्रशिक्षित अन्तर्दर्शनकर्ता होने चाहिए।

4. **मनोविज्ञान चेतन-अनुभव का विज्ञान है (Psychology is the science of conscious experience)**

   टिचनर मनोविज्ञान को सदैव विज्ञान मानता है, क्योंकि मनोविज्ञान चेतन अनुभव (Conscious Experience) का विज्ञान है। टिचनर के विचार में मनोवैज्ञानिक विज्ञान के अन्तर्गत चेतना का अध्ययन तथा जैविक विज्ञान द्वारा व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।चेतन अनुभव का संबंध व्यक्तिकी आन्तरिक प्रक्रियाओं से होता है जिनका संचालन एवं नियन्त्रण तन्त्रिका तन्त्र करता है। उसके अनुसार चेतन अनुभव वातावरण में कदापि नही होता जबकि व्यवहार का संबंध सीधा वातावरण से होता है। टिचनर ने कहा है कि मस्तिष्क शरीर का भाग है अतः शरीर और मन दोनो भौतिक जगत के अंग हैं। चेतना तथा मस्तिष्क के अन्दर तन्त्रिका प्रक्रम समानान्तर होते रहते हैं किन्तु एक को दूसरे का कारण नही माना जा सकता। इस प्रकार मनोदैहिक समान्तरवाद के रूप शरीर और मन की समस्या को हल करने के लिए टिचनर ने द्वैतवाद को स्वीकार किया।

5. **टिचनर का अन्तर्दर्शन (Introspection)**

   चेतन मन के तत्वों को जानने के लिए टिचनर ने अन्तर्दर्शन विधि का प्रयोग किया। टिचनर ने चेतना को तीन तत्वों में विभाजित किया है - (1) संवेदना (2) प्रतिमा (3) अनुभव। इन तीनों तत्वों के द्वारा जटल तथा उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं का निर्माण होता है।

6. **टिचनर का Empathy:-**

   टिचनर के द्वारा अंग्रेजी का शब्द Empathy 1909 में जर्मनी भाषा से अनुवादित किया जिसका तात्पर्य है - मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दूसरों की क्षमताओं भावनाओं व अभिवृत्तियों को समझना। टिचनर ने अपनी पुस्तक An Outline of Psychology 1986 में चेतन अनुभव के 44 हजार तत्वों के गुणों की सूची तैयार की है।

5.10 टिचनर का योगदान (Contribution of Titchener)

टिचनर ने अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन (APA) के सदस्य रहते हुए संरचनात्मक व प्रकार्यात्मक मनोविज्ञान को अलग किया है। टिचनर ने 1895 में अमेरिकन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी के सहायक प्रकाशक के रूप में कार्यरत रहकर कई पुस्तकें लिखे। 1904 में प्रयोगात्मक मनोवैज्ञानिकों के समूह की स्थापना की जो सोसायटी ऑफ एक्सपेरिमेंटल साइकोलोजिस्ट के नाम से वर्तमान में कार्यरत है। टिचनर के योगदान को निम्न वर्गों में बाँटा जा सकता है -

1. **मानसिक संरचना (Mental Structure)**

   मानसिक संरचना के तीन तत्व है- संवेदना (sensations), भावना (Affection) व प्रतिमा (Image) |संवेदना से तात्पर्य प्रत्यक्ष ज्ञान से है जो चेतन अनुभव व मन की संरचना का निर्माण करता है। इन्द्रियों से सम्बंधित ज्ञान तथा दृष्टि ,श्रवण ,सूँघने व स्पर्श ज्ञान संवेदना पर आधारित होता है| 'भावना' संवेग का तत्व है। बिना भावना के संवेगों का संचालन संभव

नहीं | भावात्मक प्रक्रिया से संवेग की सीमा निर्धारित होती है साथ ही संवेग पक्ष मानव की चेतना परिधि को भी सीमित करता है | प्रतिमा तत्व विचारों पर आधारित होता है जो कल्पनाशक्ति को विकसित करता है। पूर्व-प्रतिमाओं का स्मरण करते ही कल्पना शक्ति का विकास होने के साथ भावी योजनाओं की कल्पना जाग्रत हो जाती है |

2. **व्यक्तिगत अनुभव (Individual Experience)**

   व्यक्ति के अनुभवों का विश्लेषण करने के लिए उसकी शारीरिक संरचना तथा तन्त्रिका तन्त्र का अध्ययन करना जरूरी है। इस अध्ययन से मानसिक प्रक्रियाओं की कार्य-व्यवस्था को समझने में सहायता मिलती है| सम्पूर्ण जीवन के अनुभवों का योग मन का निर्माण करता है व मानव की उसके व्यतिगत अनुभवों का योग होती है |

3. **शारीरिक संरचनाऐ और मानसिक प्रक्रियाऐं (Physical Structure and Mental Process)**

   पंचज्ञानेन्द्रियों की रचना का संबंध व्यक्ति की मानसिक अवस्था व उसकी कार्यप्रणालियों से होता है अर्थात् शारीरिक रचनाओं में होने वाले परिवर्तन मानसिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन उत्पन्न कर मन की व्यवस्था में परिवर्तन ला देते हैं। टिचनर के मतानुसार शरीर और मन मिलकर मानसिक प्रक्रियाओं का संचालन करते हैं।

5.11 संरचनात्मक मनोविज्ञान में वुण्ट व टिचनर का योगदान (Contribution of Wundt and Titchener in Structural Psychology)

संरचनात्मक मनोविज्ञान वुण्ट और टिचनर की विचारधारा का संकलन है। इन दोनों विद्वानों की अध्ययन सामग्री ने इस सम्प्रदाय की नींव रखी है। मनोविज्ञान में जितने भी सम्प्रदाय विकसित हुए हैं उनमें जर्मनी में वुण्ट की और अमेरिका में टिचनर की बौद्धिक सामग्री प्रतिध्वनित होती है। यद्यपि इन दोनों की आलोचनाऐं भी बहुत हुई है फिर भी वर्तमान मनोविज्ञान इन्हें भुला नही सकता है। वुण्ट के प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के जन्मदाता होने का श्रेय इतिहास दोहराता रहेगा। वुण्ट और टिचनर ने मनोविज्ञान अध्ययन सामग्री को व्यवस्थित तथा उसे अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाया। दोनों ने विशेषकर मानवीय चेतना के संदर्भ में अन्तर्दर्शन विधि के साथ-साथ निरीक्षण विधि और प्रयोगात्मक विधि को भी महत्व दिया है।

अभ्यास प्रश्न 2

1 अमेरिका में संरचनात्मक मनोविज्ञान की स्थापना किसने की ?

2 एडवर्ड बी.टिचनर का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?

3 टिचनर की प्रमुख पुस्तक का नाम बताइये ?

4 टिचनर ने किसके निर्देशन में शोध उपाधि प्राप्त की ?

5 विल्हैम की पुस्तक “Principle of Physiological Psychology” का अंग्रेजी अनुवाद किसने किया?

6	टिचनर ने कहाँ पर प्रयोगात्मक प्रयोगशाला की स्थापना किसने की ?
7	टिचनर के संरचनात्मक मनोविज्ञान का वर्णन कीजिये ?
8	टिचनर के कार्यक्षेत्रों का उल्लेख कीजिये ?

5.12 सारांश (Summary)

मनोविज्ञान विज्ञान के रूप में मानव व्यवहार का प्रेरकों, भावनाओं, विचारों एवं क्रियाओं के संदर्भ में क्रमानुसार अध्ययन करता है। विज्ञान की भांति यह व्यवहार में निहित नियमों और सिद्वान्तों की खोज और व्याख्या करता है। वुण्ट ने मनोविज्ञान के प्रयोगों का परिक्षण वैज्ञानिक नियमों, सिद्वान्तों व विधियों के आधार पर किया है | प्रयोग करते-करते वुण्टने एक नवीन प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की संरचना की जिसे बाद में विश्व में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के नाम से जाना गया | वुण्ट ने संरचनात्मक मनोविज्ञान की स्थापना की और मन व मस्तिष्क की संरचना पर जोर दिया | टिचनर का कहना है प्रत्येक मनोवैज्ञानिक घटना के दो पक्ष होते हैं - संरचना तथा 2. कार्य | उसने बताया कि मनोविज्ञान चेतना का अध्ययन है। मनोविज्ञान का उद्देश्य चेतना की रचना का अध्ययन करना ही होना चाहिए। रचना का अध्ययन पहले और कार्य का अध्ययन बाद में किया जाना चाहिए। रचना में क्या और कार्य में कैसा या किसलिए प्रश्नों का अध्ययन किया जाता है।

वुण्ट और टिचनर ने संरचनात्मक मनोविज्ञान को अपने कार्यक्षेत्र का केंद्र बिंदु रखा | वुण्ट ने केवल मन व मस्तिष्क की संरचा पर कर किया लेकिन उनके शिष्य टिचनर ने उनसे एक कदम आगे बढते हुए मन व मस्तिष्क की संरचना के साथ कार्य पर भी जोर दिया| टिचनर द्वारा स्थापित प्रकार्यात्मक मनोविज्ञान इसी की देन है | इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते है कि मनोविज्ञान, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान व संरचनात्मक सम्प्रदाय को स्थापित करने में वुण्ट व टिचनर का ही सर्वश्रेष्ठ योगदान रहा है |

5.13 अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ

1 भावना के त्रिविमीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया ?

अ) विल्हैम वुण्ट ब) टिचनर

स) विलियम जेम्स द) एबिंगहॉस

2 विल्हैम वुण्ट का जन्म कब हुआ ?

अ) 16 अगस्त 1832 ब) 16 अगस्त 1833

स) 16 अगस्त 1834 द) 16 अगस्त 1831

3 अमेरिका में संरचनावाद की स्थापना किसने की ?

अ) ए. बी.टिचनर ब) विलियम जेम्स

स)विल्हैम वुंट द) वुडवर्थ

अतिलघुतरात्मक प्रश्न

4 टिचनर ने किसके ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवाद किया ?

5 अमेरिका में प्रयोगात्मक प्रयोगशाला की स्थापना किसने की ?

6 एडवर्ड बी.टिचनर 1892 में किस विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बने ?

7 विल्हैम वुण्टने 1864 में किस विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद पर कार्य किया ?

लघूतरात्मक प्रश्न

8 विल्हैम वुण्टके कार्यक्षेत्रों का विवेचन कीजिए ?

9 विल्हैम वुण्टके प्रयोगों की व्याख्या कीजिए ?

10 टिचनर के संरचनात्मक व प्रकार्यात्मक मनोविज्ञान में अंतर स्पष्ट कीजिए ?

निबंधात्मक

11 संरचनात्मक मनोविज्ञान में वुण्ट व टिचनर का क्या योगदान है ? स्पष्ट कीजिए |

5.14 संदर्भ सूची

- डॉ. ओझा आर.के .,2005, मनोविज्ञान में समकालीन उपागम एवं विचारधाराएँ , विनोद पुस्तक मंदिर आगरा |
- डॉ शर्मा जे.डी, 2005 मनोविज्ञान की पद्धतियों एवं सिद्दांत, विनोदपुस्तक मंदिर आगरा |
- शर्मा, गणपतराम व व्यास हरिश्चंद्र ,2007 ,अधिगम शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक आधार, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर|
- डॉ. वर्मा प्रीती व श्रीवास्तव डी . एन . आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान , विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
- डॉ भटनागर सुरेश, 2008 , शिक्षा मनोविज्ञान तथा शिक्षणशास्त्र विनोद पुस्तक मंदिर आगरा |
- डॉ सिंह , अरुण कुमार, 2005, मनोविज्ञान , भारती पब्लिकेशन प्रा. लि .
- डॉ सिंह, अरुण कुमार, (2006), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली |
- डॉ.सिंह, अरुण कुमार, समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली |
- डॉ सिंह , अरुण कुमार ,2001 ,शिक्षा मनोविज्ञान , भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर पटना |
- गुप्ता, एस. पी.व अल्का , 2007 , उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भंडार ,इलाहाबाद|
- माथुर,एस .एस ,2004, शिक्षा मनोविज्ञान , विनोद पुस्तक मंदिर , आगरा |
- मंगल,एस. के., 2002 , शिक्षा मनोविज्ञान , प्रेन्टिस हॉल ऑफ़ इंडिया , नई दिल्ली |

इकाई-6

विलियम जेम्स व हरमन एबिंगहॉस का मनोविज्ञान में योगदान

Contribution in psychology of William James and Hermann Ebbinghaus

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 विलियम जेम्स का जीवन परिचय

6.3 विलियम जेम्स का कार्य-क्षेत्र

6.4 विलियम जेम्स का मनोविज्ञान में योगदान

6.5 एबिंगहॉस का जीवन परिचय

6.6 एबिंगहॉस का प्रयोग व कार्यक्षेत्र

6.7 एबिंगहॉस का योगदान

6.8 सारांश

6.9 अभ्यास प्रश्न

6.10 संदर्भ-सूची

6.0 उद्देश्य(Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप

- विलियम जेम्स का जीवन परिचय बता सकेंगें |
- विलियम जेम्स के कार्यक्षेत्र को समझ सकेंगें |
- विलियम जेम्स के प्रयोगों की व्याख्या कर सकेंगें |
- विलियम जेम्स के मनोवैज्ञानिक योगदान का वर्णन कर सकेंगें |
- एबिंगहॉस के जीवन परिचय को बता सकेंगें |
- हरमन एबिंगहॉस के कार्यक्षेत्र को समझसकेंगें |
- हरमन एबिंगहॉस के प्रयोगों की व्याख्या कर सकेंगें |
- हरमन एबिंगहॉस के मनोवैज्ञानिक योगदान का वर्णन कर सकेंगें |

6.1 प्रस्तावना(Introduction)

उन्नीसवीं शताब्दी में दो प्रमुख विचारधाराओं का जन्म हुआ जिसमें संरचनावाद व प्रकार्यवाद प्रमुख थी | जहां तक प्रकार्यवाद के ऐतिहासिक विकास का प्रश्न है, इसका जन्म स्थान अमेरिका को माना जाता है| यदि प्रभाव की दृष्टि से अध्ययन करे तो इस सम्प्रदाय की मूल अध्ययन सामग्री ब्रिटिश वैज्ञानिको से प्रभावित है| अत: प्रकार्यवाद का स्त्रोत ब्रिटिश को माना जाता है, किन्तु इसका विकास व उन्नति अमेरिका में हुई | क्योंकि प्रकार्यवाद को यहाँ अनुकूल वातावरण प्राप्त हुआ| प्रकार्यवाद मनोविज्ञान का वह सम्प्रदाय है जो 'कैसे' से प्राम्भ होकर 'क्या' और 'क्यों' तक पहुँच जाता है| प्रकार्यवाद के विषय में वुडवर्थ (Woodworth) का कहना है कि, जो मनोविज्ञान निश्चित तथा क्रमबद्ध रूप में 'मनुष्य क्या करते है?' वे कैसे करते है? तथा क्यों करते है? से सम्बंधित प्रश्नों के उत्तर देता है,उससे प्रकार्यवाद मनोविज्ञान कहते है| विलियम जेम्स ने प्रकार्यवाद में क्रिया व प्रतिक्रिया पर ज्यादा बल दिया इसलिए वह प्रकार्यवाद का जन्मदाता कहलाया तथा एबिंगहॉस ने क्रिया की अपेक्षा स्मृति पर बल दिया| इनके अनुसार मस्तिष्क द्वारा किये गये कार्य स्मृति द्वारा निश्चित होते है| उन्नीसवीं सदी में अरनेस्ट वेबर गास्तैव थियोदार फेकनर, जिनीज म्युलर द्वारा स्मृति पर सराहनीय कार्य किया था| इससे पहले स्मृति के सम्बन्ध में प्रयोगात्मक कार्य नहीं हुआ था| मनोविज्ञानी सीखने और भूलने के संबंध में विचार कर रहे थे और सीखने व न सीखने के बीच रेखा बना रहे थे| इसके साथ उनका यह भी कहना था जो विस्मृत हो जाता है और जो विस्मृत नहीं होता उसमें भी सीमा निर्धारित की जा सकती है| स्मृति और विस्मृति के अंतर गहन रूप से हरमन एबिंगहॉस ने समझा और स्मृति के अध्ययन से वह विश्वविख्यात मनोवैज्ञानिक बन गये इसलिए एबिंगहॉस के योगदान को अनदेखा नहीं कर सकते |

6.2 विलियमजेम्स का जीवन परिचय(Life history of Wilhelm James)

विलियमजेम्स का जन्म न्यूयॉर्क शहर में 11 जनवरी 1842 ई. में हुआ था | विलियम जेम्स धनवान व सम्पन्न परिवार से थे | इनके पिता इन्हें बहुत अच्छी शिक्षा देना चाहते थे| इस उद्देश्य से उन्होंने कई बार यूरोप की यात्रायें की | अन्ततः विलियम जेम्स की प्रारंभिक शिक्षा ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में हुई | जेम्स को अमेरिका का 'आधुनिक मनोविज्ञान' का आरंभकर्त्ता माना जाता है| जेम्स अमेरिका में नवीन मनोविज्ञान के पुरोगामी थे | जेम्स ने अमेरिका में जर्मनी के नवीन मनोविज्ञान की व्याख्या कर रहे थे साथ ही आलोचना भी | वे कहते थे –" I naturally hate experimental work but all my circumstances conspired (during the important years of my life) to prevent me from getting into a routine of it, so that now it is always the duty that got postponed". जेम्स की अध्ययन रूचि का विश्लेषण करे तो बड़ी प्रेरणास्पद है| 18 वर्ष की आयु में चित्रकला का अध्ययन प्रारंभ किया, जिससे उनके पिता नहीं चाहते थे, पर उन्होंने जेम्स के अध्ययन में कोई बाधा नहीं डाली | एक वर्ष बाद चित्रकला को छोड़ रसायनशास्त्र का अध्ययन शुरू कर दिया | यह रूचि भी समाप्त हो गई और लगभग एक वर्ष बाद 1863 ई. में जीव-विज्ञान का अध्ययन प्रारंभ कर दिया | 1864 में मेडिकल कालेज में

चिकित्साशास्त्र का अध्ययन प्रारंभ कर 1869 में चिकित्साशास्त्र की डिग्री प्राप्त की | इनका जीवनक्रम अध्ययन की दृष्टि से मनोविज्ञान, दैहिक व दर्शनशास्त्र में निरन्तर बदलता रहा |

विलियम जेम्स ने अमेरिका की सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना की | विलियम जेम्स ने 1877 में हरबार्ड के तुलनात्मक जीव विज्ञान के म्यूजियम में स्वयं प्रयोग करने के लिए स्थान ले रखा था | जहाँ पर जेम्स व उनके छात्रों ने शरीर विज्ञान क्रिया तथा मनोविज्ञान में सम्बन्ध को जानने के लिए प्रयोग किये | 1880 में जेम्स की नियुक्ति दर्शन के सहायक प्रोफेसर के पद पर हावर्ड विश्वविद्यालय में हुई | 1885 में प्रोफेसर बने तथा 1889 में उन्हें मनोविज्ञान का प्रोफेसर नियुक्त कर दिया | जेम्स पर जर्मनी के प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के ऐसे प्रभाव पड़े जो उनके लेखो में स्पष्ट है | यद्यपि वह मनोविज्ञान से विद्वेष करते थे जिसको वे पीतल उपकरण मनोविज्ञान कहते थे | विलियम जेम्स ने वुंट के संरचनात्मक मनोविज्ञान की अपेक्षा शारीरिक क्रिया पर जोर दिया और एक नवीन प्रकार्यवाद सम्प्रदाय की स्थापना की | आधुनिक नवीन खोजो व अनुसंधानो पर लेख व ग्रन्थ लिखे जिनका मनोवैज्ञानिको पर गहरा प्रभाव पड़ा इसलिए मनोवैज्ञानिकों ने उन्हें आधुनिक मनोविज्ञान का जन्मदाता कहा |

6.3 विलियम जेम्स का कार्यक्षेत्र (Working area of Wilhelm James)

जेम्स ने 19वी शताब्दी के अंत में अमेरिकी मनोविज्ञान के लक्षण स्पष्ट हो चुके थे | जेम्स ने अपने भौतिक शरीर का ज्ञान जर्मन प्रयोगवाद से प्राप्त किया किन्तु मन का डार्विन से जाना | जेम्स ने 1890 में The Principles of Psychology का प्रकाशन किया जिसको पूर्ण करने में 12 वर्ष लगे | इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही ऐसा मालूम पड़ा कि सम्पूर्ण विश्व में एक ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ हो | इस पुस्तक में कुछ अध्याय प्रत्यक्ष पर जर्मन स्त्रोत से लिए गये थे , और जो अध्याय संवेगो (emotion), संकल्प (will)और विचार की धारा (the stream of thought) पर थे वे विशेषतःमौलिक थे | उक्त पुस्तक के प्रारंभ में जेम्स ने बताया कि मनोविज्ञान मानसिक जीवन का विज्ञान है, जिसका सम्बन्ध उसकी घटनाओं एवं उनकी दशाओं से होता है | घटना से तात्पर्य है मनोविज्ञान की विषय वस्तु अनुभव में खोज करना चाहिए तथा दशाओ से तात्पर्य है कि मानसिक जीवन की तात्कालिक शरीर में विशेषतःमस्तिष्क में पाई जाती है | जेम्स ने दर्शनशास्त्र शरीर क्रिया विज्ञान और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी कार्य किये | वे एक अच्छे दार्शनिक , मनोवैज्ञानिक और जर्नलिस्ट थे |

6.4 विलियम जेम्स का योगदान(Contribution of Wilhelm James)

जेम्स पर जर्मनी (Germany) तथा फ्रांस (France) के मनोविज्ञान का प्रभाव था | उस समय जर्मनी में वेबर (Weber), फैक्नर (Fechner) तथा वुंड (Wundt) को और फ्रांस में शार्को (Charcot), जेनेट (Janet) तथा मार्टिन प्रिंस (Martin Prince) को प्रभावशाली मनोविज्ञानी माना जाता है | जेम्स जर्मनी के मनोविज्ञान से असंतुष्ट था तथा उसे 'Brass Instruments Psychology' कहते थे | उन्हें फ्रांस के मनोविज्ञान में रूचि थी | वह उन्माद (Hysteria), साहचर्य (association) तथा व्यक्तित्व (Personality) के अध्ययनों से बहुत अधिक प्रभावित हुये | उनका विश्वास था कि ऐसे

अध्ययन व्यक्तित्व की संरचना के सम्बन्ध में बहुत शिक्षाप्रद होते है | विलियम जेम्स के योगदान को चार भागो में विभक्त किया जा सकता है, वह है :-

i) मनोविज्ञान की सामान्य समस्या (General Problem of Psychology)

ii) धर्म का मनोविज्ञान (Religion Psychology)

iii) आत्मा सम्बन्धी मनोविज्ञान (Psychology of soul)

iv) दर्शन (Philosphy)

जेम्स ने सबसे अधिक चेतना (conscious) के प्रयोजन पर बल दिया जो इस बात का द्योतक है कि उन पर विकासवादी सिद्धान्त का प्रभाव था | जेम्स की दृष्टि में ऐसी मानसिक घटनाएँ होती है, जो वैयक्तिक चेतना से बाहर होती है और वे स्व (self) का अंश नहीं होतीं, वह ये समझते थे कि अचेतनात्मक मानसिक जीवन के प्रश्न मनोविज्ञान के लिए अत्यन्त मौलिक थे| जेम्स के लेखो में विकासवाद (development), गतिवाद (dynamism), सर्जन (creativeness) - इन सबका प्रदर्शन मिलता है जहां उन्होंने अपनी सर्वप्रिय समस्या संकल्प (will) पर विचार किया| इनके लिए संकल्प (will) एक ऐसा निर्णायक बिंदु है, जिसके सामने सब यांत्रिक व्याख्याएँ निष्फल हो जाती है | उनका विश्वास था कि व्यक्तित्व के संबंध में यांत्रिक कथन नहीं किये जा सकते और साथ ही उनका विश्वास की मानसिक बलों (psychic forces) की एक यथार्थ सता होती है, जिनका यांत्रिक विवरण नहीं दिया जा सकता | यह सत्य है कि उन्होंने कहा कि मनोविज्ञानियों को विज्ञान के लिए आत्मा (soul) को प्रदत नहीं बनाना चाहिए | इसके विपरीत, उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे पृथक्कृत अनुभवों के पीछे एकीकृत और व्यवस्थित करने वाली शक्ति है, जिसको आत्मा या व्यक्तित्व (Personality) कहा जा सकता है : जो पृथक्कृत कार्यों को समन्वित रखती है | यह असंगति उस समय स्पष्ट हो जाती है, जब हम 'The stream of thought' तथा 'Will' के विवेचन का तुलनात्मक अध्ययन करें | उनके प्रथम विवेचन में विचार को स्वतः संचालित माना गया और अंह (self) को अनुभूत माना गया है, न कि ऐसी सता जो अनुभव से परे हो | दूसरे विवेचन में उन्होंने संकल्प (Will) को ऐसी सता माना है जो कुछ स्थितियों में निर्णय से पूर्व हस्तक्षेप करती है | जेम्स ने अपनी पुस्तक 'The Varieties of Religious Experience' में यह पूर्ण रूप से सिद्ध किया है कि वे यांत्रिक (mechanical) अथवा तार्किक विधियों (logical methods) में विश्वास नहीं करते थे |

जेम्स के सिद्धान्तों में महत्वपूर्ण सिद्धान्त संवेग (emotion) से सम्बंधित है| लाथ्जे के समय से संवेग के शरीर-क्रियात्मक पक्षों पर विचार किया जा रहा था,किन्तु वे सत्यापित प्रक्कल्पनाओं पर आधारित नहीं थे और न यह बताते थे की संवेग क्या होते है | 1884 में इनके विचार 'mind' में प्रकाशित हुए और वहाँ उन्होंने संवेगो तथा उनकी अभिव्यक्त क्रियाओं का वर्णन किया | यह विचार 'The Principles of Psychology' में समाविष्ट कर लिया गया | जेम्स के अनुसार संवेगों का शरीर-क्रियात्मक परिवर्तनों के बिना कोई अस्तित्व नहीं है | इनकी दृष्टि में अंगीय संवेदानाओं का भान संवेग या यथार्थ शारीरिक क्रियाओ के फलस्वरूप संवेग का जन्म होता है | उनका यह मत प्रचलित मत के विरुद्ध था की संवेग शारीरिक क्रियाँए पैदा करती है | उदाहरण–जैसे सामान्य मत यह है- हमारा धन नष्ट हो जाता है तो हमें रंज होता है, और हम रोने लगते है |हम रीछ को देखते है और उसे देखकर डर से भागने लगते है | जेम्स का मत था कि हमारा धन नष्ट हो जाता है, इस कारण

हम चीखने लगते है, फलतः हमको दुःख होता है | हम रीछ को देख कर भागने लगते है, इस कारण हमे डर लगता है | तात्पर्य यह है कि संवेग शारीरिक अभिव्यक्तियों का परिणाम होता है न कि कारण|

जेम्स का स्मृति (memory) का सिद्धान्त इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है | 17 वीं सदी में स्मृति के दो प्रमुख सिद्धान्त चले आ रहे थे | पहला सिद्धान्त शक्ति मनोविज्ञानियों का था, जो मानते थे कि स्मृति मन या आत्मा की चरम सीमा है | दूसरा मत सहचार्यवादियों का था, जिनके विचार में स्मृति केवल उस प्रक्रिया का नाम है जिसके द्वारा मस्तिष्क में अनुभव के शारीरिक आधार की पुनः उत्तेजना के द्वारा उनको पुनःस्थापित किया जाता है | दोनों दृष्टियों के बीच विलियम जेम्स ने स्मृति के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण उपस्थित किया | इन्होने कहा की धारण-क्षमता (Retentiveness) मस्तिष्क संरचना का एक तत्व (element) होती है, जो हर एक व्यक्ति में भिन्न–भिन्न होती है | प्रयोग के आधार पर जेम्स इस निष्कर्ष पर पहुचे की धारण-क्षमता प्रशिक्षण द्वारा उत्पन्न नहीं की जा सकती | एक वस्तु को सीखने के लिए जो अभ्यास किया जाता है वह दूसरी या अन्य वस्तु को सीखने में सहायक नहीं होता | अत: स्मृति प्रशिक्षण जैसी कोई वस्तु नहीं है |

जेम्स के Principles में अंतिम अध्याय 'Neccessary Truths and the Effects of Experience' का है | इसमें जेम्स ने बताया कि हमारा अनुभव हमें दो प्रकार का ज्ञान दे सकता है | कुछ वस्तुओं का ज्ञान हमारे ऊपर थोपा जाता है तथा कुछ ज्ञान धीरे-धीरे एकत्रित करना पड़ता है | उपर्युक्त Principles संक्षिप्त रूप में पुनः लिखे गये, उस पुस्तक का नाम 'Briefer Course' है | 1899 में 'Talk toTeachers' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई | 1901 में 'The Varieties of Religious Experience' पर लेक्चर हुए , जिनका प्रकाशन 1902 में हुआ | इस पुस्तक के अंतिम दो- तिहाई भाग में रहस्यवाद (Mysticism) का वर्णन है | जेम्स की दृष्टि रहस्यवाद ऐसा अनुभव होता है, जिसमे ऐसे तत्वों के संपर्क में आते हैं, जिनका हमें बोद्धिक तथा संवेदी प्रक्रियाओं द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता | जेम्स ने कहा है कि रहस्यवाद अव्यक्त संसार में एक झरोखा है अर्थात उन वास्तविकताओं को देखने का साधन जो सामान्तय: छिपी रहती है |

जेम्स ने यह बताया कि दो प्रकार के आधारभूत अनुभव होते है | एक स्वस्थ मानसिकता (healthy mindness) का धर्म, जिसमें संसार को सुखमय समझा जाता है और साथ ही यह विश्वास किया जाता है कि आधारभूत भलाई के सामने प्रतीयमान बुराई निरर्थक है | स्वस्थ–मनस्कता का धर्म दुःख और निराशा को नहीं समझ सकता | इसके विपरीत दूसरा अस्वस्थ जीवों का धर्म है | इस प्रकार के धर्म में अनुभव होता है कि संसार दुखमय है | जेम्स की दृष्टि से अस्वस्थ जीवों का धर्म स्वस्थ-मनस्कता के धर्म सेज्यादा व्यापक है; यह संपूर्ण जीवन का सामना करता है और बुराई पर विजय पाने की आवश्कता समझता है अथवा यों कहे कि यह इस प्रकार का समझोता करना चाहता है, जिसमे बुराई किसी प्रकार अच्छाई में सहयोग दे सके | अस्वस्थ जीव यह नहीं समझ सकता कि संसार में दया और निर्दयता क्यों है, किन्तु वह जगत को समझने के लिए और उससे अपना सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है | वह सुख प्राप्त करने की कौशिश करता है,किन्तु ऐसे कार्य कर जाता है,जो उससे दुःख देते है | जब अस्वस्थ जीव संसार का नियंत्रण करने वाली शक्तियों को अपने दृष्टिकोण से देखते है, तब वी अपने अंदर की बुराई के कारण अपने को संसार से भिन्न समझता है, पाप के कारण स्वयं ईश्वर को भी दंड भोगना पड़ता है | जीव के अंदर का संघर्ष किसी प्रकार दूर होना चाहिए | वह अपने को ये समझाता है कि वह दो भागों में विभक्त है और उसका एकीकरण होना चाहिए |

1884 में जेम्स ने परामानसिकीय अनुसन्धान (Psychic Research) के लिए अमेरिका में एक संगठन स्थापित कराने में बड़ा हाथ बंटाया था| 1882 में इसी कार्य के लिए इंग्लैंड (England) में एक समिति स्थापित की गई जिसका मुख्य उद्देश्य मृतक व्यक्ति के साथ संचार तथा परिचित (Telepathy) के प्रमाण–परीक्षण में लगे रहे| उनकी दो पुस्तक Pargmatism (1907) तथा Meaning of Truth (1909) समकालीन अर्थक्रियावादी स्कूल (Pragmatism School) का प्राम्भ करती है, जो ज्ञान को सापेक्ष (Relative) बताता है | दूसरा स्कूल जो उनका ऋणी है , वह नवीन यथार्थवाद (neo-realism) है | जेम्स के दृष्टिकोण से जितना हमें संसार का ज्ञान हो सकता है, वह उन वस्तुओं का होता है जिनका भान किया जाता है | 'The Principles' में जेम्स ने आत्मा-शरीर अंत:क्रिया को मान लिया था | इनके अनुसार मानसिक जीवन का आधार मस्तिष्क नहीं हो सकता,किन्तु केवल एक साधन है जो मानसिक यथार्थताओं का संचालन करता है जिनका प्राणी अपने वातावरण के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उपयोग करता है |

जेम्स की पुस्तक 'Principles of Psychology' मनोविज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण समझी जाती है | पुस्तक का अवलोकन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि जेम्स पर अन्य मनोवैज्ञनिकाओं का प्रभाव पड़ा था | आदत का अध्याय ब्रिटिश स्रोत से प्रभावित है तो समय, स्थान व वस्तु का प्रत्यक्षीकरण का अध्याय पर जर्मन का प्रभाव स्पष्ट है | इसके अतिरिक्त कुछ अध्यायों में उसकी मौलिकता का आभास होता है – संवेग (emotion), इच्छा (will), चिंतन का प्रभाव (stream of thought), आवश्यक सत्य (neccessary truth)| इस पुस्तक में जेम्स के द्वारा मानसिक अनुभव (mental experience), मन – शरीर का सम्बन्ध (mind body relationship), संवेग का सिद्धान्त (theory of emotion), स्मृति का सिद्धांत (theory of memory) तथा विकासवाद (development) का वर्णन है |

अभ्यास प्रश्न 3

1. आधुनिक मनोविज्ञान का जन्मदाता किसे कहा गया है?

2. जेम्स के द्वारा प्रयोगों में लिए गये शब्द घटना व दशाओ से क्या तात्पर्य है?

3. जेम्स का सिद्धांत किससे सम्बंधित है?

4.जेम्स की पुस्तकों के नाम बताईये |

6.5 हरमन एबिंगहॉस का जीवन परिचय (Life history)

एबिंगहॉस का जन्म 24 जनवरी 1850 में बरमैन (Barmen) में हुआ | उनका जन्म स्थान बोर्न (Bonn) है जहा उन्होंने सर्वप्रथम शिक्षा प्राप्त की| यह एक धनवान व्यपारिक परिवार से सम्बन्ध रखते है | 17 वर्ष की आयु में उन्होंने बोर्न विश्वविद्यालय में इतिहास व दर्शन पढने हेतु दाखिला लिया | 1870 में Franco-Prussian युद्ध प्रारम्भ होने के कारण वह पढाई छोड़ फ़ौज में भर्ती हो गये | युद्ध समाप्त होने के बाद वे पुनः 1873में बोर्न आ गये और वंहा दर्शन में डाक्टर की उपाधि प्राप्त की | इसके पश्चात कई वर्षो तक उन्होंने स्वतंत्र post-doctoral अध्ययन में व्यतीत किये | 1875 के बाद तीन वर्ष फ्रांस व इंग्लैंड में व्यतीत किये, उसी बीच में पेरिस की पुरानी किताबों की दुकान पर उन्हें फैक्नर की 'Elements of Psychophysics' नामक पुस्तक मिली जिस कारण उनके जीवन को नया मोड़ मिला | फैक्नर ने मनोभौतिकी के क्षेत्र में बहुत कार्य किया | एबिंग हास को

इससे प्रेरणा मिली और उन्होंने संकल्प किया कि जो प्रयोगात्मक कार्य फैक्नर ने संवेदना (sensation) के क्षेत्र में किया है, वही कार्य वह स्मृति के क्षेत्र में करेंगे | उन्हें फैक्नर की पुस्तक में अटूट विश्वास रखा और स्वयं अकेले कार्य किया| 1880 में वो पुनः बर्लिन चले गये, वहाँ भी वे स्मृति पर प्रयोग करते रहे| 1885 में उन्होंने अपने कार्य को अंग्रेजी में अनुवाद कर 'Memory : A contribution to Experimental Psychology' (1913) के अंतर्गत प्रकाशित करवाया | 1886 में उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना की | 1890 में आर्थर कोइंग के साथ उन्होंने 'Journal of psychology and physiology of sense organs' की सह-स्थापना की जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंकित है| इस बीच एबिंगहॉस की रूचि दृष्टिअध्ययन में जाग्रत हुई तथा कलर-विज़न का सिद्धान्त 1893 में प्रकाशित किया | 1894 से 1904 के मध्य वह University of Breslav (Now Wroclaw, Poland) में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत रहे | 1894 में उन्होंने University of Breslav में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की प्रयोगशाला स्थापित की | 1905 से 1908 तक वह University of Halle में प्रोफेसर के पद पर रहे | 1909 में एबिंगहॉस का निमोनिया के कारण Breslau में निधन हो गया |

6.6 एबिंगहॉस का कार्यक्षेत्र व योगदान (Contribution of Ebbinghaus)

एबिंगहॉस प्रथम मनोविज्ञानी थे जिन्होंने सीखने एवं स्मृति का व्यवस्थित अधययन किया | उनका कार्य केवल इसलिए नया एवं महत्वपूर्ण न था कि वह प्रयोगात्मक या अपितु इसलिए भी था कि उन्होंने साहचर्यों के निर्माण (Formation of association) का अध्ययन किया जिसे सीखने का प्रक्रम (process) कह सकते है | एबिंगहॉस से पहले मनोविज्ञानी पूर्व निर्मित साहचर्यों के माध्यम से अपना कार्य करते थे - वे यह निर्धारण करने का यत्न करते थे कि साहचर्यों का निर्माण किस प्रकार होता था | एबिंगहॉस का आरंभ-बिंदु भिन्न था, उन्होंने साहचर्यों के विकास का अध्ययन किया | इस प्रकार एबिंगहॉस ने समस्या का रूप बदला | उन्होंने सीखने तथा भूल को मात्रात्मक (Quantitative) रीति से अधययन किया | मर्फी ने कहा है – "This was one of the greatest triumphs of original genius in experimental psychology, for the first time, moreover, experimental psychology undertook with an attempt to introduce the safeguards and precautions of scientific procedure, a psychological problem which was not simply an adjunct to physiology."

एबिंगहॉस,फैक्नर (Fechner) के कार्य के फलस्वरूप मानसिक प्रक्रियाओं के मात्रात्मक अनुसन्धान (Quantitative Research) में रूचि लेने लगे | उन्हें फैक्नर द्वारा किये गये संवेदी प्रक्रियाओं के प्रयोगात्मक विश्लेषण से विश्वास हो गया कि इसी प्रकार की प्रविधि उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए भी उपयोग में लायी जा सकती है | एबिंगहॉस ने 1879 से 1885 तक प्रयोग किये और प्रयोगों के परिणामों को पुस्तक में प्रकाशित किया| फैक्नर ने अर्थहीन अक्षरों का आविष्कार किया | इन अर्थहीन अक्षरों व कविता को सामग्री के रूप में उपयोग करके और अपने आपको प्रयोज्य मानकर, उन्होंने स्मृति के प्रयोगात्मक मापन किये |

पहली समस्या – सीखने की सूची की लम्बाई तथा उसका सीखने के समय से क्या सम्बन्ध है? यदि स्मृति कार्य को बढ़ा दिया जाये तो क्या उसी अनुपात में सीखने का समय बढ़ जायेगा| क्या कविता

की दस पंक्तियों को सीखने में उसकी पांच पंक्तियों को सीखने की अपेक्षा दुगुना समय लगेगा? एबिंगहॉस ने उक्त समस्या पर कार्य किया और उन्हें यह ज्ञात हुआ की वे सात या आठ अर्थहीन अक्षरों को एक पठन में सीख लेते थे|

दूसरी समस्या – अधिक सीखने का धारण पर क्या प्रभाव पड़ता है? वो यह जानना चाहते थे कि यदि एक सामग्री पूर्ण रूप से सीख ली जाये और फिर भी उसका अध्ययन किया जाये, तो क्या परिणाम होगा? अधिक सीखने (over learning) का परीक्षण करने के लिए उन्होंने सोलह अर्थहीन अक्षरों की सूची यां के पठनो की संख्या का हेस्फेर किया| कुछ सूची यों का उन्होंने 8 बार पठन किया, कुछ का 16 बार, कुछ का 24बार, कुछ का 32 बार, कुछ का 42बार, कुछ का 53 बार, और कुछ का 64 बार | 24 घंटे के बाद उन्होंने सूची यों का पुनः पठन किया, जब तक वे उनका सही पुनरावृती कर सके | परिणाम यह निकला कि जितनी प्रतिशत बचत हुई, वह लगभग ठीक समय की मात्रा के अनुरूप थी | जितनी बार उन्होंने प्रथम सामग्री का पठन किया| जहाँ उन्होंने सूची को 8 बार पठन किया वहाँ उन्होंने देखा कि 8 प्रतिशित बचत हुई; 16 बार पठन किया वहाँ 15 प्रतिशत बचत हुई ; 24 बार पठन किया वहाँ 23 प्रतिशत बचत हुई; जहाँ 32 बार पठन किया था व 32 प्रतिशत बचत हुई, इसी प्रकार जहाँ 64 बार पठन किया था वहाँ 64 प्रतिशत बचत हुई | स्मृति का अधययन करने की यह विधि एबिंगहॉस ने निकली और इसको 'बचत विधि'(saving method) कहा जाता है|

बचत विधि की सबसे बड़ी सफलता यह थी कि विस्मरण की प्रक्रिया का मात्रात्मक परिक्षण हो सका | एबिंगहॉस ने बताया कि विस्मरण निष्क्रिय मानसिक क्रिया है | उन्होंने काल-व्यवधान के आधार पर उसकी व्याख्या की | किसी सामग्री या विषय वस्तु को सीखने के पश्चात जैसे-जैसे समय बीतता है, हम उसको भूल जाते है | अभ्यास न होने या करने से तथा समय व्यतीत होने के साथ भूलने की प्रक्रिया होती रहती है|

विस्मरण की गति का अध्ययन करने के लिए एबिंहास ने अर्थहीन शब्दों की सूची याँ को याद किया, कुछ समय व्यतीत हो जाने दिया| इसके पश्चात बचत विधि द्वारा अपने धारण का परिक्षण किया| एबिंगहॉस को ज्ञात हुआ कि विस्मरण की मात्र प्रथम घंटो में ज्यादा होती है, इसके बाद विस्मरण की मात्र कम हो जाती है| इस विधि को सार्थक सामग्री पर लागू किया जा सकता था| मनोविज्ञान के क्षेत्र में वक्र-रेखा का बड़ा महत्व है| वक्र रेखा प्रदर्शित करती है कि प्रथम 20 मिनट में विस्मरण अत्याधिक तीव्र गति से होता है फिर क्रमश:मंद हो जाता है|

एबिंगहॉस ने स्मृति पर प्रयोगात्मक अध्ययन किये, जिनके कारण नवीन मनोविज्ञान में उनका नाम विख्यात हुआ| यह उनकी मौलिक देन है| इसके अतरिक्त उनकी दूसरी देन भी है जिसका वर्तमान काल में बड़ा उपयोग हुआ है ,वह है कार्य-काल का प्रभावी विभाजन (effective distribution of time period)| इसका अर्थ है कि किसी को याद के लिए कौनसी विधि उचित है,उसको निरंतर याद करना या विराम के साथ| एबिंगहॉस का कहना था कि निरंतर आवृतियों की अपेक्षा अवकाश देकर (speed) आवृतियां करना ही अच्छा है |

अंत में यह प्रश्न होता है कि A-B-C-D पैटर्न के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार का साहचर्य हो सकता है? हार्टले ने कहा- यदि A-B-C-D की मात्रा (series) याद कर ली जाये तो A की यह प्रवृति हो जाती कि वह b,c,d नामक धुंधली (faint) प्रतिमाओ का प्रत्यास्मरण करा देता है और वो प्रतिमाएं

B,C,D की स्मृतियाँ होती है| एबिंगहॉस ने कहा कि हरबार्ट के कार्य के तथा उनके गणितीय सूत्र के अधर पर यह माना जा सकता है कि साहचर्य A and B के नहीं होते; अपितु A and C तथा A and D के भी होते है| ऐसे विचार (ideas) हो सकते है जो चेतना में आ जाते है और पुन: गायब हो जाते है| हो सकता है की A,B,C,D एक साथ चेतना में तुरंत आ जाये| ऐसा भी हो सकता है किसी समय A चेतना से जाने को हो और B अपने शिरोबिंदु (Zenith) पर हो; C स्पष्ट चेतना में आने को हो और D का केवल अस्पष्ट ज्ञान हो| यह भी संभावना हो सकती है कि कुछ समय बाद A गायब हो जाये, B गायब होने को हो, C अपने शिरोबिंदु (Zenith) पर हो और D चेतना में आने को हो| A,B,C,D में से कोई दो चेतना में आ सकते है और साहचर्य उत्पन्न कर सकते है| अत: केवल दूरवर्ती अग्र (remote forward) सम्बन्ध ही नहीं हो सकता है; जैसे A-C तथा A-D किन्तु पूर्वगामी (backward association) भी हो सकता है, जैसे D-C तथा C-A | एबिंगहॉस प्रयोग द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचे की अग्रगामी (forward) साहचर्य होता है| इससे हरबार्ट के सिद्धांत की पुष्टि मिली| साथ ही उन्होंने बचत विधि द्वारा यह भी दिखाया कि A तथा C का साहचर्य जितना सार्थक होता है उतना A और D का नहीं| एबिंगहॉस ने पूर्वगामी साहचर्य को सिद्ध करने के लिए भी प्रयोग किये और व इस निष्कर्ष पर पहुचे की पूर्वगामी साहचर्य भी होता है|

एबिंगहॉस की प्रक्रिया का जो विस्तार हुआ, उसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण अध्ययन वैयक्तिक सम्बन्धो (connections) का है: क्रमिक सीखने की विधि को छोड़कर युग्म सहचरों (paired associates) पर बल दिया जाने लगा | इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए कैलकिंस ने पदों के युग्मों (pair of items) को सुनकर व दिखाकर प्रस्तुत किया | उदाहारणार्थ, उस युग्म में कोई स्प्ष्ट सम्बन्ध नहीं था, क्योंकि वह युग्म एक शब्द और एक संख्या का हो सकता था अथवा वह युग्म एक अर्थहीन और एक सार्थक शब्द का हो सकता था |उनकी विधि का पहला उपयोग प्राथमिकता (Primary), नवीनता (recency), पुनरावृति (frequency) और स्पष्टता (vividness) के प्रभाव का अध्ययन करना था | उन्होंने प्रयोगों द्वारा ब्राउन के गौण नियमों की पुष्टि की | युग्म-सहचर विधि का उपयोग बाद में पिल्जेकर और मूलर ने भी किया | एबिंगहॉस के प्रयोगों के लगभग बीस वर्ष बाद तक अनुसन्धान का कार्य उन्हीं की विचारधारा से प्रभावित था और वे अनुसन्धान मुख्यतः उन्ही की विधियों के विस्तार थे | अंतत, यह ज्ञात हुआ कि जो कुछ मनुष्य सीखता है, वह उसकी अभिवृति तथा ध्येय के आश्रित रहता है, न कि केवल साहचर्य के |

संक्षेप में,एबिंगहॉस के तीन मुख्य कार्य है- उन्होंने स्मृति तथा विस्मृति के अध्ययन में मात्रात्मक विधियों का उपयोग किया और हमारा परिचय करवाया | व्यक्ति के कार्यकाल का प्रभावी विभाजन किया | उन्होंने अर्थहीन शब्दों (meaningless word) का अविष्कार किया | एबिंगहॉस की स्मृति विधियाँ आधुनिक युग की मनोवैज्ञानिको प्रयोगशाला की प्रमुख प्रक्रियाएँ बन गयी है | अत: एबिंगहॉस स्मृति के प्रयोगात्मक अध्ययन (Quantitative study)के निर्माता थे |

उन्होंने अपने जीवन काल में अधिक नहीं लिखा पर जो भी लेखन कार्य किया वहअत्यंत महत्वपूर्ण था | उन्होंने किसी सम्प्रदाय(school) की स्थापना नहीं की फिर भी उनका महत्व कम नहीं है | उन्होंने सीखने व स्मृति का अध्ययन प्रारंभ किया तथा प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र को समृद्धशाली बनाया | बोरिंग ने कहा है- " he was influential, because he helped to make articulate and effective the spirit of the times that called for an emancipation of psychology from philosophy."

अभ्यास प्रश्न 4

1. फैक्नर का प्रयोगात्मक कार्य किस क्षेत्र में था?
2. स्मृति के प्रयोगात्मक मापन हेतुफैक्नर ने किन सामग्री का प्रयोग किया?
3. एबिंगहॉस ने किस विधि का अध्ययन किया?
4. एबिंगहॉस ने आवृति सम्बन्धी क्या तथ्य बताया?

6.7 सारांश (Summary)

विलियम जेम्स अमेरिका में नवीन मनोविज्ञान के पुरोगामी थे | यह अमेरिका में जर्मनी के नवीन मनोविज्ञान की व्याख्याकर्त्ता के साथ साथ आलोचक भी थे | इनका मानना है कि व्यक्तित्व केवल उतना नहीं जिस पर अंतर्दर्शन का प्रकाश पड़ता है, अपितु उसके अनेक स्तर होते है जो यथार्थ रूप में मनोवैज्ञानिक होते है | जेम्स के लेखों में विकासवाद, गतिवाद, सर्जन का प्रदर्शन मिलता है किन्तु सर्वप्रिय समस्या संकल्प पर विचार है | जेम्स का स्मृति का सिद्धांत इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है| एबिंगहॉस प्रथम मनोविज्ञानी थे जिन्होंने सीखने एवं स्मृति का व्यवस्थित अध्ययन किया | उनका कार्य प्रयोगात्मक व साहचर्यों के निर्माण सम्बन्धी था | इन्होंने सीखने तथा भूल को मात्रात्मक तरीके से अध्ययन किया | मनोविज्ञान के क्षेत्र में स्मृति, विस्मृति व बचत विधि का प्रयोगात्मक अध्ययन कर इस क्षेत्र को समृद्धिशाली बनाया |

6.8 अभ्यास प्रश्न

1. जेम्स अमेरिका में जिस मनोविज्ञान के पूर्वगामी थे ?

   अ) नवीन ब) व्यवहारिक स) आत्मनिष्ठ द) वस्तुनिष्ठ

2. जेम्स ने 1890 में किस पुस्तक का प्रकाशन किया ?

   अ) The Principles of psychology

   ब) Talks to Teachers

   स) The Varieties of Religious Experience

   द) इनमे से कोई नहीं |

3. सीखने एवं स्मृति का अध्ययन करने वाले प्रथम मनोविज्ञानी कौन थे ?

   अ) मूलर ब) एबिंगहॉस

   स) फेकनर द) उपरोक्त में से कोई नहीं |

4. एबिंगहॉस की पहली ..... थी | सीखने की सूची की लम्बाई तथा उसका सीखने के समय से क्या संबंध है |
5. जेम्स के अनुसार हमारा अनुभव हमें ..... प्रकार से ज्ञान दे सकता है |
6. एबिंगहॉस ने स्मृति पर क्या प्रयोगात्मक अध्ययन किये ?
7. जेम्स के महत्वपूर्ण सिद्दांतो का वर्णन कीजिये ?

8. जेम्स की The Principles of Psycholgy पुस्तक के विषय में संक्षिप्त विवरण दीजिये ?

9. एबिंगहॉस ने किन बातों का अध्ययन किया ?

10. एबिंगहॉस की बचत विधि का वर्णन कीजिये ?

6.9 संदर्भ सूची

- डॉ. ओझा आर. के., 2005, मनोविज्ञान में समकालीन उपागम एवं विचारधाराएँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा |
- डॉ. शर्मा जे.डी, 2005, मनोविज्ञान की पद्धतियों एवं सिद्दांत, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा|
- शर्मा, गणपतराम व व्यास हरिश्चंद्र, 2007, अधिगम शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक आधार, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर|
- डॉ. वर्मा प्रीती व श्रीवास्तव डी.एन. आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा |
- भटनागर सुरेश, 2008, शिक्षा मनोविज्ञान तथा शिक्षणशास्त्र विनोद पुस्तक मंदिर आगरा |
- सिंह, अरुण कुमार, 2005, मनोविज्ञान, भारती पब्लिकेशन प्रा. लि .
- सिंह, अरुण कुमार, (2006), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली |
- डॉ. सिंह, अरुण कुमार, समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली |
- Mc Guin, F.J (1990), Experimental psychology.
- Murphy G.M., 1928, Historical Introduction to Modern Psychology, London, Routledge and Kegan Paul.
- Garrett, H.E., Great Experiments in Psychology, London, Vision Press, p.180
- Boring, E.G., (1950), A History of Experimental Psychology, New York, Academic Press.

इकाई - 7

मनोगत्यात्मकता, नवफ्रायडवाद (एडलर, युंग तथा हार्नी) एवं व्यवहारवाद (पावलव तथा स्कीनर)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 वुडवर्थ का गत्यात्मक मनोविज्ञान

7.3 एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान

7.4 एडलर के वैयक्तिक मनोविज्ञान की आलोचना

7.5 फ्रायड तथा एडलर के बीच अन्तर

7.6 कार्ल युंग का विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान

7.7 युंग के योगदानों की आलोचना

7.8 फ्रायड एवं युंग में अन्तर

7.9 कैरेन हार्नी का योगदान

7.10 व्यवहारवाद (Behaviourism)

7.11 इवान पैट्रोविच पावलव

7.12 बी. एफ. स्कीनर

7.13 सारांश

7.14 अभ्यास प्रश्न

7.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी आप -

- गत्यात्मक मनोविज्ञान के बारे में जान सकेंगे।
- गत्यात्मक मनोविज्ञान में वुडवर्थ के योगदान को समझ सकेंगे।
- नवफ्रायडवाद क्या है तथा उसमें एडलर, युंग व हार्नी के योगदान को समझ सकेंगे।
- व्यवहार वाद का अर्थ समझ सकेंगे।
- पावलॉव तथा स्कीनर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

वुडवर्थ ने मनोविज्ञान को व्यवहार तथा चेतना दोनों का अध्यापन का विज्ञान कहा है। इस तरह से संरचना वाद तथा व्यवहार के विरोधी विचारधाराओं की एक साथ समन्वित करने का प्रयाय किया है।

फ्रायड ने उपाहं (Id), अहं (ego) तथा परांह (supargo) तथा बाहरी वास्तविकता के साथ सतत् अन्त:क्रिया पर बल डाला है। फ्रायड के दो निकटतम सहयोगी एडलर तथा युंग थे जिनके प्रति फ्रायड के साथ मतभेद हो जाने के कारण उनसे अलग होकर नया सम्प्रदाय स्थापित किया, यह नव फ्रायडवाद/नव मनोविश्लेषण कहलाया।

एडलर ने अपने मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय का नाम वैयक्तिक मनोविज्ञान तथा युंग ने अपने सम्प्रदाय का नाम विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान रखा।

7.3 रॉबर्ट सेसन्स वुडवर्थ का गत्यात्मक मनोविज्ञान (1869-1962) (Dymamic Psychology of Woodwork)

उनका मनोविज्ञान स्थापित प्रकार्यवाद से थोड़ा भिन्न था जिसे स्वयं वुडवर्थ ने गत्यात्मक मनोविज्ञान की संज्ञा दी है। गत्यात्मक मनोविज्ञान का विकास यद्यपि कोलम्बिया विश्वविद्यालय में हुआ परन्तु इसका सम्बन्ध कोलम्बिया विश्वविद्यालय से वैसा नहीं था जैसा कि संरचनावाद का कॉर्नेल विश्वविद्यालय का तथा प्रकार्यवाद का शिकागो विश्वविद्यालय से था। कुछ ऐसा ही भाव हाइडब्रेडर की इन पंक्तियों में व्यक्त किया गया है कि कोलम्बिया विश्वविद्यालय में गत्यात्मक मनोविज्ञान का विकास हुआ लेकिन वह कोलम्बिया से वैसे सम्बन्धित नहीं है जैसा कि संरचनावाद कॉर्नेल से या प्रकार्यवाद शिकागो से।

हावर्ड विश्वविद्यालय में उन्होने विलियम जेम्स तथा रोयास से मनोविज्ञान तथा दर्शनशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। उन्होने 1899 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय से जे.एम. कैटेल के निर्देशन में पी.एच.डी. की उपाधि की। यहीं इनकी मुलाकात थॉर्नडाइक से हुई थी। इसके बाद इन्होने तीन वर्षो तक वुडवर्थ न्यूयॉर्क अस्पताल में शरीर क्रिया शास्त्र का अध्यापन कार्य किया और लिवरपूल में मशहूर शरीर क्रिया शास्त्री शेरिंगटन के साथ भी शरीर क्रिया शास्त्र का अध्यापन कार्य किया। 1903 में वे पुन: लौटकर कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्राचार्य के पद पर नियुक्त हुये। वुडवर्थ ने अपने जीवन में 6 महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन किया- ली मूवमेन्ट, लैड, के शरीरक्रिया मनोविज्ञान का 1911 में संशोधित स्कूल्स ऑफ साइकोलॉजी, साइकोलॉजी, कन्टेम्पोररी स्कूल्स ऑफ साइकोलॉजी तथा एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी।

वुडवर्थ प्रकार्यवादी मनोवैज्ञानिक होने के साथ ही साथ एक गत्यात्मक मनोवैज्ञानिक भी थे। उनमें शिकागो प्रकार्यवादी मनोवैज्ञानिकों से कुछ समानता देखने को मिलती है। इन्होने अपने आप को एक गत्यात्मक मनोवैज्ञानिक कहा है लेकिन वास्तव में वे पहले एक प्रकार्यवादी मनोवैज्ञानिक है और बाद में गत्यात्मक मनोवैज्ञानिक। वे शिकागो प्रकार्यवादियों के समान निरर्थक पदों के साथ प्रयोग करने में वे विश्वास नहीं रखते थे। वे प्रकार्यवाद में विकासात्मक नियमों पर अधिक बल डालते हैं। उन्होने अनुक्रिया तथा कारक जो अनुक्रिया को उत्पन्न करते है, के अध्ययन पर बल डाला है। इस

अर्थ में उन्हें एक आरम्भिक उद्दीपक अनुक्रिया मनोवैज्ञानिक माना गया है। लेकिन बाद में वे उन चीजों को भी महत्वपूर्ण माना जो प्राणी के भीतर होती है। इस तरह से वे उद्दीपक अनुक्रिया (S.R.) सूत्र के जगह पर उद्दीपक प्राणी अनुक्रिया (S-O-R) सूत्र का उपयोग किया।

वुडवर्थ के प्रकार्यवाद द्वारा एक वास्तविक विभिन्न दर्शन ग्रहण की तस्वीर निरुपित होती है। क्योंकि वे विभिन्न सम्प्रदायों से उत्तम चीजों को लेकर अपने मनोविज्ञान में समावेश करने की कोशिश की है। इतना ही नही, वुडवर्थ के प्रकार्यवाद में हम अन्य सम्प्रदायों के समान कई तरह के औपचारिक बन्धनों की अनुपस्थिति पाते हैं। इस तरह से उनका प्रकार्यवाद एक स्वतंत्र प्रकार्यवाद था। बोरिंग ने इस बिन्दु पर निष्कर्ष में बहुत ही नपे तुले शब्दों में आंकलन करते हुए कहा है कि परिस्थिति के अनुसार व्यवहार का अध्ययन, अन्तनिर्रीक्षण तथा शरीरक्रिया विज्ञान के अध्ययन का उपयोग, कारणात्मक सम्बन्धों के उपयोग तथा बन्धनों से मुक्ति के बारे में जो कुछ भी उन्होने कहा हैं उसमें से आधा उत्तम प्रकार्यवाद ही है।

मैकडुगल के समान वे भी अभिप्रेरण के मनोविज्ञान में काफी अभिरुचि दिखलाये। इस तरह के बल के कारण ही उन्होंने अपने मनोविज्ञान को गत्यात्मक मनोविज्ञान कहा है। उन्होंने 1917 में एक पुस्तक जिसका नाम डायनेमिक साइकोलॉजी था, का प्रकाशन किया। उसका परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन फिर 1957 में हुआ। गत्यात्मक मनोविज्ञान के बारे में उनके विचारों को निम्नाकिंत प्रमुख शीर्षकों में बांटकर अध्ययन किया जा सकता है -

वुडवर्थ के गत्यात्मक मनोविज्ञान का प्रमुख अंग सीखना है। उनका मत था कि कुछ क्रियाएं जैसे- सीखना, स्मृति, चिन्तन आदि का मूल्यांकन प्रक्रम के रूप में आसानी से किया जा सकता है।वुडवर्थ के अनुसार सीखने में अभ्यास द्वारा एक विशेष उद्दीपक प्राणी सम्बन्ध स्थापित होता है। इस तरह के सम्बन्ध स्थापित होने में आनुवांशिकता तथा पर्यावरण की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

यह कहा जा सकता है कि वुडवर्थ ने मनोविज्ञान में अभिप्रेरण के महत्व की पुष्टि की है जो बाद में आने वाले मनोवैज्ञानिकों के लिए प्रेरणा का एक अच्छा स्त्रोत साबित हुआ है। प्राणी पर बल डालकर उन्होने मनोवैज्ञानिकों को शरीर क्रिया मनोविज्ञान के अध्ययन की सफल प्रेरणा दी। उनके द्वारा लिखित एक्सपेरिमेंटल साइकोलॉजी आज भी प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की एक प्रमुख पाठ्य पुस्तक है।

7.4 अल्फ्रेड एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान (1870-1937)

एडलर ने वियाना विश्वविद्यालय से मेडिकल को उपाधि 1895 में प्राप्त की। उनकी विशिष्टता 'ऑपथालमोलॉजी' में थी, परन्तु बाद में उन्होने मनोचिकित्सा को अपना पेशा बनाया। 1902 में फ्रायड ने उन्हें वियाना साइकोएनालिटिकल सोसाइटी में अपना योगदान देने का न्योता दिया। उन्होने स्नायुविकृति की व्याख्या करने में फ्रायड द्वारा यौन पर दिये गये बल को स्वीकार करने से इनकार कर दिये। धीरे-धीरे इन दोनों में सैद्धान्तिक एवं वयक्तिगत मतभेद बढ़ने लगे और 1911 में एडलर ने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया और अपने छह साथियों के साथ फ्रायडियन समूह को छोड़कर एक नया संघ कायम किया जिसका नाम 'सोसायटी फॉर फ्री साइकोएनालिसिस रखा। उन्होने एक साल बाद इसका नाम बदलकर सोसाइटी ऑफ इन्डीज्युअल साइकोलॉजी रखा। एडलर ने यह स्पष्ट किया कि 'वैयक्तिक' से यहां उनका तात्पर्य आत्म केन्द्रिता से नहीं है बल्कि इस तथ्य से है कि

प्रत्येक व्यक्ति अपने आप अपनी विशेष जीवन-शैली के कारण अनोखा एवं विचित्र होता है और यही जीवनशैली उसके व्यवहार में सामंजस्यं स्थापित करती है। धीरे-धीरे एडलर लोकप्रिय होते गये और उनकी बाल मनोविज्ञान में भी रुचि बढने लगी। वे बाल निदेशन, उपचारगृह तथा सरकारी स्कूलों में भी मनोवैज्ञानिक के रूप में अपनी सेवा प्रदान करने लगे।

एडलर को अमेरिका से बहुत लगाव था। अत: उन्होने कई बार इस देश की यात्रा की और 1935 में उन्होने अमेरिका में ही स्थाई रूप से बस जाने का निश्चय किया। वे न्यूयार्क सिटी में बस गये और मेडिकल मनोविज्ञान के प्राचार्य बन गए। उन्होने अमेरिका में कई विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान पर भाषण दिये। 1937 में वे जब वे स्कॉटलैण्ड के एवरडिन में अपना व्याख्यान देने जा रहे थे, तो हदय आघात होने के कारण उनकी मृत्यु हो गयी।

एडलर का योगदान

एडलर के मनोविज्ञान जिसे वैयक्तिक मनोविज्ञान (Individual Pschology) कहा जाता है, कि कई महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। पहला, उनका मनोविज्ञान एक सामान्यबोधक मनोविज्ञान के समान था जिसे समझना काफी आसान है। दूसरा, उनका मनोविज्ञान काफी आशावादी था। उन्होने मानव व्यवहार की व्याख्या में हमेशा एक वास्तविक दृष्टिकोण को अपनाया। एडलर के योगदानों को निम्नांकित सात शीर्षकों में बाँटकर प्रस्तुत किया गया है -

1- **आंगिक हीनता तथा क्षतिपूर्ति (Organ inferiority and Its Physical compensation)**- 1970 में एडलर ने एक महत्वपूर्ण शोध-पत्र प्रकाशित किया जिसका नाम था 'दी स्टडी ऑफ ऑर्गन इनफेरियोरिटी एण्ड इट्स फिजिकल कम्पेनसेशन। इस शोध पत्र में एडलर ने कहा कि जिन व्यक्तियों में कुछ आंगिक हीनता स्थापित करके इस कमी की क्षतिपूर्ति करने की कोशिश करते हैं। इसमें महत्वपूर्ण बात यह होती है कि व्यक्ति अपने आप के प्रति किस तरह की मनोवृत्ति विकसित करता है। वह अपनी हीनता की क्षतिपूर्ति के लिए सक्रिय प्रयास कर सकता है या मात्र रक्षात्मक उपायों को अपनाकर अपने आप को संतुष्ट कर सकता है। बच्चों में इस तरह की भावना की उत्पत्ति इसलिए होती है क्योंकि वे कमजोर तथा लाचार होते हैं। इसी भावना को दूर करने के उद्देश्य से व्यक्ति में श्रेष्ठता के प्रयास का जन्म होता है।एडलर ने इसके कई सटीक उदाहरण पेश किये हैं। जैसे- डोमोस्थीनस जो एक हकलाने वाले (sutter) व्यक्ति थे, एक अच्छे वक्ता बनकर आंगिक दोष से उत्पन्न हीनता के भाव को दूर किया। उसी तरह से भारतीय इतिहास में सूरदास को रखा जा सकता है जो अंधे होकर भी एक श्रेष्ठ कवि बने।

   हीनता तथा क्षतिपूर्ति के संप्रत्यय से सम्बंधित एक और संप्रत्यय 'पुरुषोचित विरोध' है जिस पर भी एडलर ने विचार प्रस्तुत किये है। पुरुषोचित विरोध से तात्पर्य हीनता तथा दबे हुए की भावना की क्षतिपूर्ति के लिए मजबूत तथा श्रेष्ठ बनने की कोशिश से है। एनसबेकर तथा एनसबेकर (1956) के अनुसार अब इसका प्रयोग महिलाओं द्वारा अपनी स्त्रैण भूमिकाओं के प्रति प्रकट किये गये विरोध के लिए होता है। आधुनिक समय में महिलाओं का स्वतन्त्रता आन्दोलन का यही पुरुषोचित विरोध का एक उदाहरण माना जा सकता है।

2. सफलता तथा श्रेष्ठता का प्रयास - सफलता या पूर्णता की कोशिश से एडलर का तात्पर्य पूर्णता की प्राप्ति की ओर बढ़ने की मौलिक प्रेरणा से होता है। एडलर ने इसकी चार विशेषताओं का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है-

- 'सफलता की कोशिश' अभिप्रेरण जन्मजात होता है और जन्म के समय ही शिशुओं में मौजूद रहता है।
- हालांकि सफलता की कोशिश अभिप्रेरण जन्मजात होता है तथा जन्म के समय मौजूद होता है, इसका विकास बाद में होता है।
- 'सफलता की कोशिश' कई अभिप्रेरकों का एक सम्मिश्रण नहीं है बल्कि यह एक अकेला अभिप्रेरक है जो जन्म से प्रणोदनों को निर्धारित भी करता है।
- सफलता की कोशिश एक सनिभौमिक प्रणोद जो सामान्य एवं स्नायुविकृत दोनों तरह के व्यक्तियों में पाया जाता है। स्नायुविकृत व्यक्तियों द्वारा वैयक्तिक श्रेष्ठता का अतिरंजित मार्ग अपनाया जाता है जबकि मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति सामाजिक अभिरुचित (social interest) के मार्ग को अपनाते हैं।

3. **सामाजिक अभिरुचि (Social Interest)-** एडलर का सामाजिक अभिरुचि से तात्पर्य सामान्य रूप से मानवता के कल्याण की मनोवृत्ति तथा साथ ही साथ दूसरों के प्रति परानुभूति दिखलाने की इच्छा से होती है। यह पूरे जिन्दगी के दौरान व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करता है। स्नायुविकृत, पियक्कड़, अपराधी, वेश्या एवं यौन विकृतकामी आदि कुछ इस प्रकार के व्यक्ति हैं जिनमे एडलर के अनुसार सामाजिक अभिरुचित की कमी पायी जाती है।

4. **जीवन शैली** (Life Style)- एडलर के योगदानों में जीवन शैली एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। जीवन शैली से तात्पर्य किसी लक्ष्य पर पहुंचने का व्यक्ति का अपूर्व तरीका एवं उसके आत्म-संप्रत्यय तथा दूसरों के प्रति विकसित मनोवृत्ति आदि से होता है। जीवन शैली कई कारकों जैसे- आनुवांशिकता, पर्यावरण, सामाजिक अभिरुचि, सफलता के लक्ष्य आदि से प्रभावित होता है। एडलर ने जीवन शैली को एक प्रमुख नियंत्रक बल माना है। अत:, यह फ्रायड द्वारा प्रतिपादित संप्रत्यय अहं का तुल्य संप्रत्यय है। परन्तु एडलर ने यह स्पष्ट किया कि इसमें उपाहं एवं पराहं जैसे कारक सम्मिलित नहीं होते हैं। लेकिन यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि उसमें कुछ त्रुटियाँ या गलतियाँ हो गयी हैं, जिसमें सुधार आवश्यक है, तो जीवन शैली में परिवर्तन होता है।

एडलर ने चार तरह के जीवन शैली मनोवृत्ति का वर्णन किया है, जो निम्नांकित है-

1- अधिकार दिखाने वाले प्रकार - ऐसे व्यक्ति दूसरों पर प्रभुत्व दिखाते हैं तथा इनमें सामाजिक अभिरुचि की कमी पायी जाती है।

2- प्राप्त करने वाले प्रकार - ऐसे लोग दूसरों से जितना अधिक से अधिक हो सकता है, प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। ऐसे लोग जरुरत से ज्यादा दूसरों पर निर्भर करते हैं।

3- दूर हट जाने वाले प्रकार - ऐसे लोगों में सामान्य परिहार तथा परिस्थिति से हट जाने की प्रवृत्ति अधिक होती है। ऐसे लोगों में सामाजिक अभिरुचि की पर्याप्त कमी पायी जाती है।

4- सामाजिक रूप से उपयोगी प्रकार - ऐसे लोग वैसे व्यहार अधिक करते हैं जो सामाजिक रूप से उपयोगी होते हैं। ऐसे लोगों में सामाजिक अभिरुचि अधिक होती है। ऐसे व्यक्ति अधिक सक्रिय होते हैं तथा उनकी सामाजिक जिन्दगी में जिन्दादिली अधिक होती है।

एडलर ने तीन दोषपूर्ण जीवन शैली के प्रकारों का भी वर्णन किया है-तुच्छ प्रकार, अतिस्नेहित प्रकार तथा तिरस्कृत प्रकार। तुच्छ प्रकार वाले व्यक्ति में तीव्र आंगिक हीनता की भावना होती है तथा वे उसका पर्याप्त क्षतिपूर्ति करने में असमर्थ रहते हैं।

5- सर्जनात्मक शक्ति - सर्जनात्मक शक्ति व्यक्ति के जीवन शैली को बहुत हद तक विकसित करने में मदद करता है। सर्जनात्मक शक्ति से सामाजिक अभिरुचि का विकास होता है तथा लक्ष्य पर पहुंचने की विधि का निर्धारण होता है। इससे कुछ विशेष संज्ञानात्मक क्षमताएं जैसे प्रत्यक्षण, स्मृति, स्वप्न, कल्पनाचित्त आदि का भी निर्धारण होता है। एडलर ने सर्जनात्मक शक्ति को एक गत्यात्मक संप्रत्यय माना है क्योंकि इससे लक्ष्य की ओर एक स्वतंत्र गति की झलक मिलती है।

6- कल्पित सोद्देश्यता - एडलर का मत था कि व्यक्ति आत्मनिष्ठ प्रत्यक्षण से बाह्य कारकों की अपेक्षा अधिक अभिप्रेरित होता है। आत्मनिष्ठ प्रत्यक्षण के कई पहलुओं में से एक महत्वपूर्ण पहलू भविष्य के बारे में प्रत्याशा या कल्पना है। एडलर का मत है कि व्यक्ति भूत की अपेक्षा ऐसे प्रत्याशाओं से अधिक निर्देशित होता है। वियाहिंगर का मत था कि कल्पना ऐसे विचार होता है जिसका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं होता है लेकिन फिर भी मानव व्यवहार को इस तरह प्रभावित करता है मानो उसका अस्तित्व बना हुआ है। वियाहिंगर के इस विचार से स्पष्ट है कि व्यक्ति न केवल वास्तविकता से ही प्रभावित होता है बल्कि उन चीजों से भी प्रभावित होता है जिसे व्यक्ति वास्तविक समझता है। एडलर ने वियाहिंगर के इस मत का समर्थन किया है।

7- जन्म क्रम (Birth Order)- एडलर का का मानना है कि मानव व्यवहार एवं शीलगुणों के विकास पर जन्म-क्रम का प्रभाव पड़ता है। इन्होंने चार प्रकार के जन्म-क्रम का अध्ययन किया है- प्रथम, द्वितीय, अन्तिम तथा अकेला बच्चा। उनका मत है कि प्रथम जन्म क्रम वाले बच्चे माता-पिता का अविभाजित ध्यान तथा स्नेह पहले पाते हैं। परन्तु बाद में उन्हें कटु अनुभूतियों का सामना करना पड़ता है क्योंकि माता-पिता का वही स्नेह एवं ध्यान अब दूसरे बच्चे पर चला जाता है। इससे प्रथम जन्म क्रम वाले बच्चों में अपने दूसरे भाई या बहन के प्रति अधिक घृणा एवं विद्वेष का भाव उत्पन्न हो जाता हैं। ऐसे बच्चों में दुश्चिंता तथा अति सुरक्षात्मक प्रवृत्तियां विकसित हो जाती हैं। दूसरे जन्मक्रम वाले बच्चे उससे अच्छी परिस्थिति में अपनी जिन्दगी प्रारम्भ करते हैं। ऐसे बच्चों की सामाजिक अभिरुचित अधिक विस्तृत होती है तथा सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा की भावना तीव्र होती है। एडलर के अनुसार दूसरे जन्म क्रम वाले बच्चे उपलब्धि उन्मुखी होते हैं। अन्तिम जन्म क्रम वाले बच्चे की स्थिति थोड़ा अपूर्व होती है। एडलर का मत है कि ऐसे बच्चों को आगे चलकर समस्या बालक मजबूत हो जाती है। ऐसे

बच्चों में अपने बड़े भाई-बहनों से आगे बढ़ जाने की प्रवृत्ति अधिक होती है। अत: ऐसे बच्चे भी उपलब्धि-उन्मुखी होते है। माता-पिता की अकेला सन्तान की स्थिति थोड़ी अपूर्व होती है। चूंकि इन्हें कोई भाई-बहन नहीं होता है जिसके साथ वे प्रतियोगिता कर सके, अत: वे माता-पिता के साथ ही प्रतियोगिता प्रारम्भ कर देते हैं। ऐसे बच्चों का अतिरंजित आत्म संप्रत्यय होता है तथा इनमें श्रेष्ठता का भाव भी जरुरत से ज्यादा ही होता है। ऐसे बच्चे जरूरत से ज्यादा दूसरों पर निर्भर रहते हैं तथा उनमें सामाजिक अभिरुचि तथा सहयोग की भावना की पर्याप्त कमी होती है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि एडलर के द्वारा वैयक्तिक मनोविज्ञान के क्षेत्रों में कई महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किये गए तथा इनके योगदानों का विश्लेषण करने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मानव व्यवहार के निर्धारक के रूप में एडलर ने सामाजिक कारकों के महत्व को स्वीकारा है।

7.4 एडलर के वैयक्तिक मनोविज्ञान की आलोचना

1- फ्रायड के समान एडलर के भी मनोविज्ञान में कई अजांचनीय संप्रत्यय हैं। सर्जनात्मक शक्ति तथा कल्पित सौद्देश्यता के संप्रत्यय इसके उदाहरण हैं। आलोचकों का मत है कि ऐसे संप्रत्यय से कोई अर्थपूर्ण निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है।

2- वैयक्तिक मनोविज्ञान के बहुत सारे संप्रत्यय तथा पद ऐसे हैं जिसका सही-सही सक्रियात्मक परिभाषा दिया जाना सम्भव नहीं है। जीवन शैली, सामाजिक अभिरुचि, श्रेष्ठता की प्रयास तथा सर्जनात्मक शक्ति कुछ ऐसे ही संप्रत्यय के उदाहरण है जिनका सक्रियात्मक परिभाषा देना सम्भव नहीं है। आलोचकों का मत है कि एडलर का सर्जनात्मक शक्ति का सम्प्रत्यय काफी विभ्रामात्मक है। फलस्वरूप इन सभी के आधार पर कोई अर्थपूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचना सम्भव नहीं है।

3- फिस्ट (1985) का मत है कि एडलर द्वारा प्रतिपादित जन्म क्रम के संप्रत्यय को वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करना सम्भव नहीं है। व्यक्ति के विभिन्न जन्म क्रमों के साथ व्यक्तित्व शीलगुणों को सहसम्बन्धित करना कठिन है। सच्चाई यह है कि जन्म क्रम तथा व्यक्तित्व शीलगुणों के बीच कोई संगत सामान्यीकरण करना सम्भव नहीं हैं। जैसे-द्वितीय जन्म क्रम वाले बच्चे अपने बाल्यावस्था की परिस्थितियों को प्रथम जन्म क्रम तथा अन्तिम जन्म क्रम वाले बच्चे के समान ही समझ सकते हैं। ऐसे परिस्थिति में यह निश्चितपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि उन्हें किस तरह का शीलगुण विकसित होगा।

7.5 फ्रायड तथा एडलर के बीच अन्तर

फ्रायड के मनोविश्लेषण तथा एडलर के वैयक्तित्व मनोविज्ञान के बीच कुछ स्पष्ट अन्तर है जिस पर प्रकाश डालना अनिवार्य है। ऐसे प्रमुख अंतर निम्नलिखित हैं -

1- फ्रायड के मनोविश्लेषण में मनुष्यों के जैविक स्वरूप पर अधिक बल डाला गया है। मानव के प्रत्येक व्यवहार की व्याख्या जैविक कारकों पर बल देकर करने की कोशिश किया है। दूसरे तरफ, एडलर ने मनुष्य की सामाजिक प्रकृति पर बल डालकर मानव व्यवहार की व्याख्या किया है। एडलर ने सामाजिक कारकों का व्यवहार का मुख्य निर्धारक माना है।

इतिहासकारों ने एडलर को प्रथम सामाजिक विश्लेषज्ञ कहा है जिन्होंने ऐसा बल अपने मनोविज्ञान में दिया है।

2- फ्रायड का दृष्टिकोण एक नियतिवादी का था क्योंकि इन्होंने वर्तमान व्यवहार का निर्धारक के रूप में गत अनुभूतियों को माना है। दूसरे तरह, एडलर एक सोद्देश्यवादी हैं जो भविष्य के लक्ष्यों को वर्तमान व्यवहार का निर्धारक मानते हैं। एडलर ने अपने मनोविज्ञान में प्रारंभिक घटनाओं तथा गत अनुभूतियों को व्यवहार के निर्धारक के रूप में मान्यता नहीं दिया है। इसका मात्र एक अपवाद उनके मनोविज्ञान में जन्म क्रम में मानव शीलगुणों का निर्धारक मानना है।

3- फ्रायड ने यौन एवं सम्बन्धित क्रियाओं पर जरूरत से ज्यादा बल डाला है। फ्रायड ने यौन प्रणोद को मनुष्यों को सबसे महत्वपूर्ण प्रणोद माना है। एडलर ने फ्रायड के इस स्थिति की सराहना नहीं किया है तथा अपने आरम्भिक लेखन में आक्रामकता तथा शक्ति के प्रयास को ही मुनष्य का सबसे प्रबल प्रणोद माना है। बाद में शक्ति के प्रयास के जगह पर श्रेष्ठता की कोशिश तथा अन्त में सामाजिक अभिरुचि के संप्रत्यय को मानव व्यवहार का मुख्य निर्धारक समझा गया।

4- फ्रायड के लिए अचेतन मन का सबसे प्रमुख भाग है क्योंकि यह मानव व्यवहार का महत्वपूर्ण निर्धारक है। दूसरे तरफ एडलर अचेतन की अपेक्षा चेतन पर अधिक बल डालते हैं। उन्होनें यह कहा कि जो अचेतन में होता है वह चेतन में आ जाता है और वर्तमान व्यवहार का मुख्य निर्धारक बन जाता है। इस तरह से एडलर ने अचेतन को अस्वीकृत ही नहीं किया परन्तु निश्चित रूप से उसके महत्व को कम कर दिया।

5- एडलर के वैयक्तिक मनोविज्ञान में व्यक्ति की अपूर्वता तथा अविभाज्यता पर अधिक बल दिया डाला गया है। वे व्यक्तित्व को एक समग्र रूप से अध्ययन करने पर बल डाले हैं। वे व्यक्तित्व को एक अपूर्व तन्त्र कहा है जिसे उपतन्त्रों में बांटना संभव नहीं हैं। एडलर का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति की एक अपूर्व जीवन शैली होती है जो उसके द्वारा किये गये सभी तरह के व्यवहारों को समन्वित करती है। फ्रायड के मनोविश्लेषण में व्यक्ति पर इस तरह के बल की सर्वदा कमी पायी गयी है।

इस तरह से हम पाते हैं कि एडलर का मनोविज्ञान से कई अर्थो में भिन्न है। इन विभिन्नताओं के कारण ही एडलर ने फ्रायड से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था।

7.6 कार्ल युंग का विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (1857-1961)

प्रारम्भ में युंग ने पुरातत्वविज्ञान की ओर अभिरुचि दिखाई परन्तु बाद में चिकित्सा विज्ञान में अधिक दिलचस्पी दिखाने लगे। उन्होने जुरिक में वर्गोल्टडली मानसिक अस्पताल में एक मन:चिकित्सकिय सहायक के रूप में योगदान दिया। विल्यूलर के निर्देशन में उन्होने मनोविदालिता के क्षेत्र में लेखन प्रारम्भ किया तथा शब्द सहचर्य के क्षेत्र में नयी अभिरुचि उत्पन्न की। इन्हीं लेखन कार्यों के माध्यम से उनका सम्पर्क फ्रायड से हुआ।

फ्रायड की अतिमहत्वपूर्ण पुस्तक 'इन्टरप्रिटेसन ऑफ ड्रीम्स (Interpretation of Dreams) का प्रकाशन 1900 में हो चुका था। युंग भी फ्रायड की इस पुस्तक से काफी प्रभावित हुए। इन दोनों महान हस्तियों के बीच पत्रों के अदान-प्रदान का सिलसिला प्रारम्भ हुआ और इस तरह दोनों एक-दूसरे के

अच्छे दोस्त बन गये। 1907 में फ्रायड के आमंत्रण पर वे वियाना भी गए। फ्रायड की मदद से युंग 1911 में 'इन्टरनेशनल साइकोएनालिटिक एसोशियेशन के अध्यक्ष भी बने।

7.7 युंग के विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान का योगदान

युंग को एक समय फ्रायड का दत्तक पुत्र एवं मनोवैश्लेषिक आन्दोलन (psychoanalytic movement) का उत्तराधिकारी माना जाता था। फ्रायड ने स्वयं उन्हें ''अपना उत्तराधिकारी तथा युवराज कहा था, परंतु जब उनका 1914 में फ्रायड से साथ छुटा, तो उन्होने अपने अलग ''विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान'' (anayltical psychology) की स्थापना करके मनोविज्ञान को आगे बढ़ाया। युंग फ्रायड के दूसरे प्रमुख विरोधी थे जिन्होने उनसे अलग होकर अपना एक अलग मनोविज्ञान स्थापित किया जिसे विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (Analytical Psychology) के नाम से जाना जाता है। उन्होने अपने इस मनोविज्ञान में फ्रायड के कई संप्रत्ययों (concepts) को स्वीकार किया परन्तु कई अन्य संप्रत्ययों को इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया कि उनमें यौन पर जरुरत से ज्यादा बल डाला गया है। युंग के विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान को निम्नलिखित चार प्रमुख भागों में बांटा गया है-

(1) **चेतन एवं अचेतन** - फ्रायड के समान युंग ने भी मानसिक संरचना के दो भाग बतलाये हैं- चेतन और अचेतन। कोई भी मानसिक घटना जिसका अनुभव अहं (ego) द्वारा होता है, उसे चेतन की संज्ञा दी जाती है तथा कोई भी मानसिक घटना जिसका अनुभव अहं को नहीं होता हैं, उसे अचेतन में रखा जाता है। अत: युंग के लिए अहं का तादात्म्य (identification) मन के चेतन पहलू से होता है। युंग ने अहं को आत्मन् से भिन्न माना है क्योंकि आत्मन् का तादात्म्य चेतन तथा अचेतन दोनों पहलुओं से होता है। अत: आत्मन् को सम्पर्क समग्र व्यक्तित्व से है जबकि अहं का सम्बन्ध मात्र मन के चेतन पहलू से होता है।

उन्होनें अचेतन को दो भागों में बांटा है-व्यक्तिगत अचेतन तथा सामूहिक अचेतन। व्यक्तिगत अचेतन में बाल्यावस्था की दमित इच्छाएं, भूली-बिसरी यादें आदि संचित होती है। इसे व्यक्तिगत इसलिए कहा जाता है क्योंकि एक ही समय में विभिन्न व्यक्तियों में यह भिन्न-भिन्न होता है तथा स्वयं व्यक्ति के लिए भी अपूर्व होता है।

सामूहिक अचेतन युंग का सबसे महत्वपूर्ण परन्तु विवादास्पद संप्रत्यय है। इसमें आदिकालीन प्रतिमाएं संचित होती है तथा इसमें वैसी यादें होती हैं जो बहुत पुराने समय से पीढ़ी-दर-पीढ़ी से चली आती है। व्यक्ति के पूर्वजों द्वारा पृथ्वी, सूर्य, ईश्वर के संप्रत्यय से प्राप्त होने वाली अनुभूतियां इसमें संचित होती हैं। लोगों के कई तरह के धार्मिक विश्वास, दन्तकथाएं, देवकथाएं, आदि भी सामूहिक अचेतन में ही सम्मिलित होती है। सामूहिक अचेतन की अंतर्वस्तु को आद्यरूप कहा जाता है। यह व्यक्तिगत अचेतन के वैयक्तिकृत होता है। युंग ने पांच प्रमुख तरह के आद्यरूप का वर्णन किया है- परसोना, एनिमा, एनिमस, छाया तथा आत्मन् (self)। परसोना एक तरह का बाहरी व्यक्तित्व को कहा जाता है जिसे आम लोग देखते हैं तथा समझते हैं। युंग का यह विचार था कि सभी मानव प्राणी उभयलिंगी (bisexual) होते है तथा उनमें स्त्रैण एवं पौरुष दोनों गुण होते हैं। पुरुष के स्त्रैण पहलू को एनिमा तथा स्त्री के पौरुष पहलू को एनिमस कहा जाता है। छाया से तात्पर्य मानव

में उन पाशविक मूलप्रवृत्तियों से होता है जिसे वह विकासात्मक चक्र के दौरान विकसित किया होता है। आत्मन् से तात्पर्य वैसे आद्यरूप से होता है जो व्यक्ति को सम्पूर्णता की ओर अग्रसर करता है। यह वैयक्तिकरण की प्रक्रिया को नियंत्रित करता है तथा व्यक्ति में सृर्जनात्मकता की वृद्धि करता है।

(2) **मनोवृत्ति एवं कार्य** : युंग का मनौवैज्ञानिक प्रकार - युंग का मत है कि व्यक्तित्व के दो पहलू मनोवृत्ति तथा कार्य होते हैं जो चेतन तथा अचेतन दोनों ही स्तरों पर कार्य करते हैं। उन्होंने मनोवृत्ति के दो प्रकार बतलाये हैं-अर्न्तमुखिता तथा बर्हिमुखता। अन्तर्मुखता की मनोवृत्ति रखने वाले व्यक्ति का ध्यान अपने निजी अनुभूतियों पर अधिक होता है तथा वे उसी से निर्देशित होते हैं। जिन व्यक्तियों की मनोवृत्ति बहिर्मुखता की होती है, वे बाहरी अनुभूतियों एवं क्रियाओं पर निजी अनुभूतियों की तुलना में अधिक ध्यान देते हैं। ऐसे लोग सक्रिय एवं सामाजिक होते हैं।

(3) **मानसिक ऊर्जा** - युंग का मत था कि मानसिक ऊर्जा एक ऐसी ऊर्जा होती है जिसे नष्ट नहीं किया जा सकता है। मानसिक ऊर्जा हमारे व्यक्तित्व संरचना का एक महत्वपूर्ण अंश है। मानसिक ऊर्जा का स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि इसे दमित किया जा सकता है, विस्थापित हो सकता है तथा परिशद्धु किया जा सकता है। उन्होंने दो नियमों का उल्लेख किया है जिनसे मानसिक ऊर्जा (psychic energy) नियन्त्रित होती है-तुल्यता का नियम जो उष्मा गतिकी (themodynamics) का प्रथम नियम है, यह बतलाता है कि ऊर्जा का रूप में भले परिवर्तन हो जाता है परन्तु वह नष्ट नहीं होता है। मानसिक ऊर्जा का स्वरूप भी ठीक इस नियम से नियंत्रित होता है। इण्ट्रोपी का नियम (जो उष्मा गतिकी का द्वितीय नियम है) यह बतलाता है कि जब दो चीजें एक साथ रखी जाती है, तो उच्चतर चार्ज या आवेश वाली चीज से ऊर्जा निकलकर निम्नतर चार्ज या आवेश वाली चीज की ओर तब तक जाते रहता है जब तक कि इन दोनों की ऊर्जा शक्ति सम या बराबर नहीं हो जाए। इस नियम को व्यक्तित्व संरचना पर लागू करते हुए युंग ने यह कहा कि व्यक्तित्व के विभिन्न तंत्रों के ऊर्जा आवेशों के बीच एक संतुलन पाया जाता है। इस संतुलन के कारण व्यक्ति के कार्यों में संतुलन आता है तथा व्यक्ति एक विशेष मनोवृत्ति विकसित कर लेता है। यही कारण है कि इसे ऊर्जा नियमों की समता कहा जाता है।

(4) **व्यक्तित्व विकास** - युंग ने यह स्पष्ट किया कि व्यक्तित्व विकास कई अवस्थाओं के क्रम से गुजरता हुआ वैयक्तिकता के बिन्दु पर पहुंच कर समाप्त होता है। उन्होनें व्यक्तित्व विकास के चार अवस्थाओं का वर्णन किया है - बाल्यावस्था, युवावस्था, मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था। युंग व्यक्तित्व के दूसरे भाग जो मध्यावस्था से अर्थात् 35-40 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होता है, को अधिक महत्वपूर्ण बताते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति को व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को एक साथ समन्वित करने का पर्याप्त मौका मिलता है और इससे आत्मन् के विकास या सिद्धि में पर्याप्त मदद मिलती है। अत: युंग ने आत्मन् सिद्धि को व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य माना है। परन्तु उन्होनें यह भी स्वीकार किया है कि व्यक्ति में स्नायुविकृत प्रवृत्तियां भी उस समय मौजूद रहती हैं और व्यक्ति पर निर्भर करती है।

युंग के योगदानों की आलोचना

1- आलोचकों का मत है सामूहिक अचेतन का कोई शोधमूल्य नहीं हैं क्योंकि इस सम्प्रत्यय द्वारा कोई जांचनीय प्राक्कल्पनाओं की निष्पत्ति नहीं की जा सकी है।
2- एडवार्ड ग्लोबर ने युंग द्वारा प्रतिपादित आद्यरूप के सम्प्रत्यय की इस बिन्दु पर भी आलोचना कि है कि वे काफी आत्मनिष्ठ हैं तथा उनकी व्याख्या व्यक्तिगत अनुभूति के रूप में की जा सकती है।
3- युंग ने सैद्धान्तिक पहलू की पूर्ण उपेक्षा की है और अपने विचारधाराओं को तुलनात्मक विधि पर आधारित किया जो उनके लिए मात्र एक वैज्ञानिक विधि है।
4- युंग का लेखन अस्पष्ट, परस्पर विरोधी तथा अक्रमबद्ध है। उनकी जिन्दगी के उत्तर भाग के लेखनों से यह स्पष्ट होता है कि वे मनोवैज्ञानिक कम तथा तत्व मीमांसक अधिक थे।

7.8 फ्रायड एवं युंग में अन्तर

1- फ्रायड के समान, युंग ने मानसिक ऊर्जा के संप्रत्यय को स्वीकार किया है। युंग के लिए मानसिक ऊर्जा की उत्पत्ति, विभिन्न शारीरिक प्रक्रियाओं से होती है जो जिन्दगी के लिए एक मौलिक प्रणोद बनता है। स्पष्टत: युंग ने अपने मनोविज्ञान में फ्रायड द्वारा मानसिक ऊर्जा के क्षेत्र में यौन पर दिये गए बल को स्वीकार नहीं किया। फ्रायड के लिए मानसिक ऊर्जा की उत्पत्ति का स्त्रोत मूलप्रवृत्ति विशेषकर यौन मूल प्रवृत्ति है।
2- हालांकि फ्रायड एवं युंग दोनों ने ही अचेतन के संप्रत्यय की व्याख्या की है, फिर भी युंग ने इसकी व्याख्या भिन्न ढंग से की है। युंग ने अचेतन को सामूहिक, प्रजातीय तथा पुरातन माना है। फ्रायड के लिए अचेतन का स्वरूप मूलत: व्यक्तिगत होता है न कि सामूहिक तथा प्रजातीय।
3- फ्रायड एक नियतिवादी है जिन्होंने वर्तमान व्यवहार का मुख्य निर्धारक गत-अनुभूतियों को माना है। युंग ने मानव व्यवहार की व्याख्या में नियतिवादी तथा सोद्देश्यवादी दोनों तरह का समावेश किया है।

7.9 केरेन हार्नी का योगदान (1885-1952)

हार्नी एक महिला मनोवैज्ञानिक है जिनका दृष्टिकोण मनोविज्ञान के प्रति एक नया था। फिर भी उनके विचारों में एक परम्परागत मनोविश्लेषणात्मक चिन्तन की स्पष्ट झलक मिलती है। कैरेन हानी का जन्म हैमबर्ग जर्मनी में 1885 में हुआ था। 12 साल की उम्र में इन्होंने चिकित्सा शास्त्र पढ़ने का निर्णय किया। 1913 में इन्होंने मेडिकल प्रशिक्षण पूरा किया। केरेन हार्नी मानसिक चिकित्सक थी। उन्होने वर्षो तक फ्रायडीय पद्धति के अनुसार मानसिक चिकित्सा का कार्य किया था।

इनकी लिखी चार किताबे - दी न्यूरौटिक परर्सनालिटी ऑवर टाइम, ऑवर इन्नर कानफ्लिक्ट, सेल्फ एनालिसिस तथा न्यूरोसिश एण्ड ह्यूमन ग्रोथ काफी मशहूर हुई। कैरेन की 1952 में कैंसर के कारण मृत्यु हो गयी।

मनोविश्लेषण के मूलतत्वों को वे सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर बल डालते हुए व्याख्या करने की कोशिश की है। वे शिश्न ईर्ष्या (Penis envy) के सम्प्रत्यय को सबसे पहली बार 1923 में

चुनौती दी। फिर भी वे फ्रायड के योगदानों को पूर्णत: अस्वीकृत नहीं कर सकी और उनके विचारों को मान्यता प्रदान करते हुए अपने विचारों को निम्नलिखित रूप मे प्रस्तुत किया -

1- मूल दुश्चिंता - हार्नी का मत था कि प्रत्येक सामान्य एवं स्वस्थ व्यक्ति में कुछ सृर्जनात्मकएवं धनात्मक अन्त:शक्ति होती है। जब उसे स्नेह एवं प्यार मिलता है, तो वह अन्त:शक्तियों को दिखाता है और इससे उसमें आत्म विश्वास विकसित होता है। दूसरी तरफ यदि उसकी मौलिक अन्त:शक्ति की अभिव्यक्ति नहीं होती है या उसकी पूर्ति नहीं होती है तो उससे दुश्चिता की उत्पत्ति होती है।

2- स्नायुविकृत आवश्यकताएँ तथा स्नायुविकृत प्रवृत्तियाँ - जब व्यक्ति अपनी जिन्दगी की बहुत सारी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता है जिसके कारण उसे बार-बार असफलता ही हाथ लगती है जिससे उसमें कुछ विशेष आवश्यकताएं उत्पन्न हो जाती है। इन आवश्यकताओं की हार्नी ने स्नायुविकृत आवश्यता कहा है क्योंकि इनसे कोई संगत समाधान नहीं होता है। ऐसी आवश्यकताएं सामान्य एवं मन:स्नायुविकृत दोनों ही तरह के लोगों में उत्पन्न होती है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि हार्नी सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर बल डालकर यह दिखाने की कोशिश करता है कि मानव व्यवहार न केवल जैविक एवं मूलप्रवृत्तिक कारकों से ही निर्धारित होता है बल्कि पर्यावरणी कारकों से भी प्रभावित होता है।

आलोचना

1- लूडिंन ने यह मत जाहिर किया है कि हार्नी ने फ्रायद के योगदानों को कुछ विशेष कारक जोड़कर उन्नत बनाने की कोशिश कि है, फिर भी उनकी उपलब्धियाँ एवं योगदान फ्रायड की उपलब्धियों एवं योगदान के सामने काफी तुच्छ है।

2- कुछ मनोवैज्ञानिकों ने हार्नी के दृष्टिकोण को अधूरा एवं आंशिक करार दिया है क्योकि हार्नी ने मूलत: दुश्चिंता, स्नायुविकृत आवश्यकताएँ तथा स्नायुविकृत प्रवृत्तियों के अध्ययन तक ही अपने आप को सीमित रखा है।

7.10 व्यवहारवाद (Behaviourism)

वाटसन जॉन ने व्यवहारवाद की स्थापना की। वाटसन के मनोविज्ञान को 'मन रहित मनोविज्ञान' कहा गया हैं। वाटसन जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे। वाटसन जॉन पशुओं पर अपना शोध किया तथा एडोल्फ मेयर के साथ मिकर बच्चों पर विभिन्न शोध कार्यक्रम किये। शिकागों विश्वविद्यालय में अपने किये गए शोधों के आधार पर 1903 में वे व्यवहारवादी सिद्धान्तों का लगभग प्रतिपाद कर चुके थे परन्तु उनके शिक्षक एंजिल ने उन्हें ऐसा करने से यह कहकर रोक दिया कि इस तरह के सिद्धान्त सिर्फ पशुओं के लिए सही हो सकते हैं, मनुष्यों के लिए नहीं। 1908 में वाटसन जॉन ने येल विश्वविद्यालय में अपने इन विचारों पर व्याख्यान दिया। परन्तु सुनने वाले लोगों ने उनकी प्रशंसा न करके शिकायत कर कहा कि उनके सिद्धान्त वर्णनात्मक है, व्याख्यात्मक नहीं। इन आलोचनाओं के संदर्भ में उन्होने अपने आपको सुधारते हुए 1913 में साइकोलॉजिकल रिव्यू में एक विशेष शीर्षक अर्थात् 'साइकोलॉजी एज दी बिहेवियरीस्ट रिव्यूज इट' के तहत प्रकाशित किया। यही से व्यवहारवाद का औपचारिक शुभारम्भ माना जाता है,

जिसे मनोविज्ञान में सामान्यत: व्यवहारवादियों की लोक घोषणा कहा जाता है। इस लोक घोषणा में व्यवहारवाद की कुछ मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है जिसमें निम्नांकित चार प्रमुख है -

- ❖ व्यवहारवादियों के लिए मनोविज्ञान पूर्णत: प्राकृतिक विज्ञान का वस्तुनिष्ठ प्रयोगात्मक शाखा है।
- ❖ अन्तर्निरीक्षण मनोविज्ञान के कार्यविधि का कोई आवश्यक हिस्सा नहीं है।
- ❖ चेतन के अध्ययन से कोई वैज्ञानिक महत्व के आंकड़े नहीं प्राप्त होते हैं। अत: इसे अनुसंधान के विष्पाय की सूची से हटा देना चाहिए।
- ❖ मनोविज्ञान का विषय वस्तु सरल एवं जटिल दोनों तरह के व्यवहार हैं।

व्यवहारवाद की परिभाषा

वाटसन के लिए मनोविज्ञान प्राकृतिक विज्ञान की एक शाखा है जो मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। व्यवहार का अर्थ यहां विस्तृत है जिसमें 'शाब्दिक अभिव्यक्ति' भी सम्मिलित है। अत: व्यक्ति द्वारा कुछ कहना या बोलना को भी व्यवहार में ही सम्मिलित किया गया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि मनोविज्ञान का विषय वस्तु न चेतना है न मानसिक कार्य और न ही किसी तरह की मनोदैहिकी प्रक्रिया हैं।

वाटसन द्वारा व्यक्ति के व्यवहार को उन्नत बनाने या जिसे आज व्यवहार परिमार्जन के नाम से जाना जाता है, की कोई स्पष्ट प्रविधि का वर्णन नहीं किया गया है। वे व्यवहार को उन्नत बनाने के लिए मात्र सामान्य विषय पर कुछ बल डाले थे।

आरम्भिक व्यवहारवादियों का कार्यक्षेत्र अधिक विस्तृत रहा है क्योंकि इन लोगों द्वारा कई तरह के संप्रत्ययों जैसे-स्मृति, संवेग, चिन्तन, सीखना आदि के अध्ययन में अभिरुचि दिखायी गयी है। प्रारम्भिक व्यवहारवादियों के संप्रत्यय, विचारधारा एवं सिद्धान्त का आधार ऐसा प्रयोगात्मक समर्थन नहीं बल्कि मात्र अन्तर्ज्ञान का समर्थन है।

उत्तरकालीन वयवहारवादियों का सिद्धान्त एवं संप्रत्यय कई अर्थो में आरम्भिक व्यवहारवाद के सिद्धान्तों एवं संप्रत्ययों से भिन्न है।

7.11 इवान पैट्रोविच पावलव (1848-1936)

पावलव ने 1883 में दैहिक विज्ञान में उपाधि प्राप्त कने के बाद अपना कार्य प्रारम्भ किया। सन् 1883 से 1924 तक दैहिक विज्ञान के प्रोफेसर रहे। उन्होंने पाचन - क्रिया में रसायनों पर महत्पूर्ण कार्य किया जिस पर उन्हें नोबुल पुरस्कार भी प्रदान किया गया। सेकेनोव की भाँति वे तो मनोविज्ञान को दैहिक विज्ञान बनाना भी नहीं चाहते थे क्योंकि उन्होंने उसे प्रारम्भ में "मानसिक स्त्राव" नाम दिया तथा बाद में "मानसिक प्रक्रिया"। इसी नाम के कारण उन्हें मनोविज्ञान में स्थान मिला। पावलव के 40 पत्रों, जो 1903 से 1928 तक प्रकाशित हुए के द्वारा पूरी प्रक्रिया दर्शाई गई है जो निम्न है -

(1) **प्रतिवर्त (Reflex)-** पावलव ने प्रतिवर्त चाप को तीन भागों में बाँटा - विश्लेषक, संयोजन व प्रभावक। विश्लेषक चाप का वह भाग है जो ज्ञानेन्द्रिय के तुरन्त बाद प्रारम्भ होकर सुषुम्ना तक जाता है। संयोजन का कार्य सुषुम्ना में ही होता है। प्रभावक सुषुम्ना से माँसपेशी तक की नाड़ी का भाग होता है। उन्होंने हर संवेदना के लिए दैहिक केन्द्रों का भी निर्धारण किया, जैसे

- भोजन, शीत, गर्म, गति, सुरक्षा आदि जो सभी अलग-अलग ज्ञानेन्द्रियों से जुड़े रहते हैं। इनसे होने वाली क्रिया को ही प्रतिवर्त क्रिया कहा जाता है, जो वंशानुगत होती है। उसे उन्होंने अनुकूलन क्रिया कहा। भोजन केन्द्र सबसे प्रमुख हैं क्योंकि उससे जीवन है तथा सुरक्षा सबसे कम। जब कई केन्द्र उत्तेजित हों तो उनकी पारस्परिक शक्ति से उत्तेजना की शिक्षा में अनुकूलन होता है।

(2) **मानसिक क्रिया -** मानसिक क्रिया दो अवयव रखती है - उत्तेजना व अवरोध। नाड़ी के एक केन्द्र से शक्ति दूसरे केन्द्र में प्रवाहित होती रहती है। उसी को पावलव ने उत्तेजना कहा। जो केन्द्र शक्ति को खींच लेता है वह उत्तेजित हो जाता है। यह क्रिया तीन नियमों पर आधारित है - द्युति, संकेन्द्रण व आगमन।

पावलव का विचार था कि मस्तिष्क व नाड़ियों में कोई रसायन होता है, जो उत्तेजना व प्रावरोध उत्पन्न करता है। मस्तिष्क की कोशिकाओं में रसायन घट-बढ़ सकता है। जन्म से कुछ लोगों में वह अधिक व कुछ में कम होता है, कुछ में वह बाद में बीमारी आदि से घट सकता है, व कुछ में विशिष्ट भोजन से बढ़ सकता है। इसके कम होने से कोशिकाएँ क्रियात्मक रूप से नष्ट हो जाती हैं। प्रावरोध इस विनाश को रोकता है।

(3) **संयोजनवाद -** पावलव ने मस्तिष्क का प्रमुख कार्य प्रतिवर्त ही माना कि वह बाह्य जगत व जीव अनुक्रिया का संयोजक है। इसी कारण उनका सिद्धान्त संयोजनवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। नाड़ी संस्थान का कार्य न केवल संचालन है बल्कि संयोजन भी। एक प्रकार का उद्दीपक सदा एक ही नाड़ी से चलता है तथा एक सी उत्तेजना उत्पन्न करता है। यदि उसमें परिवर्तन कर दिया जाय तो नये संयोजन स्थापित हो जाते हैं।

(4) **प्रत्यक्ष ज्ञान -** पावलव ने अपने विभिन्न प्रयोग जो उन्होंने पशुओं को दृष्टिय व श्रव्यीय उद्दीपक देने के बाद प्रत्यक्ष ज्ञान पर किये, से यह सिद्ध किया कि प्रत्यक्ष ज्ञान के मस्तिष्क में विभिन्न केन्द्र होते हैं। पशुओं के मस्तिष्क के विभिन्न भाग काटकर उन्होंने उद्दीपकों से संयोजन अध्ययन किया। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रि का मस्तिष्क में निश्चित स्थान रहता है जहाँ उसकी नाड़ी संयोजन बनाती है। उस केन्द्र की विशिष्टता के कारण वह अन्य केन्द्रों से कम संयोजन करता है।

(5) **अधिगम -** पावलव मूलप्रवृत्ति तथा प्रतिवर्त में कोई भेद नहीं समझते थे। मूलप्रवृत्ति का सबसे बड़ा उद्देश्य आत्म - परिरक्षण है। इसी को जीवन मूलप्रवृत्ति कहते हैं। इसके अन्तर्गत कई प्रतिवर्त आते हैं, जैसे - भोजन, लिंग, ठण्डा, गर्म, स्वतन्त्रता, उत्सुकता आदि। ये अनुकूलित प्रतिवर्त कहलाते हैं।

पावलव का विचार था कि अनुकूलन (Adaplation) वल्कुट (Corlex) में होता है। उन्होंने पशुओं के वल्कुट के विभिन्न भागों को काट कर यह देखा कि कुछ भागों के काटने से अनुकूलन पर प्रभाव बहुत कम पड़ता है। सम्पूर्ण वल्कुट काट देने पर अनुकूलन तो होता है, परन्तु वह अस्पष्ट व निम्न स्तर का ही होता है।

(6) **अधिगम नियम** - पावलव ने अनुकूलन प्रक्रिया में प्रयोग करने के बाद कई नियम भी तैयार किये।

(i) अपने एक प्रयोग में पावलव ने पाया कि पशु को 120 ध्वनि प्रति मिनट मैट्रोनोम के अनुकूलित उद्दीपक को भोजन के अननुकूलित उद्दीपक के साथ देकर अनुकूलन सिखा दिया जाय और उसे 90 ध्वनि प्रति मिनट से परीक्षित किया जाय तो भी वह अनुकूलित अनुक्रिया करता है अर्थात् अनुकूलित उद्दीपक से मिलते - जुलते सभी उद्दीपक वही कार्य कर सकते हैं जो अनुकूलित उद्दीपक करता है - अनुकूलित अनुक्रिया। सभी उद्दीपकों में 'सामान्यीकरण' (Generalization) है। यदि ध्वनि गति में अधिक अन्तर हो तो पशु अन्तर को पहचान जाता है तथा विभेद करता है और अनुकूलन नहीं करता, अर्थात् अनुकूलित उद्दीपक से अधिक भिन्न उद्दीपक हो तो अनुकूलित अनुक्रिया नहीं होती। इसे पावलव ने 'विभेदीकरण' (Discrimination) कहा।

(ii) अनुकूलन होने के बादयदि केवल अनुकूलित उद्दीपक ही आता रहे, तथा उसके साथ अननुकूलित उद्दीपक न दिया जाये तो धीरे-धीरे जैसे - जैसे प्रयास बढ़ते जाते हैं, अनुकूलित अनुक्रिया होना घटता जाता है और अन्त में बन्द भी हो सकता है। इसे प्रावरोध (Inhibition) कहते हैं।

(iii) प्रावरोध आने से अनुकूलन शिथिल पड़ जाता है। ऐसी दशा में यदि फिर अनुकूलित उद्दीपक के साथ अनुकूलित उद्दीपक दे दिया जाये तो अनुकूलन फिर बढ़ जाता है। इसे 'पुनर्बलन' कहते हैं।

(iv) पावलव ने सुप्तता का नियम भी दिया। कम देर तक रूकने वाली उत्तेजनाएँ जब वल्कुट के किसी भाग में पहुँचती हैं और उनके बाद सतत और उत्तेजना न हो तो नशा या नींद आ जाती है। एक ही प्रकार की उत्तेजना लगातार रहने पर भी ऐसा होता है। यदि प्रावरोध वल्कुट में फैल जायें तो वह भी निद्रा पैदा कर सकता है।

(7) **मनुष्य की प्रकृति -** मनुष्य प्रकृति को भी पावलव ने मस्तिष्क क्रिया द्वारा ही यान्त्रिक ढंग से वर्णित किया। उनका विचार था कि मनुष्य प्रकृति तन्त्रिका तन्त्र के विश्लेषण, चलन, संयोजन व क्रिया रूपी कार्य हैं। इन्हीं के द्वारा वह पर्यावरण में व्यवहार करता है। इन कार्यों में उत्तेजना व प्रावरोध होते हैं जो आगमन, द्युति व संकेन्द्रण के नियमों का पालन करते है।

(8) **आक्रामकता -** जानवरों की आक्रामकता को पावलव ने 'रक्षक प्रतिवर्त' कहा, क्योंकि उसे वह अपने ऊपर आघातों को बचाने के लिये प्रयोग करता है। आक्रामकता को अनुकूलन द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

(9) **चेतना -** पावलव चेतना को तन्त्रिका क्रिया समझते थे। जब वल्कुट के किसी भाग में नये अनुकूलित प्रतिवर्त निर्मित होते हैं तो अन्य भाग अचेतन रहते हैं। जाग्रत अवस्था में वल्कुट का कोई न कोई भाग चेतन अवस्था में रहता है, वही प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। निद्रा, स्वप्न व सम्मोहन में वल्कुट अचेतन रहता है तथा निम्न मस्तिष्क भाग व सुषुम्ना चेतन में। ये भाग ही अननुकूलन, मूलप्रवृत्ति व संवेग के स्थान हैं।

(10) **वाक्-शक्ति -** वाक्-शक्ति मनुष्य की विशेषता है। पशुओं में वल्कुट में उत्तेजना होती है तथा अवशेष के रूप में रह जाती है। मनुष्य में भी ऐसा ही होता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य में

एक क्रिया और होती है जो जानवरों में नहीं होती है, वह है बोलना। वल्कुट के संकेत शब्दों में बदल जाते हैं।

(11) **प्रयोगात्मक मनस्ताप -** पावलव ने प्रयोगात्मक मनस्ताप पर लिखते हुये बताया कि एक प्रयोग में जब कुत्ता गुस्से से भौंकने व काटने लगता है द्वन्द्वात्मक उद्दीपकों के कारण उत्तजनाएँ व प्रावरोध हो गये हैं। कुछ जानवर इस द्वन्द्व को अधिक सहन कर सकते हैं तथा कुछ कम। पहले प्रकार के आक्रामक हो जाते हैं। वे मानसिक रोग, जैसे तन्त्रिका क्षीणता विकसित कर लेते हैं। दूसरे प्रकार के शान्त, डरपोक व अप्रभावी हो जाते हैं।

(12) **स्वभाव -** पावलव ने उत्तेजना तथा प्रावरोध के आधार पर तीन प्रकार के जीव स्वभाव बताये - उत्तेजक, प्रावरोधी व सन्तुलित। उन्होंने कुत्तों को भी चार प्रकार का वर्णित किया तथा मनुष्यों को भी वैसा ही माना: कोपशील, विषादी, श्लेष्मिक व उत्साही।

मूल्यांकन

पावलव के सिद्धान्त में प्रमुखत: पाँच विशेषताएँ थीं - पूर्णता, वस्तुवाद, यान्त्रिक, कारणवाद व सन्तुलन। इन्हीं नियमों का आधार उनके विचारों में स्पष्ट दिखाई देता है। वे सम्पूर्ण जगत या प्रकृति को तत्व शक्ति का रूप मानते थे तथा हर जीव उसका एक अंश है। पूरा जीवन जीव के तन्त्रिका तन्त्र व ग्रन्थियों से ही होता है। उन्हीं के द्वारा सारी क्रियाएँ होती हैं।

पावलव अन्तर्निरीक्षण को नहीं मानते थे। इस कारण वे वस्तुनिष्ठता व वैज्ञानिकता में विश्वास करते थे। उन्होंने व्यवहारवाद की कमी को कभी नहीं देखा, वे केवल अपने प्रयोग करते रहे और उन्हें वर्णित करते रहे। वे केवल निरीक्षणात्मक प्रदत्तों को ही मानते थे।

अपने सभी सिद्धान्त उन्होंने नाड़ी व मस्तिष्क में समाहित करके उद्दीपक व अनुक्रिया के सम्बन्ध से समझाये। प्रत्येक उद्दीपक अपना एक क्षेत्र मस्तिष्क में रखता है, तथा विशिष्ट अनुक्रिया। अनुक्रिया तभी कुछ बदलती है, जब उद्दीपक में कुछ अन्तर हो। मस्तिष्क में नये संयोजन बनते हैं। पशु हो चाहे मनुष्य दोनों में उन्होंने एक सा दृढ़ व आवश्यक कारणवाद दर्शाया।

पावलव मस्तिष्क की गत्यातमकता को सदा मानते रहे तथा उसी से सभी व्यवहार वर्णित किये। मस्तिष्क सदा गत्यात्मक शक्ति का सन्तुलन बनाये रखता है। उसकी विभिन्न क्रियाएँ, जैसे ग्रहण करना, छोड़ना, उत्तेजना, प्रावरोध, केन्द्रण आदि मस्तिष्क के विभिन्न भागों में चलती रहती हैं।

पावलव वातावरण की महत्ता को भली - भाँति समझते थे परन्तु दृढ़ अपचयवाद मे फँसने के कारण वे उसे अधिक वर्णित न कर सके जितना कि करना चाहिए था। इसका प्रमुख कारण उनका अपचयवादी व यान्त्रिकी चिन्तन ही रहा। नये-नये उद्दीपकों से नये संयोजन व अनुकूलन द्वारा सीखना उनके अनुभववादिता के सबूत देते हैं।

वाटसन ने तो पावलव के अनुकूलन सिद्धान्त को व्यवहारवाद में पूरी तरह ग्रहण किया, परन्तु पावलव ने व्यवहारवाद को नहीं। उनके विचार अवश्य व्यवहारवादी थे, परन्तु वे अपने आप को व्यवहारवादी नहीं मानते थे। इसीलिए उनका सिद्धान्त संयोजनवाद कहलाया।

7.12 बी.एफ. स्कीनर (1904-1990)

स्कीनर का जन्म 1904 में हुआ था। 1930 में एम.ए. तथा 1931 में पी.एच.डी. की उपाधि हावर्ड विश्वविद्यालय से प्राप्त की। उन्होने मिशीगन तथा मिनेसेटो विश्वविद्यालय में 1936-45 तक अध्यापन कार्य किया, इसके बाद 1945-48 तक इण्डियाना विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष रहे तथा अंत में हावर्ड विश्वविद्यालय में प्राचार्य के पद नियुक्त हुए और आजीवन वहीं कार्यरत रहे।उनकी प्रमंख पुस्तकों में 'दि बिहेवीयर ऑफ ऑरगोनिज्म', 'वर्बल बिहेवियर' तथा 'इंजाय ओल्डएज' थी।

1930 वाले दशक में स्कीनर की अभिरुचि मूलत: सीखने के नियमों एवं सिद्धान्तों के प्रतिपादन में थी। इन प्रयोगों में प्रयोज्य के रूप में चूहों का प्रयोग किया गया था। इसी सिलसिले में उन्होने एक विशेष बक्स का भी प्रतिपादन किए जो बाद में स्कीनर बक्स के नाम से मनोविज्ञान में मशहूर हुआ।

स्कीनर एक सच्चे व्यवहारवादी थे तथा प्राणी को एक खाली या रिक्त प्राणी समझते थे। दूसरे शब्दों में, उनका मत था कि प्राणी के व्यवहारों का निर्धारण उसके भीतर के कारकों द्वारा नहीं होता है। शायद यही कारण है कि उनके मनोविज्ञान को रिक्त प्राणी दृष्टिकोण भी कहा गया है। इस दृष्टिकोण में प्राणी के प्रेक्षणीय व्यवहार ही मनोविज्ञान की विषयवस्तु माना गया है।

(1) **अनुबन्धन का मनोविज्ञान -** स्कीनर ने जिस अनुबंधन का समर्थन किया है, उसे साधनात्मक अनुबन्धन या क्रियाप्रसूत अनुबन्धन कहा गया है। स्कीन्ननर ने अनुक्रिया को दो भागों में बांटा है- प्रतिवादी अनुक्रिया तथा क्रियाप्रसूत अनुक्रिया। प्रतिवादी अनुक्रिया में कोई विशिष्ट उद्दीपक की पहचान करना सम्भव नहीं हो पाता है। इस तरह की अनुक्रिया प्राणी द्वारा उत्पन्न किया जाता है।

पैवलव के समान स्कीनर भी सीखने से सम्बन्धित अन्य घटनाओं जैसे-गौण पुनर्बलन, विलोपन, विभेद तथा विरुचि अनुबन्धन आदि पर भी प्रकाश डाला है।

(2) **प्रणोद** - उन्होने प्रणोद की व्याख्या हल्ल के समान कोई अनुमानित अवस्था या मध्यवर्ती चरों के रूप में नहीं कि हैं। उन्होने प्रणोद की व्याख्या भोजन, पानी आदि के वंचन के रूप में या पशु के सामान्य शरीर वजन के प्रतिशत के रूप में कि हैं। इन दोनों ही हालातों में प्रणोद का मापन एक प्रेक्षणीय व्यवहार के रूप में किया जाता है जिसे स्पष्टत: मापा जा सकता है।

(3) **संवेग** - प्रणोद के समान संवग की भी व्याख्या स्कीनर द्वारा एक वस्तुनिष्ठ ढंग से की गयी है। उन्होने सांवेगिक व्यवहार की व्याख्या उस परिस्थिति के संदर्भ में करने की कोशिश कि हैं जो किसी अनुक्रिया के होने की सम्भावना को प्रभावित करता है। जब किसी अरुचिकर परिस्थिति या उद्दीपक के आने की चेतावनी मिलती है, तो उससे व्यक्ति को चिन्ता होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दुश्चिंता प्राणी की कोई आन्तरिक अवस्था नहीं होती है बल्कि यह परिस्थिति के प्रति एक खास ढंग से अनुक्रिया करने की पूर्वप्रवृत्ति होती है।

(4) **शेपिंग एवं अन्धविश्वासी व्यवहार** - स्कीनर ने यह बताया है कि स्कीन्ननर बक्स में पशुओं को जटिल अनुक्रिया करने के लिए भी सिखाया जा सकता है। यह जिस प्रविधि द्वारा सम्भव हो पाता है उसे शेपिंग कहा जाता है। इस प्रविधि में पशु के व्यवहार को धीरे-धीरे आनुक्रमिक उपागमन के द्वारा जिसमें पुनर्बलन के आधार पर अनुक्रिया को एक खास दिशा में मोड़ा जाता है, सम्पन्न किया जाता है। शेपिंग को न केवल पशुओं के अध्ययन में बल्कि मनुष्यों के अध्ययन में भी दिखाया गया है। ग्रीनस्पून ने अपने अध्ययन के आधार

यह दिखाया है कि मनुष्यों को व्यवहारों को भी पुनर्बलन के स्वत: प्रभाव द्वारा मोड़ा जा सकता है। इसे शाब्दिक अनुबन्धन कहा जाता है।

स्कीनर ने अंधविश्वासी व्यवहार का भी अध्ययन किया है। उन्होंने इस तरह के व्यवहार को स्कीनर बक्स में चूहों द्वारा दिखाया है। इस तरह का व्यवहार आकस्मिक पुनर्बलन के कारण विकसित होता है। अंधविश्वासी व्यवहार में प्रयोज्य को ऐसा विश्वास होता है कि कोई विश्वास अनुक्रिया के होने से पुनर्बलन मिला है जबकि सच्चाई यह है कि उस अनुक्रिया एव पुनर्बलन में कोई सम्बन्ध नहीं होता है। आम जिन्दगी मे अंधविश्वासी व्यवहार व्यक्तियों द्वारा अधिक किये जाते हैं।

(5) **शाब्दिक व्यवहार** - स्कीनर का मत था कि संभाषण अन्य व्यवहारों के समान पुनर्बलन के संभाव्यता के कारण विकसित होता है। इस तरह के व्यवहार का मुख्य उद्देश्य अनुक्रियाओं को बतलाना, सम्बन्धों की अभिव्यक्ति करना, शाब्दिक व्यवहार के लिए व्याकरणीय ढांचा तैयार करना आदि होता है। प्रतिध्वनिक व्यवहार से तात्पर्य एक ऐसे शाब्दिक व्यवहार से होता है जो तब पुनर्बलित होता है जब व्यक्ति दूसरे द्वारा बोले गए शाब्दिक अनुक्रिया को हु-ब-हु दोहराता है। इस तरह का व्यवहार शिशुओं द्वारा जटिल शाब्दिक व्यवहार को सीखने के लिए आवश्यक माना गया है। शाब्दिक व्यवहार वैसे व्यवहार को कहा जाता है जो किसी किताब या अन्य लिखित सामग्री को मन ही मन पढ़ने में या जोर से पढ़ने में सम्मिलित होता है।

(6) **शिक्षण मशीन तथा कार्यक्रमित सीखना** - स्कीनर द्वारा बताये गये सिद्धान्तों एवं नियमों का शिक्षा में काफी उपयोग हुआ है। कार्यक्रमित सीखना में व्यक्ति किसी पाठ या कार्य को एक कार्यक्रम या विशेष निर्देश देकर उसे छोटे-छोटे अंशों में बांटकर सीखता है। स्कीनर का अपना मत यह था कि पौराणिक वर्ग शिक्षण की जो विधि है, वह कई कारणों से काफी दोषपूर्ण है। इसके अलावा इसमें पुनर्बलन हमेशा विलम्बित होता है।

(7) **व्यवहार परिमार्जन** - व्यवहार परिमार्जन या जिसे व्यवहार चिकित्सा भी कहा जाता है, में व्यक्ति के अंवाछित व्यवहार को शेपिंग, धनात्मक पुनर्बलन का चयनात्मक प्रयोग तथा विलोपन के माध्यम से परिवर्तित करके उसके जगह पर वांछित व्यवहार को स्थापित किया जाता है। व्यवहार समस्या का चाहे जो भी रूप क्यों न हो, स्कीनर की प्रविधि में पहले उस व्यवहार समस्या के प्रत्येक पहलू को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर लिया जाता है। इसके बाद इस व्यवहार को करने के बाद मिलने वाले पुनर्बलन को हटा दिया जाता है तथा वांछित व्यवहार को पुनर्बलित किया जाता है। ऐसा करने से धीरे-धीरे व्यक्ति में वांछित अनुक्रिया स्थापित हो जाता है तथा अवांछित अनुक्रिया को व्यक्ति त्याग कर देता है। स्कीनर द्वारा प्रतिपादित व्यवहार परिमार्जन के विभिन्न प्रविधियों का संयुक्त नाम प्रासंगिकता प्रबन्धन हैं।

(8) **बियोन्ड फ्रीडम एण्ड डिग्निटी** - स्कीनर ने अपनी पुस्तक बियोन्ड फ्रीडम एण्ड डिग्निटी में एक ऐसे सामाजिक दर्शनशास्त्र का प्रतिपादन किया है जिसमें उन्होने प्रयोगशाला से अलग हटकर विभिन्न सामाजिक समस्याओं के अध्ययन की ओर अपनी अभिरुचि का परिचय दिया है। उन्होनें यह स्पष्ट रूप से बतलाया है कि मानवीय समस्याओं के प्रभावी समाधान के लिए व्यक्ति को व्ववहार की तकनीकी का उपयोग करना चाहिए।

आलोचना

1. स्कीनर ने कुछ सीमित व्यवहारों का अध्ययन किया है। जैसे, वे अपने आपको चूहों द्वारा लीभर दबाने तथा कबूतरों द्वारा चोंच मारने की अनुक्रिया के अध्ययन तक सीमित रखा है। प्राणी के इन सरल व्यवहारों का अध्ययन करके वे एक विदित सामान्यीकरण किये हैं जिसे आलोचकों ने स्कीनर का अतिसरलीकरण कार्यक्रम बतलाया हैं।
2. कुछ आलोचकों का मत है कि स्कीनर ने अपने मनोविज्ञान में प्रकार्यात्मक सम्बन्ध के वर्णनात्मक प्रेक्षण पर जरुरत से ज्यादा बल डाला है तथा उसके सैद्धान्तिक पहलू की अपेक्षा किया है।
3. कुछ आलोचकों का मत है कि स्कीनर द्वारा प्रतिपादित रिक्त प्राणी का संप्रत्यय सही नहीं है और न ही उनका यह निवेदन ही। आलोचकों के अनुसार स्कीनर ने जान बूझकर प्राणी या दैहिक नियमों के संदर्भ से बचने का प्रयास किया है। आलोचकों का मत है कि ऐसा करने में स्कीनर ने बहुत सारे जैविक अवस्थाओं जैसे-थकान, ग्रन्थीय असंतुलन जो महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक व्याख्या के लिए उत्तम आधार प्रदान कर सकते हैं, की उपेक्षा की है।
4. चौमस्की ने शाब्दिक व्यवहार के अपर्याप्त विश्लेषण तथा संस्कृति के अध्ययन के लिए स्कीनर ने प्रस्तावित डिजाइन की आलोचना की है।

7.13 सारांश

वुडवर्थ के गत्यातत्मक मनोविज्ञान चेतना तथा व्यवहार के अध्ययन का विज्ञान है। इस तरह से उन्होनें व्यवहारवाद तथा सरंचनात्मक के बीच उत्पन्न खाई को पाटने का काम किया है। वुडवर्थ के मनोविज्ञान में प्रक्रम तथा प्रणोद को अधिक महत्व दिया गया है।

पावलव का विचार था कि जीव सदा जगत में सन्तुलन बनाये रखता है। भौतिक जगत के उद्दीपकों के सामंजस्य चाहे आन्तरिक हों या बाह्य दोनों ही होते रहते हैं। आन्तरिक सामंजस्य मस्तिष्क का संयोजन व बाह्य जीव व्यवहार द्वारा होते हैं। इस प्रकार उद्दीपक व व्यवहार में सदा अस्थिर संयोजन स्थापित होते ही रहते हैं। उसके सिद्धान्त में सामंजस्य का महत्व है।

बोध प्रश्न

1- वुडवर्थ का गत्यात्मक मनोविज्ञान किसके अध्यन का विज्ञान है?
2- वुडवर्थ के मनोविज्ञान में किसको अधिक महत्व दिया गया है?
3- युंग ने अपने सम्प्रदाय का क्या है?
4- पावलॉव के सिद्धान्त की कितनी विशेषताए थी।

7.14 अभ्यास प्रश्न

1- मनोविज्ञान में स्किनर के योगदानों को बताइये।

2- पावलॉव व स्किनर के अनुकूलन में भिन्नताओं को भली-भांति समझाइये।

3- वुडवर्थ के गत्यात्मक मनोविज्ञान को समझाइये।

4- एडलर व युग के सिद्धान्त को तुलना कीजिए।

5- योगदान मनोविज्ञान में हार्नी के योगदान को बताइये।

6- मनोविश्लेषण तथा नव मनोविश्लेषणों में अन्तर लिखिए।

7.15 संदर्भ ग्रंथ

- डॉ, शर्मा, के.एन. (2002), मनोवैज्ञानिक विचारधाराएँ, एच.पी. भार्गव, बुक हाउस, आगरा
- डॉ. सिंह, अरूण कुमार, सिंह आशीष कुमार, मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, प्रकाशक, दिल्ली
- डॉ. शर्मा रामनाथ (2002), मनोविज्ञान का इतिहास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल अस्पताल रोड़, आगरा - 3
- अशरफ अज़ीमुर्रहमान एवं जावेद (1994) मनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, प्रकाशक दिल्ली।

इकाई - 8

मानवतावादी एवं अस्तित्ववादी मनोविज्ञान, क्षेत्र मनोविज्ञान (लेविन)

(Humanstic and Existential Psychology, Field Theory (Lewin))

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 मानवतावादी मनोविज्ञान का अर्थ

8.3 मानवतावादी मनोविज्ञान की मुख्य विशेषताएँ

8.4 मानवतावादी मनोविज्ञान की आलोचनाएँ

8.5 अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का अर्थ

8.6 अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का मूल सिद्धान्त

8.7 अस्तित्ववादी मनोविज्ञान की आलोचना

8.8 मानवतावादी मनोविज्ञान एवं अस्तित्ववादी मनोविज्ञान में समानता

8.9 मानवतावादी मनोविज्ञान एवं अस्तित्ववादी मनोविज्ञान में असमानता

8.10 क्षेत्र मनोविज्ञान का अर्थ

8.11 आलोचना

8.12 सारांश

8.13 निबंधात्मक प्रश्न

8.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी -

- मानवतावादी मनोविज्ञान का अर्थ एवं विशेषताओं को जान सकेंगे।
- मानवतावादी मनोविज्ञान की उत्पति के बारे में जान सकेंगे।
- मानवतावादी वैज्ञानिकों के योगदान को जान सकेंगे।

- अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का अर्थ समझ सकेंगे।
- अस्तित्ववादी मनोविज्ञान की उत्पत्ति का कारण जान सकेंगे।
- अस्तितवादी मनोविज्ञान में वैज्ञानिकों के योगदान को जान सकेंगे।
- मानवतावादी व अस्तित्ववादी मनोविज्ञान से तुलना कर सकेंगे।
- क्षेत्र मनोविज्ञान के बारे में जान सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

मानवतावादी मनोविज्ञान पद का प्रतिपादन अब्राहम मेसलों के नेतृत्व में मनोवैज्ञानिकों के एक समूह द्वारा 1962 में किया गया। इसे मनोविज्ञान का तीसरा बल कहा जाता है।

मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्यों की प्रकृति आदरणीय एवं आत्म सिद्ध से युक्त होती है। अगर पर्यावरणीय अवस्थाएँ अनुकूल होती है तो व्यक्ति को अपने भीतर छिपे अन्त:शक्ति एवं क्षमताओं की पहचान करने का पर्याप्त मौका मिलता है। इस तरह मानवतावादी मनोविज्ञान एक तरफ मनोविश्लेषण में मानव के बारे में निराशावादी एवं संघर्ष आधारित विचारों का तथा दूसरी तरफ व्यवहारवादी यांत्रिक मनुष्य के संप्रत्यय का विरोध करते हुए सर्जनात्मक एवं स्वस्थ अन्त:शक्ति के निष्कर्ष पर बल डालता है।

8.2 मानवतावादी मनोविज्ञान

मनोविज्ञान में प्रचलित दो प्रमुख बलों अर्थात मनोविश्लेषण जिसे 'प्रथम बल' तथा व्यवहारवाद जिसे 'दूसरा बल' कहा जाता है, के विकल्प के रूप में मेसलों एक महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक मनोविज्ञान का प्रतिपादन करना चाहते थे। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने मानवतावादी मनोविज्ञान का प्रतिपादन किया जिसे सामान्यत: मनोविज्ञान का 'तीसरा बल' कहा जाता है। मानवतावादी मनोविज्ञान का कोई सम्प्रदाय नहीं है बल्कि विभिन्न स्कूलों के विभिन्न विचारों का एक नया समन्वित प्रारूप है।

मानवतावादी मनोविज्ञान मानव प्रकृति के बारे मूलत: एक भिन्न तस्वीर प्रस्तुत की है। मैसलो जिन्हें अमेरिका में मानवतावादी का आध्यात्मिक जनक माना जाता है, के अनुसार मनुष्यों की प्रकृति आदरणीय एवं आत्म-सिद्धि से युक्त होती है। अगर पर्यावरणीय अवस्थाएँ अनुकूल होती हैं, तो व्यक्ति को अपने भीतर छिपी अन्त:शक्ति एवं क्षमताओं की पहचान करने का पर्याप्त मौका मिलता है। इस तरह मानवतावादी मनोविज्ञान एक तरफ मनोविश्लेषण में मानव के बारे में निराशावादी एवं संघर्ष आधारित विचारों का तथा दूसरी तरफ व्यवहारवाद का यांत्रिक मनुष्य के संप्रत्यय का विरोध करते हुए मनुष्यों के सर्जनात्मक एवं स्वस्थ अन्त:शक्ति के विकास पर बल डालता है।

8.3 मानवतावादी मनोविज्ञान की मुख्य विशेषताएँ

1- एक समग्रता के रूप में व्यक्ति - मानवतावादी मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को एक संगठित एवं समन्वित समग्रता के रूप में अध्ययन करना होता है।

2- पूरे जीवन इतिहास पर बल - मानवतावादी मनोविज्ञान के सम्बंध व्यक्ति के पूरे जीवन के इतिहास के बारे में ज्ञान प्राप्त करना होता है। व्यक्ति को एक संगठित समग्रता के रूप में समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसके जीवन के पूरे इतिहास पर ध्यान दिया जाए।

3- जीवन लक्ष्य के रूप में आत्म-सिद्धि -मानवतावादी मनोविज्ञान का सम्बंध जैविक आवश्यकताओं तथा मूल प्रवृत्ति की तूष्टि से सिर्फ नहीं है बल्कि आत्म-सिद्धि के संप्रत्यय को युग (Jung) ने पहली बार प्रतिपादित किया जो आगे चलकर मैसलो तथा रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्तों का महत्वपूर्ण अंश बन गया।

4- व्यक्ति की आन्तरिक प्रकृति - फ्रायड ने मानव प्रकृति को पाशविक बतलाया था जिसे अनियंत्रित छोड़ देने पर मानव अपने आप को तथा दूसरों को बर्बाद कर सकता है।

5- पशु शोधों पर कम बल दिया जाना -मानवतावादी मनोविज्ञान में पशु शोधों पर कम बल डाला गया है। इन लोगों द्वारा पशु शोधों को अयथार्थ बतलाया गया है क्योंकि इसमें मनुष्यों की मौलिक विशेषताओं जैसे - मूल्य, कला, आदर्श, हास्य आदि की घोर उपेक्षा होती है।

6- सर्जनात्मक अन्त:शक्ति - मानवतावादी मनोविज्ञानियों द्वारा सर्जनात्मकता को मानव प्रवृत्ति का एक उभयनिष्ठ विशेषता माना गया है।

7- मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य पर बल -मानवतावादी मनोविज्ञान पौराणिक फ्रायडियन मनोविश्लेषण की कटु आलोचना यह कहते हुए करता है कि यह एक तरफा है क्योंकि वह मानव व्यवहार के मात्र असामान्य पहलू पर आधारित है।

कार्ल रोजर्स का योगदान

कार्ल रोजर्स का जन्म 1902 में इलिनोइस, संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ था। इनके महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है - कॉउंसिलिंगएण्ड साइकोथेरेपी तथा क्लायंट सेन्ट्रर्ड थेरेपी विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

रोजर्स द्वारा प्रतिपादित आत्मन्-सिद्धान्त का आधार क्लायंट केन्द्रित मनोचिकित्सक के रूप में प्राप्त उनके निजी अनुभव थे। उनके उपचार की विधि को क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा कहा गया है। इस विधि में रोगी जिसे क्लायंट कहा जाता है, चिकित्सक चिकित्सा के दौरान रोगी के साथ इस तरह से अन्त:क्रिया करता है कि रोगी धीरे-धीरे अपने मानसिक संघर्ष, इच्छाएँ एवं बलों से अवगत होने लगता है। इस विधि में चिकित्सक की भूमिका इस अर्थ में निष्क्रिय होती है कि वह कभी भी प्रत्यक्ष रूप से रोगी को कोई सलाह अपनी और से नहीं देता है, जैसी कि फ्रायडियन मन:चिकित्सा में दी जाती है। इस तरह के चिकित्सीय अनुभवों के आधार पर उन्होंने आत्मन् सिद्धान्त का विकास किया जिसे व्यक्ति केन्द्रित सिद्धान्त भी कहा जाता है। यह एक सम्पूर्णवादी सिद्धान्त है। इसलिए इसे सिर्फ स्वेच्छा से छौटे-छौटे उप खण्डों में बांटा जा सकता है। इस सिद्धान्त के मौलिक तथ्यों की व्याख्या निम्नलिखित मुख्य चार संप्रत्ययों के रूप में की जा सकती है -

1- जीव या प्राणी - रोजर्स के अनुसार प्राणी से तात्पर्य उन अनुभूतियों की सम्पूर्णता से होता है जो किसी विशेष क्षण पूरे व्यक्ति में होते रहते है। इस तरह से प्राणी को उन सभी तरह की अनुभूतियों का केन्द्र माना जाता है जो हमारे शरीर के भीतर होने वाली घटनाओं के प्रत्यक्षण से लेकर बाह्य वातावरण की घटनाओं के प्रत्यक्षण तक परिवर्तित होते रहते है।

2- आत्मन् - रोजर्स के लिये आत्मन् से तात्पर्य अनुभूतियों की सम्पूर्ण से होती है। इस तरह की सम्पूर्णता में चेतन तथा अचेतन दोनों तरह की अनुभूतियाँ सम्मिलित होती है। अनुभूतियों के इस सम्पूर्ण योग को प्रत्यक्षणात्मक क्षेत्र या प्रतिभासिक क्षेत्र कहा जाता है।

इसी प्रत्यक्षणात्मक क्षेत्र से धीरे-धीरे आत्मन् की उत्पति होती है। शैशवावस्था में जब प्रत्यक्षणात्मक क्षेत्र का एक हिस्सा 'मैं' या 'मुझे' के रूप में व्यक्तिकृत या विभेदित होता है, तो आत्मन् का निर्माण या उत्पत्ति हुआ समझा जाता है। रोजर्स के लिए आत्मन् व्यक्ति की एक अलग विमा नहीं है जैसा कि फ्रायड के लिए अहं तथा युग के लिए आत्मन् है। रोजर्स का मत है कि किसी व्यक्ति में आत्मन् नहीं होता है बल्कि आत्मन् में ही सम्पूर्ण प्राणी या जीव सम्मिलित होता हैं।

3- प्राणी तथा आत्मन् में सम्बंध - आत्मन् की उत्पत्ति प्राणी की अनुभूतियों से होती है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में वैसी अनुभूतियाँ जिससे आत्मन् का निर्माण होता है, प्राणी की अनुभूतियों के अनुकूल होती है। अगर, इन दोनों तरह की अनुभूतियों में ताल-मेल या संगठन नहीं होती है, दुश्चिंता उत्पन्न होती है तथा व्यक्ति का व्यवहार रक्षात्मक में व्यक्ति अपनी अनुभूतियों की व्याख्या गलत करता है ताकि यह आत्म संप्रत्यय के विभिन्न पहलुओं के साथ ठीक बैठ सके। रोजर्स ने यह भी सुझाव दिया है कि आत्म संप्रत्यय तथा आदर्शवादी आत्मन् का सक्रियात्मक रूप से क्यू-सार्ट तथा विषय -विश्लेषण द्वारा मापन किया जा सकता है।

4- आत्म-सिद्धि - आत्म सिद्धि एक सामान्य संप्रत्यय है। रोजर्स का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति में अपने अनोखे अन्त:शक्ति की पहचान की जन्मजात प्रवृत्ति होती है। इनका मत है कि आत्म-सिद्धि एक ऐसा वर्द्धन बल है जो व्यक्ति की आनुवंशिकता का एक हिस्सा होता है। इसमें न केवल जैविक अन्त:शक्ति निहित होता है बल्कि इसमें मनोवैज्ञानिक वर्द्धन तथा संपोषण एवं उन्नति की प्रवृत्ति भी सम्मिलित होती है। रोजर्स के अनुसार आत्म-सिद्धि की कई विशेषताएँ है -

I. आत्म-सिद्धि धीरे-धीरे सरलता से जटिलता की स्थिति में विकसित होते जाती है। जेसे-जैसे व्यक्ति की अनुभूतियाँ मजबूत होते जाती है उसका आत्मन अधिक पुष्ट एवं सिद्ध होते जाता है और इनसे अन्ततोगत्वा सर्जनात्मकता का विकास होता है।

II. आत्म सिद्धि एक गत्यात्मक बल है। वैसे व्यक्ति जिसमें आत्म-सिद्धि पर्याप्त मात्रा में होती है, में हमेशा आगे बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। ऐसे व्यक्ति जिन्दगी के किसी मोड़ पर रूकना नहीं चाहते है। रोजर्स ने दो मौलिक आवश्यकताओं का वर्णन किया हैं जो आत्म सिद्धि से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती हैं ये आवश्यकताएँ हैं - दूसरों के लिए स्वीकारात्मक स्नेह तथा आत्म सम्मान की आवश्यकता। ये दोनों आवश्यकताओं को प्राणी बचपनावस्था में माँ के स्नेह एवं प्यार से सीख लेता है।

रोजर्स के आत्मन् सिद्धान्त की आलोचना की गयी है। ऐसा कहा जाता है कि उसके सिद्धान्त में अचेतन को महत्व नहीं दिया गया है जो मानव व्यवहार को नियंत्रित करने में एक अहम

भूमिका निभाता है। स्मिथ ने यह बतलाया है कि रोजर्स का यह सिद्धान्त बिल्कुल नये ढंग की घटना क्रिया विज्ञान पर आधारित है।

एब्राहम मैसलो का योगदान

एब्राहम मैसलो का जन्म एक अप्रेल 1908 को न्यूयार्क, संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ और उन्होने सभी शैक्षिक उपाधियाँ विसकोनसिन विश्वविद्यालय से प्राप्त की। इनके तीन उल्लेखनीय प्रकाशन है - मोटीवेसन एण्ड पर्सनलिटी, टूवर्ड ए साइकोलॉली ऑफ बिइंग तथा दी फर्दर रिसर्चेज ऑफ ह्यूमन नेचर। 8 जून 1970 को हृदय रोग के कारण उनकी मृत्यु हो गयी।

मेसलो को मानवतावादी मनोविज्ञान का आध्यात्मिक जनक माना गया है। रोजर्स के समान वे मानव प्रकृति के बारे में आशावादी विचार रखते थे। इनका मत था कि प्रत्येक व्यक्ति में उदारता, स्नेह तथा दयालुता की जन्मजात क्षमता तथा अन्त:शक्ति होता है। यदि उसे अनुकूल सामाजिक वातावरण मिलता है, तो ऐसी क्षमताएं एवं अन्त:शक्तियाँ प्रस्फूटित होती है। परन्तु यदि उसे इस तरह का अनुकूल सामाजिक वातावरण नहीं होता है तो ऐसी अन्त:शक्तियों तथा क्षमताओं का दमन होता है।

मैसलो का मत है कि मानव अभिप्रेरक जन्मजात होते है तथा वे प्राथमिकता या सामर्थ्यता के अनुक्रम में सुव्यवस्थित होते है। अभिप्रेरण के बारे में उनके विचार निम्नलिखित है -

1. अभिप्रेरण के प्रति मैसलो का दृष्टिकोण सम्पूर्णवादी था। इसका मतलब यह हुआ कि उनके लिए सम्पूर्ण व्यक्ति न कि उसका कोई विशेष भाग या अंश किसी लक्ष्य की प्राप्ति की और अभिप्रेरित होता हैं अगर व्यक्ति सम्पूर्ण व्यक्ति के अभिप्रेरण को अलग कर अध्ययन करना चाहे, तो यह अयथार्थ एवं भ्रामक होगा।
2. प्राणी हमेशा एक न एक आवश्यकता से सतत अभिप्रेरित रहता है। अगर व्यक्ति की एक आवश्यकता तुष्टि हो जाती है, दूसरी आवश्यकता अपने आप तुरंत उत्पन्न हो जाती है तथा व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करता है।
3. अभिप्रेरण प्राय: जटिल होता है तथा इस जटिलता का कारण प्रणोद का अचेतन तत्व होता है।
4. विभिन्न संस्कृति के लोग के उन तरीकों में अन्तर होता है जिसके माध्यम से वे अपनी दैहिक आवश्यकताएँ जैसे - भोजन, पानी आदि की आवश्यकता की अभिव्यक्ति करते हैं।
5. व्यक्ति की विभिन्न आवश्यकताओं को प्राथमिकता या सामथ्र्यता के रूप में सुव्यवस्थित किया जा सकता है।

मैसलो द्वारा आवश्यकता के अनुक्रमिक विचारधारा में पांच आवश्यकताओं की पहचान की गयी है। जो प्राथमिकता के क्रम में इस प्रकार है - दैहिक आवश्यकता, सुरक्षा आवश्यकता, स्नेह एवं सदस्यता की आवश्यकता, सम्मान की आवयकता तथा आत्मसिद्धि की आवश्यकता। इन्होंने इन पांच तरह की आवश्यकताओं को दो मुख्य श्रेणियों में बांटा है। निम्न स्तरीय आवश्यकता तथा उच्च स्तरीय आवश्यकता । निम्नस्तरीय आवश्यकता में दैहिक आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता सम्मिलित है तथा उच्च स्तरीय की श्रेणी में स्नेह एवं सदस्यता की आवश्यकता, सममान की

आवश्यकता तथा आत्म-सिद्धि की आवश्यकता सम्मिलित होते है। इन पांच तरह की आवश्यकताओं का वर्णन निम्नां कित है -

1. दैहिक आवश्यकता - दैहिक आवश्यकता उन मौलिक आवश्यकताओं को कहा जाता है जिसमें भोजन, जल, ऑक्सीजन, तापक्रम, यौन आदि की जरूरतें सम्मिलित होती है। ये आवश्यकताएँ सबसे अधिक महत्त्व की होती है। इन आवश्यकताओं की तुष्टि नहीं होती, तो कोई अन्य उच्च स्तरीय आवश्यकता की उत्पति नहीं हो सकती है।

2. सुरक्षा आवश्यकता - सुरक्षा आवश्यकता में दैहिक सुरक्षा की आवश्यकता, चिन्ता, खतरा तथा अस्त-व्यस्त से मुक्ति आदि की आवश्यकता सम्मिलित होती है। एक स्वस्थ व्यस्क के लिए सुरक्षा आवश्यकता बहुत उपयुक्त अभिप्रेरक नहीं होता है। परन्तु बच्चे के लिए सुरक्षा आवश्यकता प्रमुख अभिप्रेरक होते है। परन्तु आपातकालीन परिस्थितियों जैसे - युद्ध, दुर्घटना, आगजनी आदि के दौरान सुरक्षा आवश्यकता मुख्य अभिप्रेरक के रूप में कार्य करते है।

3. स्नेह एवं सदस्यता की आवश्यकता - जब व्यक्ति की दैहिक आवश्यकता एवं सुरक्षा की आवश्यकता की तुष्टि हो जाती है, तो उनका व्यवहार स्नेह एवं सदस्यता की आवश्यकता द्वारा तुष्टि होने लगता है। इस श्रेणी की आवश्यकता में दोस्ती की आवश्यकता, समूह के सदस्यता की आवश्यकता, अपने परिवार के व्यक्तियों के स्नेह देने की आवश्यकता आदि सम्मिलित होती है।

4. सम्मान की आवश्यकता - आत्मसम्मान की आवश्यकता की तुष्टि होने से व्यक्ति में आत्म-विश्वास, शक्ति, योग्यता आदि की भावना उत्पन्न होती है और यदि इस आवश्यकता की तुष्टि किसी कारण से नहीं होती है तो इससे व्यक्ति में हीनता या कमजोर होने आदि का भाव उत्पन्न होता है।

5. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता - आत्म-सिद्धि से तात्पर्य आत्म-पूर्ति की आयश्कता, अपनी अन्त:शक्तियों केा अनुभव करने या उसका ज्ञान होने से तथा सही अर्थ में सर्जनात्मक बनने में होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आत्म-सिद्धि की आवश्यकता से तात्प्र्य अपनी अन्त:शक्ति के शिखर पर पहुंचने से होता है ताकि वह पूर्ण रूप से एक कार्य सम्पन्न व्यक्ति बन सके।

   मैसलो ने यह बतलाया है कि मात्र 10 प्रतिशत लोग ही आत्म सिद्धि की आवश्यकता के स्तर तक पहुँच पाते है। इन्होंने उन व्यक्तियों की जिनमें आत्म-सिद्धि की आवश्यकता होती है, की कुछ विशेषताएँ बतलाया है। इसमें निम्नां कित प्रमुख है -

   1. ऐसे व्यक्तियों में वास्तविकता का प्रत्यक्षण अधिक मजबूत होता है। ऐसे लोगों में किसी तरह का पूर्वाग्रह नहीं होता है। फलस्वरूप इससे वास्तविकता के प्रत्यक्षण में विकृति नहीं आती है।

   2. ऐसे व्यक्ति अपने आत्मन् को पूर्णत: समझते है तथा इनमें रक्षात्मक व्यवहार कम होते हैं। इनमें आत्म-पराजित दोष भाव भी नहीं होते है।

   3. ऐसे लोगों की प्रकृति न तो रूढ़ीवादी होती है और न कृत्रिम होती है। अत: ऐसे लोगों में स्वाभाविकता, सहजता तथा स्वत: प्रवृत्ति का गुण होता है।

4. इन लोगों की अभिरूचि बाहरी समस्याओं में अधिक होता है। ऐसे लोग कुछ स्पष्ट उद्देश्य बनाकर काम करते है।
5. इन लोगों में स्वायत्तता तथा गोपनीयता का गुण होता है। इन लोगों में निर्लिप्तता या तटस्थता का भी गुण होता है। ऐसे लोग कई लोगों के बीच में होकर भी एकांतवासी हो सकते है।
6. ऐसे लोग में प्रशसा की उत्तम भाव सतत होती है। ऐसे लोग अपने उत्त्ाम भाग्य एवं स्वास्थ्य से हेमशा अवगत होते है।
7. ऐसे लोगों में पूर्ण परिशुद्धता की भावना होती है।

मैसलो ने यह स्पष्ट कर दिया है कि आत्म-सिद्धि की अवस्था सम्पूर्ण या कुछ नहीं की प्रक्रिया नहीं होती है बल्कि इस अवस्था में भी मात्राएँ होती है। कोई भी मानव पूर्णत: आत्म-सिद्ध लोगों में भी कुछ कमजोरियाँ, सांवेगिक असंगतताएँ आदि होती है।

यद्यपि मेसलों का योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है फिर भी इनकी कुछ हल्की-फुल्की आलोचनाएँ की गयी है। आलोचकों का मत है कि उनके द्वारा बतलायी गई आवश्यकताओं की विभिन्न श्रेणियाँ एक-दूसरे से स्वतंत्र न होकर एक-दूसरे पर परस्पर आच्छादित है। आलोचकों का मत है कि व्यक्ति एक समय से एक से अधिक आवश्यकताओं से भी प्रेरित हो सकता है जबकि मैसलो का मत था कि एक समय में एक ही श्रेणी की आवश्यकता से व्यक्ति का व्यवहार प्रेरित हो सकता है।

8.4 मानवतावादी मनोविज्ञान की आलोचनाएँ

1- कुछ व्यवहारवादियों जैसे -स्कीनर ने यह बतलाया है कि मानवतावादी मनोविज्ञान काफी आत्मनिष्ठ द्वैतवादी प्रकृति का है। इन आलोचकों का मत है कि मानवतावादी मनोविज्ञान काफी आत्मनिष्ठ तथा द्वैतवादी प्रकृति का है। इन आलोचकों का मत है कि मानवतावादी मनोविज्ञान के विचारधाराओं में आनुभाविक वैधता की कमी है। इनका अध्ययन विधि अर्न्तनिरीक्षण है जो निश्चित रूप से अवैज्ञानिक एवं अविश्वसनीय है।

2- कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि मानवतावादी मनोविज्ञान ने मनोविज्ञान को वैज्ञानिकता के स्तर से काफी पीछे ढकेलकर विभिन्न तरह के धार्मिक एवं आध्यात्मिक विश्वासों में जकड़ दिया है जहां प्रत्येक वस्तु को विश्वास पर समझा जा सकता है। सचमुच में ऐसा मनोविज्ञान मनोविज्ञान को प्रयोगातम्क मनोविज्ञनिकों के वस्तुनिष्ठ प्रयासों से दूर करने की कोशिश करता है।

बोध प्रश्न

1 मेंसलों ने सत्व व्यक्ति के कितने गुण बताये है।

2 मानवतावादी मनोविज्ञान के जन्मदाता कौन थे।

8.5 अस्तित्ववादी मनोविज्ञान

अस्तित्ववादी मनोविज्ञानीयों का यह मत है कि व्यक्ति की मौलिक प्रकृति मानवीय होता है जिसकी मशीन से तुलना नहीं कि जा सकती है। अस्तित्ववादी मनोविज्ञान सम्पूर्ण व्यक्ति का जैसा कि वह अपने अस्तित्ववादी वास्तविकता में होता है, का अध्ययन करता है और इस ख्याल से

अस्तित्ववादी वास्तविकता में होता है, का अध्ययन करता है और इस ख्याल से अस्तित्ववादी मनोविज्ञान मानवतावादी मनोविज्ञान के करीब आ जाता है। शायद यही कारण है कि मनोविज्ञान के 'तृतीय बल' में मानवतावादी मनाविज्ञान के साथ ही साथ अस्तित्ववादी मनोविज्ञान भी सम्मिलित हो जाता है।

8.6 अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का मूल सिद्धान्त

अस्तित्ववादी मनोविज्ञान व्यवहारवादी मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित इस विचारधारा का विरोध करता है जिसमें मानव प्रकृति को समझने के लिए पशुओं के प्रयोगों पर अधिक बल डाला गया था। अस्तित्ववादी मनोविज्ञानियों द्वारा मनुष्यों की प्रकृति को समझने के लिए 'एक नया दृष्टिकोण' अपनाया गया। इन लोगों का मत है कि आधुनिक समय में मनोविज्ञान मानव प्रकृति की सम्पूर्णता को सही-सही ढंग से समझने में विफल रहा है। इससे सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण विचार का सिद्धान्त निम्नांकित है -

1- अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का उद्देश्य मनुष्य को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में अध्ययन करना होगा है जो संसार में एक जीवित प्राणी के रूप् में अपना अस्तित्व बनाये रखने में सक्षम होता है।

2- प्रत्येक व्यक्ति को आन्तरिक जिन्दगी अनोखा होता है जिसमें भिन्न-भिन्न तरह के प्रत्यक्षण होते हैं तथा बाह्य वातावरण के मूल्यांकन की भिन्न-भिन्न क्षमताएँ भी होती है।

3- अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का उद्देश्य व्यक्ति को उसके सम्पूर्ण अस्तित्ववादी वास्तविकता के संदर्भ में समझना है। यह प्रत्येक व्यक्ति की समस्याओं को उसका अस्तित्ववादी वास्तविकता के संदर्भ में अध्ययन करना है न कि उसे बारे में एक औसत सामान्यीकरण करता है।

4- अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का समबंध व्यक्ति के चेतन, भाव, मनोदशा तथा उसके वैयक्तिक अनुभूति जैसा कि वे उसके अस्तित्ववादी दुनिया जिसमें अन्य लोग होते हैं,से होता है।

5- अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का सबसे प्रमुख कार्य-क्षेत्र व्यक्तित्व, मनोचिकित्सा तथा परामर्श रहा है।

6- अस्तित्ववादी मनोविज्ञान बाह्य निर्धार्यता को पूर्णत: अस्वीकृत करता है। इस मनोविज्ञान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए स्वयं जवाबदेह होता है। वह अपने अस्तित्ववादी विचारों का मालिक स्वयं होता है। उस पर कोई बाह्य वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

7- मानवतावादी मनोविज्ञान के समान अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का स्वरूप प्रयोगात्मक नहीं होता है। इसके विश्लेषण की विधि घटना-क्रिया प्रधान होता है जिसके चेतन के स्वरूप, अनुभूतियाँ तथा आत्मनिष्ठ वास्तविकता का विश्लेषण पर अधिक जोर दिया जाता है। इस विधि में उन सभी चीजों का वर्णन किया जाता है जिसे व्यक्ति अनुभव करता है या कल्पना करता है।

लुडविग विन्सवैनगर का योगदान

विन्सवैनगर एक स्वीस मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का समर्थन दिया। इनका अमेरिकन मनोविज्ञान पर भी काफी प्रभाव था। इनका मौलिक प्रशिक्षण तो मेडिसिन में हुआ था लेकिन उन्होने अपने अस्तितववादी विचार को मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी उपयोग किया। इनकी महत्वपूर्ण पुस्तकों में 'विइंग इन-दी-वल्ड' तथा 'सेलेक्टेड पेपर्स बाई लुडविग विन्सवैनगर' महत्वपूर्ण है। उन्होंने एक्जीसटेंस जिसे रौलो में ने संपादित किया था, मे भी तीन महत्पूर्ण अध्याय लिखकर अपना योगदान दिया।

'विइंग-इन-दी-वल्ड' अर्थात् 'डेजिन' को मनोविज्ञान के लिए उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान माना गया हैं। इस संप्रत्यय के सहारे उन्होनें यह विचार व्यक्त करने की कोशिश किया है कि एक मानव के रूप में व्यक्ति का अस्तित्व संसार से अलग नहीं होता है और संसार का अस्तितव भी व्यक्ति से अलग हटकर कुछ नहीं होता है।

1- व्यक्ति तरीका - इसमें व्यक्ति अकेला रहना पसंद करता है तथा वह किसी भी तरह का अन्त:क्रिया दूसरों के साथ नहीं करता है।

2- द्वैध तरीका - इस तरीका में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ अन्त:क्रिया करता है। इसे विन्सवैगनर ने मानव अस्तित्व का सबसे मौलिक एवं महत्वपूर्ण तरीका बतलाया है। इससे व्यक्ति में दोस्ताना सम्बंध विकसित होता है।

3- अनेकावादी तरीका - इसमें व्यक्ति वातावरण य संसार के कई व्यक्तियों के साथ अन्त:क्रिया करता है। प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, प्रयास आदि इस तरीका का ही परिणाम है।

4- गुमनामी तरीका - इस तरीका में व्यक्ति का अपना चिन्तन या विचार थोड़ी देर के लिए समाप्त हो जाता है और भीड में एक तरह से वह खो जाता है।

विन्सवैनगर ने नियतिवाद, पदार्थवाद तथा निश्चयात्मकता या प्रत्यक्षवाद को स्वीकृत कर दिया। नियतिवाद के अस्तित्व का महत्वपूर्ण आशय यह था कि वह मनुष्यों को न तो आनुवांशिकता का और नही पर्यावरण का प्रतिफल मानते हैं उनका मत था कि व्यक्ति को चयन ही पूर्ण स्वतंत्रता होती है। अत: यह क्या करेगा नहीं, इसके लिए वह स्वयं ही उत्तरदायी होता है। यद्यपि विन्सवैनगर ने व्यक्ति के अस्तित्व की व्याख्या के लिए आनुवंशिकता तथा पर्यावरण के महत्व को अस्वीकृत किया है, फिर भी वे वर्द्धन के संप्रत्यय को महत्वपूर्ण माने है। विन्सवैनगर के इस संप्रत्यय अर्थात् 'वर्द्धन' के संप्रत्यय का अधिक सराहा है।

मेडार्ड बॉस का योगदान

बॉस भी एक स्वीस मनोवैज्ञानिक है जिन्होंने मेडीसीन में उपाधि प्राप्त की है। मनोविज्ञान तथा मनोचिकित्सा के बारे में इन्होंने महत्त्वपूर्ण अस्तित्ववादी विचार व्यक्त किया हैं। उनके कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों को अंग्रेजी अनुवाद भी हुआ है जिसमें 'साइकोएनालिसिस' 'डेजिएनालिसिस'तथा 'एक्सिटेसिंयल फाउन्डेशन ऑफ मेडिसीन एण्ड साइकोलॉजी' प्रमुख हैं

विन्सवैनगर के समान बॉस अस्तित्व के तरीका, विइंग-इन-दी वल्ड आदि के बारे में कुछ नहीं कहा हैं, बल्कि उन्होने प्रत्येक मानव के अस्तित्व में व्याप्त कुछ विशेषताओं को उजागर किया हैं। इन विशेषताओं को उन्होंने 'ऐसेंसियल्स' कहा है। ये विशेषताए निम्नलिखित है -

1- स्थानिकता - स्थानिकता से तात्पर्य मनोवैज्ञानिक निकटता या दूरी से है। एक व्यक्ति अपने माता-पिता से हजारों किलोमीटर दूर रहने पर भी मनोवैज्ञानिक रूप से नजदीक हो सकता है।

2- अल्पकालिकता - अस्तित्व के अल्पकालिकता से तात्पर्य इस बात से होता है कि व्यक्ति को कोई कार्य करने का समय पर्याप्त होता है या नहीं होता है।

3- शारीरिकता - शारीरिकता से तात्पर्य सिर्फ दैहिक मानव शरीर से नहीं होता है बल्कि संसार से व्यक्ति के सम्बंधों से भी होता है।

4- हिस्सेदारी - अस्तित्व के हिस्सेदारी से तात्पर्य संसार के अन्य लोगों के साथ भावनाओं एवं इच्छाओं के आदान-प्रदान से होता है।

5- मनोदशा या मेल-मिलाप - अस्तित्व के मनोदशा से तात्पर्य इस बात से होता है कि जिस ढंग से व्यक्ति दनिया का प्रत्यक्षण करता है, वह बहुत कुछ उस क्षण के उसके मनोदशा पर आधारित होती है।

अन्य अस्तित्ववादी मनोविज्ञानियों के समान बॉस अस्तित्व की स्वतंत्रता को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है तथा नियतिवाद को अस्वीकृत कर दिया हैं। उनका मत था कि व्यक्ति सत्य और असत्य अस्तित्व में से किसी एक को चुनने के लिए पूर्णत स्वतंत्र होता हैं। इन दोनों के बीच चयन करने के लिए उसे अपनी अन्त:शक्तियों की पूर्ण पहचान होनी चाहिए। वे विन्सवैनगर के समान वर्द्धन के संप्रत्यय को महत्वपूर्ण मानते थे। उनका मत था कि कुछ नये रूप से वद्धिर्त होने की सतत प्रक्रिया अस्तितव का दूसरा नाम है। जब व्यक्ति अपनी अन्त:शक्ति के मांगों को पूरा करने में समर्थ हो जाता है, तो इसका मतलब यह हुआ कि वह अपने अस्तित्व की सम्भावनाओं को समझने में सक्षम हो पाता है।

बॉस के लिए 'विइंग-इन-दी-वल्ड' एक महत्वपूर्ण प्रकार का स्वप्न होता है। स्वप्न में जागृतावस्था के अस्तित्व के तरीकों की नकल कि जाती है। कुछ हालातों में स्वप्न से व्यक्ति के जागृतावस्था को नये ढंग से समझने में मदद मिलती है। बॉस ने स्वप्न को कोई गुप्त या छिपा हुआ प्रारूप नहीं माना है बल्कि इसके द्वारा अस्तित्व की दूसरी अभिव्यक्ति होती है। मनोचिकित्सा के दौरान बॉस ने रोगियों के 823 स्वप्नों का विश्लेषण करने के बाद पाया कि स्वप्न के विषयों में परिवर्तन का सम्बंध जागृतावस्था में हुए बदलाव या उन्नति के साथ काफी प्रत्यक्ष होता है। जागृतावस्था में जैसे उन्नति या बदलाव होते जाता है, स्वप्न के विषय भी बदलते जाते हैं।

रोलो में का योगदान

रोलो का जन्म ओहियों में 1909 में हुआ था। इन्होंने पी.एच.डी. की उपाधि कोलम्बिया विश्वविद्यालय से प्राप्त की। ये पहले अमेरिकन मनोवैज्ञानिक है जिन्होने अस्तित्ववादी मनोविज्ञान को समर्थन प्रदान किया था। इनकी पुस्तकों में तीन विशेष रूप से उल्लेखनीय है – एक्वीसेवीसटेन्शियल साइकोलॉजी, लव एण्ड विल, 'मैन्स सर्च फॉर हिमसेल्फ'।

अन्य अस्तित्ववादी मनोवैज्ञानिकों के समान रोलो मनुष्यों के अस्तित्ववादी दुनिया में बने रहने की आवश्यकता पर बल डाला है। चूँकि मनुष्य अपने वातावरण से अलग नहीं हो सकता है, इसलिए दोनों के बीच एक स्वत: सम्बंध होता है जिसमें अस्तित्व के तीन तरीका मुख्य होते हैं - भौतिक एवं दैहिक अन्य लोगों का सामाजिक वातावरण तथा उसके भीतरी स्वभाव के साथ उसका अपना

सम्बंध होता है। 'विइंग-इन-दी-वल्ड' का संप्रत्यय द्वारा इस तथ्य पर बल डाला जाता है कि व्यक्ति किस तरह के अस्तित्व को अपनायेगा, इसे चुनने का उत्तरदायित्व स्वयं व्यक्ति पर होता है और वह इस वल्ड के मांगों को पूरा करने के लिए किये जाने वाले कार्यों के लिए वह स्वयं उत्तरदायी है।

व्यक्ति को अपने अस्तित्व की समाप्ति का अंदाज होता है और इस अंदाज से उसे चिन्ता होती है। अगर कोई व्यक्ति अपने मूल अन्त:शक्ति को पूरा करने में असमर्थ रहता है तो उसमें दोष-भाव उत्पन्न होता है। रोलो ने व्यक्ति के भीतर दो तरह के संवेगों की पहचान की - चिंता एवं दोष भाव।

8.7 मानवतावादी मनोविज्ञान एवं अस्तित्ववादी मनोविज्ञान में समानता

1- दोनों ही मनोविज्ञानों में व्यक्ति की आन्तरिक संरचना, अनुभूतियाँ, प्रतिभाएँ, भाव, संज्ञानात्मक क्षमताएँ आदि के अध्ययन पर लगभग समान रूप से बल डाला जाता हैं।

2- दोनों मनोविज्ञान की विधियाँ उभयनिष्ठ है अर्थात् दोनों मनोविज्ञान द्वारा व्यक्ति के आन्तरिक संरचना का अध्ययन एवं विश्लेषण करने के लिए घटना क्रिया प्रधान विधि का उपयोग किया जाता है।

3- दोनों मनोविज्ञानों में व्यक्ति 'स्वतंत्र इच्छाओं' को महत्वपूर्ण माना गया है।

4- दोनों मनोविज्ञानों में यह मत जाहिर किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीवन शैली चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है।

5- चूँकि दोनों मनोविज्ञान में मनश्चिकित्सा पर अधिक बल डाला गया है, अत: दोनों का सम्बंध असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन से रहा है।

8.8 मानवतावादी मनोविज्ञान एवं अस्तित्ववादी मनोविज्ञान में असमानता

1- मानवतावादी मनोविज्ञान व्यक्ति की आवश्यकताओं खासकर के आत्मसिद्धि की आवश्यकता पर अधिक बल डालता है। अस्तित्ववादी मनोविज्ञान व्यक्ति के संसार में अस्तित्व रखने के रूप में उसके प्रकृति के अध्ययन पर अधिक बल डालता हैं।

2- मानवतावादी मनोविज्ञान सभी व्यक्तियों में उत्त्ाम बनने की अन्त:शक्ति होने की कल्पना करता है जो कि अस्तित्ववादी मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से अधिक आशावादी है। अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का दृष्टिकोण ठीक इसके विपरीत है निराशावादी हैं। इसमें व्यक्ति की चिन्ताओ, डर, दु:ख आदि पर तुलनात्मक रूप से अधिक बल डालता।

3- अस्तित्ववादी मनोविज्ञान में व्यक्ति के वर्तमान अस्तित्व पर या विइंग-इन-दी-वल्ड पर अधिक बल डाला गया है। इतना बल मानवतावादी मनोविज्ञान में व्यक्ति के वर्तमान अस्तित्व पर नहीं दिया गया है।

4- मानवतावादी मनोविज्ञान में आत्म-सिद्धि या आत्म-पूर्ति की प्रक्रिया को महत्त्वपूर्ण माना गया हैं जबकि अस्तित्ववादी मनोविज्ञान में व्यक्ति की जिन्दगी के आध्यात्मिक अर्थ की खोज पर अधिक बल डाला गया है।

बोध प्रश्न

1 बॉस ने मानव में कितनी विशेषताएँ बताई है।

2 विन्सवेनगर ने मानव में कितनी विशेषताएँ बताई है।

8.10 क्षेत्र मनोविज्ञान

क्षेत्र सिद्धान्त वादियों का मत है कि प्राणी का व्यवहार उन सभी कारकों द्वारा सीधे प्रभावित होता है जो उनके इर्द-गिर्द के वातावरण में मौजूद होते है।

कर्ट लेविन ने भौतिक शास्त्र के चुम्बकीय क्षेत्र का सहारा लेकर पर्यावरणीय शक्तियों को उसके द्वारा समझाना तथा व्यवहारको उनकी अन्त:क्रिया के रूप में वर्णित किया। लैविन ने व्यवहार के गत्यात्मक रूप को शक्ति चलन द्वारा समझाया। उसको समझाने के लिए कुछ गणितीय नियम जैसे सांस्थितिक विज्ञान व सदिश विश्लेषण आदि का सहारा लिया।

कर्ट लेविन के क्षेत्र मनोविज्ञान सिद्धान्त में स्थलाकृतिक मनोविज्ञान तथा संदिशात्मक मनोविज्ञान का अनोखा संगम देखने को मिलता है। उन्होंने 'स्थान विज्ञान' तथा 'वेक्टर' जैसे पदों को गणित से लिया था और उनका प्रयोग मानव व्यवहार की व्याख्या में किया। उनके योगदानों को निम्नलिखित तीन प्रमुख शीर्षकों में बांटकर अध्ययन किया गया है -

(क) लेविन का स्थलाकृतिक मनोविज्ञान

(ख) लेविन का सदिशात्मक मनोविज्ञान

(ग) समूह गतिकी

(**क**) **लेविन का स्थलाकृतिक मनोविज्ञान** - लेविन का स्थलाकृतिक मनोविज्ञान में उन संप्रत्ययों पर प्रकाश डाला गया है जो व्यक्तित्व की संरचना से सम्बिन्धत होते है तथा उनके व्यवहार का अध्ययन करता है। इसके तहत आने वाले प्रमुख संप्रत्ययों में निम्नांकित चार प्रमुख है -

1) व्यक्ति
2) मनोवैज्ञानिक वातावरण
3) जीवन समष्टि
4) वास्तविकता के स्तर

1- व्यक्ति - लेविन का मत है कि व्यक्ति एक ऐसा तत्त्व या अस्तित्व है जो अपने वातावरण से घिरे रहते हुए भी अपने आप को उस वातावरण से भिन्न रखता है। लेविन के अनुसार P की दो विशेषताएँ है जो निम्नांकित है -

- ❖ P अपने वातावरण से अलग होता है।
- ❖ P अपने आप में विभेदित होता है अर्थात P सिर्फ वातावरण से भिन्न ही नहीं होता है बल्कि भीतर से भी कुछ भागों में बँटा है -प्रत्यक्षणात्मक पेशीय क्षेत्र तथा आन्तरिक वैयक्तिक क्षेत्र प्रत्यक्षणात्मक पेशीय क्षेत्र के वृत्त के बाह्य पर होता है तथा आन्तरिक वैयक्तिक क्षेत्र वृत के केन्द्रीय हिस्सों में होते है।

2. मनोवैज्ञानिक वातावरण - इसे लेविन ने E अक्षर के रूप में संक्षिप्त किया है। व्यक्ति द्वारा अपने वातावरण का आत्मनिष्ठ रूप से अनुभव किया जाना ही मनोवैज्ञानिक वातावरण कहलाता है। P के समान E को भी लेविन ने कई क्षेत्रों में बांटा है। कुछ क्षेत्र की सीमा-रेखा में प्रवेश्यता होती है तो कुछ की सीमा-रेखा में प्रवेशता नहीं होती है। प्रवेश्य सीमा-रेखा के माध्यम से व्यक्ति भौतिक वातावरण के इर्द-गिर्द की वस्तुओं एवं व्यक्तियों को प्रभावित करता है तथा उससे प्रभावित होती है। व्यक्ति के चिन्तन तथा प्रत्क्षण का वातावरण के वस्तुओं एवं घटनाओं द्वारा प्रभावित होना तथा फिर इस चिन्तन और प्रत्यक्षण द्वारा घटनाओं एवं वस्तुओं का प्रभावित होना इन्हीं प्रवेश सीमा-रेखा के कारण ही संभव हो पाता है।

3. जीवन समष्टि - लेविन के संरचनात्मक मनोविज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण संप्रत्यय जीवन व समष्टि है जिसका संकेत L रखा गया है। व्यक्ति अर्थात P एवं उसके मनोवैज्ञानिक वातावरण अर्थात् E को एक साथ मिला देने पर जिस संप्रत्यय का जन्म होता है, उसे जीवन समष्टि कहा जाता है तथ्ज्ञा इसमें वे सभी चीजें होती है जिनसे व्यक्ति का तात्कालिक व्यवहार प्रभावित एवं नियंत्रित होता है। अत: सूत्र के रूप में इस तरह कहा जा सकता है -

$$L = P + E$$

लेविन का मत है कि मानव व्यवहार P और E दोनों का प्रतिफल है। लेविन ने इसकी व्याख्या एक सूत्र के रूप में इस प्रकार लिखा है -

$$B = f(P,E) \text{ या } B = f(L)$$

जीवन समष्टि के बाहर के वातावरण को बाह्य आवरण कहा जाता है। बाह्य आवरण तथा मनोवैज्ञानिक वातवरण की सीमा-रेखा प्रवेश होता है और इसलिए इन दोनों के बीच दो-तरफा संचार होता है अर्थात् दोनों एक-दूसरे से प्रभावित होता है।

लेविन ने जीवन-समष्टि को कई क्षेत्रों में बांटा है और प्रत्येक्ष क्षेत्र अपनी-अपनी सीमा रेखा से अलग होते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में एक मनोवैज्ञानिक तथ्य होता है जो एक सामाजिक घटना या बौद्धिक घटना होता है, जीवन समष्टि के विभिन्न क्षेत्र आपस में अन्त:क्रिया करते है। यह अन्त:क्रिया निम्नांकित दो तरह की प्रक्रियाओं द्वारा सम्पन्न होता है - संचार तथा गमन।

संचार एक ऐसी घटना है जिसके सहारे जीवन समष्टि का एक क्षेत्र या कक्षिका दूसरे क्षेत्र या कक्षिका को कुछ सूची त करता है। गमन एक ऐसी घटना है जिसमें व्यक्ति जीवन समष्टि के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में दैहिक या मनोवैज्ञानिक गति करता है। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जिस पथ से होकर गमन की घटना सम्पन्न होती है, उसे लेविन ने होडोलॉजिकल स्पेश की संज्ञा दी है। लेविन ने तीन ऐसे नियमों का प्रतिपादन किया है जिससे होकर संचार तथा गमन की घटनाएँ नियंत्रित होती है। वे तीन नियम निम्नलिखित है -

- सम्बद्धता का नियम
- दृढ़ता या मूतर्त का नियम
- समकालिकता का नियम

- ❖ सम्बद्धता का नियम :- सम्बद्धता का निमय यह बतलाता है कि जीवन समष्टि में दो या दो से अधिक सम्बन्धित तथ्यों के अन्तक्रिया से किसी घटना की उत्पत्ति होती है।
- ❖ दृढ़ता या मूतर्त का नियम :- दृढ़ता या मूर्त्तता का नियम यह बतलाता है कि सिर्फ वही तथ्य जिसका जीवन समष्टि में अस्तित्व होता है, व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित कर सकता है।
- ❖ समकालिकता का नियम :- समकालिकता का नियम यह बतलाता है कि सिर्फ वर्तमान तथ्य से वर्तमान व्यवहार की उत्पति हो सकती है।

इसका मतलब यह हुआ कि बाल्यावस्था से सम्बन्धित तथ्य या घटनाए जब तक व्यक्ति के वर्तमान व्यवहार का प्रभावित नहीं कर सकते है। जब तक कि वर्तमान समय में भी वे किसी तरह अस्तित्व में बने न हो।

4. वास्तविकता के स्तर **:-** लेविन के अनुसार वास्तविकता तथा अवास्तविकता के कुछ स्तर या मात्रा होते है जो P तथा E पर लागू होते है। वास्तविकता से तात्पर्य वास्तविक गमन से होता है। जैसे - कोई व्यक्ति अपने कार्य में परिवर्तन ला सकता है या वह कोई नयी राजनैतिक पार्टी में रखा जाएगा। दूसरी तरफ कोई व्यक्ति यह कल्पना कर सकता है कि यदि वह अमुक राजनैतिक पार्टी का सदस्य होता तो अच्छा होता। इसे लेविन के अनुसार अवास्तविकता में रखा जाएगा। इन दोनों छोरों के बीच अर्थात् वास्तविकता एवं अवास्तविकता के बीच कई मात्राएँ या स्तर होती है। लेविन का मत है कि व्यक्ति जैसे-जैसे वास्तविकता या अवास्तविकता की ओर जाता है, गमन की प्रक्रिया आसान होते चली जाती है। व्यक्ति में जैसे-जैसे परिपक्वता आती जाती है, वास्तविकता-अवास्तविकता की सीमा अधिक विस्तृत होती चली जाती है।

(**ख**) **लेविन का सदिशात्मक मनोविज्ञान** :- लेविन के स्थलाकृतिक मनोविज्ञान से तो यह पता चलता है कि किसी दिन हुए समय या परिस्थिति में जीवन समष्टि कैसा होता है। परन्तु इसमें यह पता चलता है कि जब व्यक्ति कोई व्यवहार करना प्रारम्भ कर देता है तो वह (जीवन समष्टि) कैसा होगा? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने के लिए लेविन के सदिशात्म्क मनोविज्ञान के तहत कुछ गत्यात्म्क सप्रत्यया का प्रतिपादन किया है जिससे यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि किसी भी दी गयी परिस्थिति का प्रतिपादन किया है जिससे यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि किसी भी दी गई परिस्थिति में व्यक्ति किस तरह का व्यवहार करता है। ऐसे गत्यात्मक सम्प्रत्य निम्नलिखित हैं:-

1) ऊर्जा
2) तनाव
3) आवश्यकता
4) कर्षण शक्ति
5) सदिश

i. ऊर्जा **-** लेविन के व्यक्ति को एक जटिल ऊर्जा तंत्र माना हैं। जिस ऊर्जा से मनोवैज्ञानिक कार्य होते है, उसे लेविन ने मनोवैज्ञानिक ऊर्जा कहा है। मनोवैज्ञानिक ऊर्जा की उत्पत्ति उस समय होती है जब तनाव बढ़ जाने के कारण तंत्र के किसी एक भाग में अन्य भागों की

अपेक्षा असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और तंत्र सतुलन स्थापित करने की दिशा में क्रियाशील हो उठता है।

ii. तनाव - तनाव व्यक्ति या P की एक ऐसी अवस्था होती हैं जिसमें एक या एक से अधिक आन्तरिक वैयक्तिक तंत्रों या क्षेत्रों के बलों के बीच में असंतुलन स्थापित हो जाता हैं।

iii. आवश्यकता - लेविन के अनुसार आवश्यकता शारीरिक जैसे - भूख, प्यास की आवश्यकता आदि तथा मनोवैज्ञानिक। जैसे - धनी आदमी बनने की इच्छा, अधिक से अधिक उपलब्धि प्राप्त करने की इच्छा आदि होती है। आवश्यकता से तनाव में वृद्धि या कमी होती है। लेविन ने आवश्यकता तथा अर्द्ध आवश्यकता में अन्तर किया हैं। अर्द्ध आवश्यकता से तात्पर्य एक तरह के विशेष अभिप्राय होता है जो सामाजिक कारकों द्वारा नियन्त्रित होते है। किसी विशेष होटल में भोजन करने की आवश्यकता एक अर्द्ध आवश्यकता का उदाहरण होगा।

iv. कर्षण शक्ति - लेविन ने यह स्पष्ट किया है कि मनोवैज्ञानिक वातावरण के विभिन्न क्षेत्र होते है और प्रत्येक क्षेत्र का मूल्य व्यक्ति के लिए या तो धनात्मक होता है या ऋणात्मक होता है। इसी मूल्य का कर्षण शक्ति की संज्ञा दी जाती है। स्पष्टत: तब कर्षण शक्ति दो प्रकार की होती है - धनात्मक कर्षणशक्ति एवं ऋणात्मक कर्षणशक्ति। एक प्यासे व्यक्ति के लिए मनोवैज्ञानिक वातावरण का वह क्षेत्र जो जल से सम्बन्धित होते है, का कर्पण शक्ति धनात्मक होगा। ऋणात्मक कर्पणशक्ति वाला क्षेत्र वह क्षेत्र होता है जिसमें व्यक्ति में तनाव बढ़ता है।

v. सदिश - इस पद को लेविन ने भौतिकी एवं गणित से लिया था और इसका अनुप्रयोग मानव व्यवहार की व्याख्या में किया। संदिश से तात्पर्य वैसे मनोवैज्ञानिक बलो से होता है जो व्यक्ति पर अपना सीधा प्रभाव डालता है और उसे किसी निश्चित दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित करता हैं सदिश की शक्ति तथा दिशा मनोवैज्ञानिक वातावरण के के एक या एक से अधिक क्षेत्रों में उत्पन्न धनात्मक कर्षण शक्ति तथा ऋणत्मक कर्षणशक्ति का प्रतिफल होता है। अगर मनोवैज्ञानिक वातावरण का एक क्षेत्र का कर्षणशक्ति धनात्मक है तो उस क्षेत्र की दिशा में जाने के लिए व्यक्ति को सदिश प्रभावित करेगा। दूसरी तरफ यदि किसी मनोवैज्ञानिक क्षेत्र का कर्षणशक्ति ऋणात्मक है तो सदिश व्यक्ति को उस क्षेत्र से दूर हटने की दिशा में उसे प्रेरित करेगा। जब व्यक्ति का व्यवहार एक ही समय में कई तरह के सदिश द्वारा प्रभावित होने लगता है, तो इससे व्यक्ति में मनोवैज्ञानिक संघर्ष उत्पन्न होने लगता है। ऐसे संघर्ष निम्नलिखित चार प्रकार के होते है:-

- ❖ उपागम-उपागम संघर्ष - जब व्यक्ति दो धनात्मक कर्षणशक्तियों से एक ही समय में प्रभावित होने लगता है तो उससे उत्पन्न संघर्ष को उपागम-उपागम संघर्ष कहा जाता है। इस स्थिति में संघर्ष इसलिए होता है कि दोनों धनात्मक कर्षणशक्तियों से सम्बन्धित इच्छाओं कीपूर्ति करना एक साथ सम्भव नहीं होता है।
- ❖ परिहार-परिहार संघर्ष - जब व्यक्ति दो ऋणात्मक कर्षणशक्ति से प्रभावित होता है तो उसमें परिहार-परिहार संघर्ष की उत्पति होती है। जैसे - यदि किसी विद्यार्थी को

रसायनशास्त्र तथा भौतिकी में से किसी एक को अपने अध्ययन विषय के रूप में चुनना पड़े जबकि उसे दोनों ही विषय काफी कठिन एवं अरूचिकर लगता है, तो इससे उत्पन्न संघर्ष को परिहार-परिहार संघर्ष कहा जाता है।

- ❖ उपागम परिहार संघर्ष - इस तरह की परिस्थिति में व्यक्ति के सामने लक्ष्यवस्तु तो एक ही होते है परन्तु उससे धनात्मक कर्षणशक्ति तथा ऋणाकर्षणशक्ति दोनों ही उसे व्यक्ति के लिए उत्पन्न होने लगता है। इससे जो सघर्ष की उत्पति होती है,उसे उपागम परिहार संघर्ष की संज्ञा दी जाती है। जैसे - यदि किसी व्यक्ति को एक ऐसी नौकरी मिल रही हो जिसे वह काफी पसंद करता है क्योंकि उसका वेतनमान अधिक है परन्तु वह उसमें जाना नहीं चाहता है क्योंकि उसमें दूर-दूर के ग्रामीण इलाको में जाकर लोगों से सीधा सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक है, तो ऐसी परिस्थिति में उत्पन्न मानसिक संघर्ष को उपागम-परिहार संघर्ष कहा जाएगा।
- ❖ द्वि-उपागम परिहार संघर्ष - इस तरह की परिस्थिति व्यक्ति अपने आप को एक साथ धनात्मक एवं ऋणात्मक कर्षणशक्ति से घिरा हुआ पाता है और ये दोनों तरह की कर्षणशक्तियां व्यक्ति को अपनी-अपनी और खींचने लगता है। जीवन की अधिकांश परिस्थितियाँ इसी प्रकार की होती है।

(ग) **समूह-गतिकी** - अपने जीवन वृत्ति के अन्तिम वर्षों में लेविन ने समाज मनोविज्ञान की समस्याओं की और भी ध्यान दिये। उन्होंने समूह गतिकि के संप्रत्यय का विकास किया। समूह गतिकी से तात्पर्य समूह में होने वले सामूहिक अन्तक्रियाओं जैसे - नेतृत्व, अधिकार या शक्ति में परिवर्तन, समूह निर्णय, समूह समग्रता निर्णय लेने की क्षमता आदि से होता है। दूसरे शब्दों में यह एक तरह की सामाजिक प्रक्रिया होती है। जिसके सहारे समूह में लोगों के आमने-सामने होकर अन्त:क्रिया करते है। लेविन का मत था कि व्यक्तियों का समूह तथा उसका वातावरण एक साथ मिलकर क्षेत्र का निर्माण करते है। समूह व्यवहार का निर्धारण सदस्यों के गत्यात्मक अन्तनिर्भरता पर निर्भर करता है। समूह के प्रत्येक सदस्य का व्यवहार दूसरे सदस्य के व्यवहार से प्रभावित होता है। समूह पर संघटनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों तरह के कारकों को प्रभाव पड़ता है। जब समूह के सदस्यों के बीच का सम्बंध संतोषजनक होता है, तो इससे संघटनात्मक बल की उत्पत्ति होती है। परन्तु जब सदस्यों के बीच का सम्बंध संघर्षातमक होता है तथा सदस्यों में आपस में उचित संचार भी नहीं होता हे, तो इससे विघटनात्मक या ध्वंसात्मक बल की उत्पत्ति होती है।

8.11 आलोचना

1. लंदन के अनुसार लेविन के मनोविज्ञान में जो चित्रों का उपयोग किया गया है वे मात्र अलंकारिक है तथा उनसे व्यक्ति के मनोविज्ञान में कोई वृद्धि नहीं होती है। अन्य प्रमुख आलोचकों का मत है कि लेविन के मनोविज्ञान में काल्पनिक, अजाँचनीय संप्रत्ययों की भरमार है। सदिश, तनाव, ऊर्जा शक्ति ऐसे संप्रत्ययों की कुछ चन्द बानगी है। आलोचकों का मत है कि लेविन के विभिन्न स्थलाकृतिक संप्रत्ययों से कोई अर्थपूर्ण व्याख्या वास्तविक अर्थ में नहीं होती है।

2. लंदन ने यह मत जाहिर किया है कि लेविन ने स्थलाकृतिक संप्रत्ययों को ज्यामिति से लिया है और उसका अनुपयुक्त उपयोग मनोविज्ञान में किया गया है। लंदन के अलावा कुछ अन्य प्रमुख आलोचकों का भी यही मत है कि लेविन ने अपने गणितीय संप्रत्ययों का दुरूपयोग किया है। उन्होंने भौतिकी, रसायनशास्त्र तथा गणित से विभिन्न पदों जैसे - बल, कर्षणशक्ति, सीमा रेखा आदि को लिया अवश्य है परन्तु मनोविज्ञान में उनका गलत उपयोग किया है।

3. वर्नस्विक, कार्टराइट, लीपर तथा टॉलमेन का मत है कि लेविन ने अपने मनोविज्ञान में जीवन समृष्टि को बाह्य वातावरण के साथ स्पष्ट सम्बंध बतलाने में असमर्थ रहे हैं। इनके अनुसार लेविन ने अपने मनोविज्ञान में कही भी यह नहीं बतलाया है कि बाह्य वातावरण किस तरह से जीवन समष्टि में परिवर्तन लाता है या जीवन समष्टि किस तरह से वातावरण में परिवर्तन लाता है। इस कारण से उनके मनोविज्ञान में आत्मनिष्ठता का गुण अधिक उत्पन्न हो गया है।

4. गैरेट तथा लीपर ने यह मत जाहिर किया है कि लेविन ने व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या करने में उसके गत जीवन की अनुभूतियों को नजरअंदाज किया है। लेकिन लेविन ने इस आलोचना का खण्डन किया है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि उनके समाकलिता के नियम को आलोचकों ने गलत समझा है। शायद यही कारण है कि उन लोगों द्वारा इस तरह की आलोचना की गयी है। लेविन ने स्वयं कहा है ''इससे ज्यादा बड़ी भूल और कुछ नहीं हो सकती।'' लेविन ने अपने उक्त नियम के सहारे यह स्पष्ट कर दिया है कि विगत इतिहास का ज्ञान वर्तमान जीवन समष्टि को समझने के लिए आवश्यक है।

8.12 सारांश

मानवतावादी मनोविज्ञानियों ने मनोविज्ञान को एक धनात्म्क एवं आशावादी सिद्धान्त दिया है तथा व्यक्ति के व्यवहार को आत्म-सिद्धि की अवस्था तक पहुंचा देने का भरसक प्रयास किया है। मानवतावादी मनोविज्ञान ने यह स्पष्ट रूप से दावा किय है कि व्यक्ति अपने भाग्य का विधाता स्वयं होता है न कि उसका भाग्य पर्यावरणी कारकों द्वारा निर्धारित होता है। ऐसा इसलिए कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति में अपने भीतर की अन्त:शक्तियों को पहचानने की पूर्ण सामथ्र्यता होती है।

अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का उद्देश्य मनुष्य को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में अध्ययन करना होता है जो संसार में एक जीवित प्राणी के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखने में सक्षम होता है। अस्तित्व मनोविज्ञान का मत है कि व्यक्ति की मौलिक प्रकृति मानवीय होती है जिसे मशीन से तुलना नहीं की जा सकती है। अस्तित्ववादी मनोविज्ञान सम्पूर्ण व्यक्ति का जैसा कि वह अपने अस्तित्ववादी वास्तविकता में होता है, का अध्यपन करता है। अस्तित्ववादी ननोविज्ञान में व्यक्ति के वर्तमान अस्तित्व पर अधिक बल डाला गया है।

लेविन के मनोविज्ञान का क्षेत्र सिद्धान्त सामाजिक अनुसंधानों में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसलिए बहुत से समाजशास्त्रियों ने उसे अपनाया हैं। समूह गतिकी का सिद्धान्त अद्वितीय रहा जो समाज मनोविज्ञान में अध्ययन का विषय रहा है। यह समाजों के सम्बन्धों को समझने में बड़ा लाभकारी रहा। कर्ट लेविन के मनोविज्ञान का शोधमूल्य अधिक हैं उनके सिद्धान्त एवं तथ्यों से यह

सिद्ध हो गया है कि मानव व्यवहार के मुख्य पहलुओं को समझने एवं उनके बारे में पूर्वकथन करने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का दृष्टिकोण बहुआयामीय होना आवश्यक है।

बोध प्रश्न

1- क्षेत्र सिद्धान्त में किसे प्रमुख माना गया है?

2- कौन सा सम्प्रत्यय लेविन का गणितिय संप्रत्यय नहीं है?

8.13 निबंधात्मक प्रश्न

3- मानवतावादी मनोविज्ञान क्या है? समझाइये।

4- मेसलों के अधिअभिप्रेरणा के सिद्धान्त को समझाइये।

5- रोगर्स का आत्म सिद्धान्त क्या है? स्पष्ट रूप से समझाइये।

6- लेविन के सिद्धान्त के गणितीय सम्प्रत्ययों को समझाइये।

7- लेविन द्वारा प्रतिपादित संदिश सम्प्रत्ययों का वर्णन कीजिए।

8.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

- डॉ, शर्मा, के.एन. (2002), मनोवैज्ञानिक विचारधाराएँ, एच.पी. भार्गव, बुक हाउस, आगरा
- डॉ. सिंह, अरूण कुमार, सिंह आशीष कुमार, मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, प्रकाशक, दिल्ली
- डॉ. शर्मा रामनाथ (200), मनोविज्ञान का इतिहास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल अस्पताल रोड़, आगरा - 3
- अशरफ अज़ीमुर्रहमान एवं जावेद (1994) मनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, प्रकाशक दिल्ली।

इकाई - 9

मनोविश्लेषण तथा नव- मनोविश्लेषण

(Psychoanalysis and Neoanalysis)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 मनोविश्लेषण का अर्थ

9.3 मनोवैज्ञानिकों का योगदान

9.4 नव-मनोविश्लेषणवाद

9.5 मनोविश्लेषण तथा नव-मनोविश्लेषण में अन्तर

9.6 सारांश

9.7 स्व मूल्यांकन प्रश्न

9.8 संदर्भग्रंथ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- मनोविश्लेषण का अर्थ समझ सकेंगे।
- मनोविश्लेषण वादी विचारधाराओं को जान सकेंगे।
- नव मनोविश्लेषण के बारे में जान सकेंगे।
- नव मनोविश्लेषण विचारधाराओं को समझ सकेंगे।
- मनोविश्लेषण तथा नव मनोविश्लेषण में अन्तर समझ सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

मनोविश्लेषण मनोविज्ञान की स्थापना सिगमण्ड फ्रायड (1856-1939) द्वारा की गयी। मनोविश्लेषणवाद को फ्रायडवाद भी कहते है।

फ्रायड ने मनोविश्लेषण के तीन अर्थ बतलायें -

1- मनोविश्लेषण मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों के उपचार की एक विधि है।

2- मनोविश्लेषण व्यक्ति का एक सिद्धान्त है।

मनोविश्लेषण मनोविज्ञान का एक सम्प्रदाय या स्कूल है। फ्रायड के दो निकटतम सहयोगी एडलर तथा युंग थे जिनके प्रति फ्रायड के दो निकटतम सहयोगी एडलर तथा युंग थे जिनके पति फ्रायड के साथ मतभेद हो जाने के कारण उनसे अलग होकर नया समप्रदाय स्थापित किया, यह नव फ्रायडवाद/नव मनोविश्लेषण कहलाया।

9.2 मनोविश्लेषण का अर्थ (PSYCHOANALYSIS)

मनोविश्लेषण के प्रवर्तकों में सिगमण्ड फ्रॉयड का नाम प्रमुख है जिसका कारण उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त है। उनका सिद्धान्त मनुष्य जीवन के हर पहलू का आन्तरिक चित्रण बड़ी खूबी से करता है। उनका जन्म मोराविया (चैकोस्लोवाकिया) में हुआ तथा वे वियना में रहे व उनकी शिक्षा प्राप्त भी वियना में हुई। सन् 1881 में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के बाद, वे तन्त्रिका रोग चिकित्सा करने लगे। कुछ समय वे फ्राँस में शार्को (Charcot) के साथ शिक्षण पाते रहे। शार्को विशेषत: सम्मोहन द्वारा मनोरोग चिकित्सा करते थे।

यद्यपि उन्नीसवीं सदी के अन्त व बीसवीं सदी के प्रारम्भ में मनोविज्ञान क्रान्ति के चौराहे पर खड़ा था, उसे दर्शनशास्त्र से अलग करके वैज्ञानिक बनाने के लिए वस्तुगतता, दैहिक विज्ञान, प्रयोग आदि का सहारा लिया जा रहा था, फिर भी फ्रॉयड ने मनोविज्ञान को वैज्ञानिक बनाने के लिये अवैज्ञानिक, मानसिक, अवस्तुगत व मैटाफिजिकल राह का ही सहारा लिया। फ्रॉयड का मनोविज्ञान में सिद्धान्त प्रतिपादन का कोई विचार नहीं था। वे मनोरोगों के आन्तरिक कारण जानने में अधिक रूचि रखते थे। मनोरोगों के आन्तरिक कारणों को ही उन्होंने बखाना, परन्तु सब मिलाकर एक सिद्धान्त से अधिक संस्थान ही बन गया। उन्होंने कोई प्रयोग नहीं किया, परन्तु उनके कुछ विचारों का परीक्षण कई मनोवैज्ञानिक जैसे - पावलव, स्किनर, गोल्डस्टीन आदि ने किया तथा उन्हें सही भी पाया। फिर भी उनके सिद्धान्त का पूर्ण रूप से परीक्षण न होने के कारण उसे वैज्ञानिक मान्यता नहीं मिली, परन्तु सामान्य व असामान्य मनुष्य जीवन के विश्लेषण व वर्णन में उच्च स्थान मिला। उनके प्रमुख विचार निम्नलिखित थे -

(1) **वैज्ञानिकता** - फ्रॉयड का विचार था कि संसार को कोई जान नहीं सकता। विज्ञान का कार्य केवल उसे समझना है तथा विचारों व घटनाओं में सम्बन्ध ज्ञात करना है। मनोविश्लेषण में भी उन्होंने वही किया। मनुष्य का वास्तविक संसार के साथ तालमेल ही वैज्ञानिक प्रदत्त है। उनके निरीक्षण का ढंग उस वास्तविकता का ज्ञानेन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान था। सूक्ष्मदर्शी यन्त्र आदि तो उसे केवल सुधार सकते हैं, अधिक सूक्ष्म गणनात्मक मूल्य बता सकते हैं, परन्तु देखना तो आँख से ही पड़ता है।

फ्रॉयड का यह भी विचार था कि विज्ञान का कार्य उपकल्पना बनाना भी है। सभी तथ्यों के सम्बन्ध के बारे में अनुमान देने चाहिए। सिद्धान्त को उपकल्पनाओं, नियमों, सम्बन्धों, मॉडलों आदि द्वारा अनुभाविक सामग्री से समझना चाहिए। सभी मनोविश्लेषणकर्ता उपकल्पनाओं द्वारा सिद्धान्त निर्माण ही करते हैं। रोगी से जीवन व रोग के बारे में इतिहास पूछते हैं, उसके लक्षणों का पता लगाते हैं तथा उनके बारे में भविष्य कथन करते हैं। वे रोगी द्वारा बताये गये चेतन तथ्यों का सम्बन्ध उसकी आन्तरिक दशाओं व अचेतन मन से जोड़कर कारण का पता लगाते हैं।

इस प्रकार फ्रॉयड ने मनोविश्लेषण को अवैज्ञानिक नहीं माना। वे यह जानते थे कि मनोविज्ञान गणितीय सूत्रों द्वारा वर्णित नहीं किया जा सकता जैसा कि भौतिक व रसायनशास्त्रों में होता है।

(2) **सिद्धान्त में विशेषताएँ** - फ्रॉयड के सिद्धान्त में छ: प्रमुख विशेषताएँ पायी जाती है - कारणवाद, अपचयवाद, मानसिक शक्ति संचरण, मानसिक शक्ति स्थिरता, मानसिक शक्ति की मितव्ययिता और सुखवाद।

(i) कारणवाद - फ्रॉयड के सिद्धान्त में प्रयोगात्मक कारणवाद तो नहीं था और न ही कुछ वस्तुगत था। मानसिक रोगों का कारण अवश्य होता है, चाहे ऐसे कारण सामाजिक या कौटुम्बिक स्थिति हो या अन्य। मनुष्य के सभी व्यवहारों के भी कारण होते हैं। इसी कारण वे भविष्य कथन कर सकते हैं। उनका कारणवाद अनुभाविक था। इसका प्रमुख कारण यह था कि फ्रॉयड भौतिकवादी विचार से व्यवहार का आधार या कारण नहीं मानते थे, वे अमूर्त शक्ति रूपी मन द्वारा ही व्यवहार का वर्णन करते थे। उन्होंने उपकल्पना रूप में विचार दिये, परन्तु उन्हें सही विधि से अध्ययन करने से कभी मना नहीं किया।

(ii) अपचयवाद - यद्यपि फ्रॉयड प्रकृति व मनुष्य में पूर्णवाद को मानते थे फिर भी मानसिक घटकों को वर्णन करते रहे, व्यक्तित्व के अवयवों को अलग-अलग बखानते रहे, तथा उनके द्वारा ही व्यक्तित्व प्रभावों का वर्णन करते रहे। उनके सिद्धान्त में भौतिक शास्त्र का भी मिश्रण मिलता है। सन् 1894 में उन्होंने उन्हें रासायनिक प्रकृति का माना। इस प्रकार भौतिक - रसायन तत्व द्वारा मन व व्यवहार वर्णन उनके सिद्धान्त में कुछ अपचयवाद को दर्शाता है।

मानसिक जीवन में शारीरिक तत्वों को फ्रॉयड मानते थे। उनके इड (Id) का विचार बिल्कुल शारीरिक ही था। उनका विचार था कि शिशु में सब कुछ वंशानुगत होता है। वह सब में अपनी शारीरिक सन्तुष्टि ही चाहता है। फिर भी फ्रॉयड को पूर्ण अपचयवादी कहना ठीक नहीं होगा क्योंकि उन्होंने मन शक्ति को वृहत् रूप में माना।

(iii) मानसिक शक्ति संचरण - फ्रॉयड व्यक्तित्व मे गत्यात्मकता को मानते थे। वे मानते थे कि मानसिक शक्ति रसायन व भौतिक शक्ति से भिन्न है, परन्तु सभी शक्तियों का स्त्रोत एक ही है। मानसिक शक्ति वोल्ट, वाट या एम्पीयर में नहीं मापी जा सकती। ये नाप केवल भौतिक शक्तियों के हैं। भौतिक शक्तियाँ उसी शक्ति के परिवर्तित रूप हैं। शक्ति एकत्रित की जा सकती है, परिरक्षित की जा सकती है, स्खलित की जा सकती है, विसरित की जा सकती है तथा वह निरूद्धित की जा सकती है। मानसिक शक्ति भी ये गुण रखती है। मानसिक व शारीरिक शक्तियाँ एक - दूसरे में परिवर्तित हो सकती हैं।

(iv) मानसिक शक्ति स्थिरता - शक्ति सदा सन्तुलन चाहती है। जब कोई उत्तेजना होती है तो तनाव या असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। जीव में सन्तुलन की प्रवृत्ति रहती है। वह उस तनाव से तुरन्त मुक्त होना चाहता है। यदि उत्तेजनाएँ अधिक बढ़ जाती

हैं तो वे जीवन के लिए घातक भी हो सकती हैं। इसी सन्तुलन प्रवृत्ति को फ्रॉयड ने स्थिरता का नियम बताया। मूलप्रवृत्तियों को भी फ्रॉयड ने सन्तुलनकारक बताया क्योंकि वे जीवन की पूर्व स्थिति की ओर क्रियाशील रहती हैं।

(v) मितव्ययिता - मानसिक शक्ति मितव्ययिता से खर्च होती है। कुछ कार्यों में मानसिक शक्ति अधिक शक्ति लगती है तो कुछ में कम। यदि व्यक्ति कुछ भी कार्य न करे, केवल सोये या आराम करे तो भी कुछ शक्ति अवश्य खर्च होती है। जब कोई मूलप्रवृत्तिक उत्तेजना होती है तो उसके सन्तुलन के लिए काफी शक्ति चाहिए। जिन लोगों मे आन्तरिक द्वन्द्व रहता है, वे अधिक कार्य नहीं कर सकते क्योंकि उनकी अधिक शक्ति द्वन्द्व समाप्त करने में लग जाती है। अत: वे थके - थके प्रतीत होते हैं।

किसी सन्तुलन के लिए शक्ति स्खलन में दो प्रक्रियाएँ कार्य करती हैं। एक प्रक्रिया तो शक्ति का स्खलन चाहती है जिससे सन्तुलन बने तथा दूसरी शक्ति संरक्षण चाहती है।

(vi) सुखवाद - व्यक्ति हर कार्य में आनन्द चाहता है। शक्ति उसी कार्य में खर्च करना चाहता है, जिससे जीव आनन्दित हो या तनाव दूर हो। दु:ख से उत्तेजना बढ़ती है व सुख में कमी हो जाती है। शिशु को भूख लगने से उत्तेजना होती है। भूख एक दु:खदायी स्थिति है। दूध मिलने से भूख मिटने पर शिशु कि उत्तेजना समाप्त हो जाती है जिससे वह आनन्द पाता है तथा सो जाता है।

(3) मन दशाएँ - फ्रायड ने मन की तीन दशाएँ बताई है - (अ) अचेतन (ब) चेतन (स) अग्रचेतन।

(अ) अचेतन - फ्रॉयड ने अचेतना का अनुभव हिस्टीरिया के रोगियों में सम्मोहन के समय किया। जब रोगी सम्मोहन की दशा में ऐसी बातें बताते थे जो उनके जीवन के पूर्वकाल से सम्बधिन्त रहती थीं, परन्तु उन्हें सम्मोहन कि दशा में पता नहीं रहता था कि वे क्या बता गये है। सम्मोहन का नशा उतरने पर रोगी को पता नहीं रहता था कि सम्मोहन की दशा में उसके साथ क्या हुआ था। इस प्रकार सम्मोहन से पहले व बाद में उसमें चेतन अवस्था रहती थी तथा सम्मोहन के समय स्मृतिहास रहता था।

इससे फ्रायड ने यही निष्कर्ष निकाला कि अधिकतर बचपन के अनुभव जो इच्छा सन्तुष्टि न कर सकें या बहुत सी प्रमुख दर्द विदारक घटनाएं आदि अचेतन मन में दबी पड़ी रहती हैं जिनके बारे में युवा व्यक्ति को कुछ पता भी नहीं रहता। फ्रायड ने स्वप्न, मुक्त साहचर्य, जिव्हा लड़खड़ाना व मानसिक रोग के लक्षणों का विश्लेषण करके देखा तो उनमें बहुत से लक्षण व्यक्ति के बचपन के अनुभवों या पूर्व अनुभवों से सम्बन्धित थे। बच्चे का मन अधिक उत्तेजनाएं सह नहीं सकता है। इसी कारण वह बातों को भूल जाता है। वह सुप्तावस्था में रहता है। जब बाह्या उद्दीपक तीव्र उत्तेजना उत्पन्न करते हैं तो वह जागता है।

(ब) चेतन - शिशु में चेतना का अभाव ही रहता है। कुछ बड़ा होने पर बाह्या उद्दीपकों का ज्ञान करता है जो उसे सोने नहीं देते है। उद्दीपक तनाव उत्पन्न करते हैं। तनाव को दूर करने के

प्रत्ययों व प्रत्यक्ष ज्ञान से ही चेतना उत्पन्न होती है। फ्रॉयड का विचार था कि अचेतन से ही चेतना का विकास होता है।

(स) अग्रचेतन - कुछ स्मृतियां ऐसी होती हैं जो आसानी से बिना किसी प्रयास के चेतन में आ जाती हैं, उन्हें अचेतन कहते हैं। यह चेतन दशा की उपरी सतह है। व्यक्ति अस्थिर रूप से अचेतन रहता है। जिव्हा का लड़खड़ाना, परिचित नामों को भूलना, त्रुटियां कर जाना, वस्तुओं को अनुचित स्थान पर रखा देना आदि इसी प्रकार की क्रियाएं हैं जो अग्रचेतन में आती हैं। फ्रॉयड का विचार था कि अचेतन प्राय: 90 प्रतिशत व चेतन मन केवल 10 प्रतिशत ही रहते हैं, तथा अग्रचेतन तो क्षणिक ही होता है।

(4) दमन - फ्रॉयड के अनुसार 'दमन' मन की एक प्रमुख क्रिया है जिसमें व्यक्ति की स्मृतियां अचेतन में चली जाती हैं। व्यक्ति के किसी स्मृति या विचार का दमन करने में इच्छा की आवश्यकता नहीं होती अर्थात् वह चेतन क्रिया नहीं है।

मनोचिकित्सक उस अनस्खलित शक्ति का स्खलन करना चाहता है जिससे दमित इच्छा चेतन में आकर व्यवहार रूप में हो जाती है तो तनाव दूर हो जाता है। यदि दमन अधिक चलता रहे तो मन उस इच्छा को दबाना चाहता है। इसे अवरोध कहते हैं, अर्थात् शक्ति स्खलन होने में रुकावट होती है।

(5) स्वप्न-सिद्धान्त - फ्रॉयड ने स्वप्नों का भी बड़ा अजीबो-गरीब वर्णन दिया है। देखने में तो वह बड़ा रुचितक है, परन्तु उसकी सच्चाई पर लोग सदा शंका करते हैं, और बुद्धिमान लोग तो अधिक ही।

फ्रॉयड का विचार था कि स्वप्न व्यक्ति के लिए लाभकारी होते हैं। एक तो वे उसकी निद्रा को बचाते हैं। स्वप्न में इच्छा सन्तुष्टि हो जाने पर व्यक्ति के मन की बैचेनी समाप्त हो जाती है जिससे वह सो पाता है। दूसरी बात यह है कि व्यक्ति शक्ति को स्खलन करने से बचाता है। तीसरी बात, वास्तविकता में उसने किसी अन्य व्यक्ति को परेशान किये बिना ही सब कुछ कर लिया। यह व्यक्ति के लिए संचयी रहा अर्थात् उसने कम खर्चे में काम चला लिया व वास्तविकता को भी बिगाड़ा नहीं। चौथी बात यह है कि स्वप्न व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखता है, उसे बिगड़ने नहीं देता। यदि स्वप्न नहीं होता तो व्यक्ति दिन में असामान्य व्यवहार करता, जिससे वह बच गया। पांचवी बात यह है कि स्वप्न इदं व अहं के द्वन्द्व को मिटाता है। वह उन दोनों में सामंजस्य स्थापित कर देता है।

(6) व्यवहार त्रुटियां - प्रतिदिन हम बहुत सी त्रुटियां करते है जिनमें से कुछ जानबूझकर कर तो कुछ अनजाने में। यह सब अचेतन का ही कार्य होता है। फ्रॉयड ने कई त्रुटियों का वर्णन किया व उनके आन्तरिक कारण अचेतन में ही माने। एक त्रुटि है जीभ लड़खड़ाना। हम कुछ कहना चाहते हैं, परन्तु कह कुछ और जाते हैं।

(7) मूल प्रवृत्ति सिद्धान्त - फ्रॉयड ने मूल प्रवृत्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार सभी क्रियाएं मूलप्रवृत्ति से होती हैं। मूलप्रवृत्तियों का स्त्रोत भौतिक, रासायनिक होता है व स्वरूप मानसिक होता है। मूलप्रवृत्तियां शरीर में उत्तेजना से उत्पन्न होती हैं तथा उद्देश्यपूर्ण होती हैं। वस्तुएं उनकी स्त्रोत होती हैं।

फ्रॉयड का विचार था कि काम मूलप्रवृत्ति बालकों में भी होती है। इसी कारण उन्होंने सिद्ध किया कि बालक ही मनुष्य का पिता होता है। उसमें वे शक्तियां भविष्य में विकसित होने के लिए जन्म से पहले से ही विद्यमान रहती हैं। बालक व्यवहारों के आधार पर उन्होंने उनका वर्णन दिया है।

सन् 1914 में फ्रॉयड ने बताया कि लैंगिक मूलप्रवृत्ति केवल बाह्या वस्तुओं पर ही विस्थापित नहीं होती अपितु व्यक्ति अपने उपर भी उसे विस्थापित करता है, अर्थात् आत्मप्रेम। उसे फ्रायड ने नार्सिसीयता या आत्म-रति कहा। यह शब्द ग्रीस पुराण कथा से लिया जिसमें नार्सिसस राजा अपने आप को प्रेम करता था। शिशु या बालक में उसे प्राथमिक नार्सिसीयता कहते हैं तथा युवा में द्वितीयक नार्सिसीयता। जब नार्सिसीयता हो तो लैंगिक मूलप्रवृत्ति तथा अहं मूलप्रवृत्ति दोनों एक ही हो जाती हैं-कुछ लोगों में अधिक व कुछ में कम। जो अधिक अहंवादी व्यक्ति होते हैं, उनमें अधिक, जो कम अहंवादी होते हैं, उनसे कम होती है। फ्रॉयउ ने इन तीनों प्रवृत्तियों को सामूहिक नाम जिजीविषा कहा। सभी अहं, व लैंगिक अन्तर्नोद जिजीविषा के लिए ही शक्ति काम में लाते हैं।

(8) विकासावस्थाएँ - फ्रॉयड ने जीवन स्तरों को पांच प्रमुख भागों में बांटा- जन्म से पूर्व, शिशु अवस्था, बाल्यकाल, किशोरावस्था व युवावस्था।

- जन्म पूर्वकाल - जन्म को फ्रॉयड ने अभिघातज अनुभव माना, यानी जीवन में वह बड़ा भयानक समय है। जन्म से पहले शिशु की कोई आवश्यकता नहीं थी, उसे कुछ करना नहीं पड़ता था, बाह्य उद्दीपक परेशान नहीं करते थे, वह शान्ति से मां के गर्भाशय में स्थित था। जन्म से झगड़े प्रारम्भ हो जाते हैं। इसी कारण सारी चिन्ताओं का मूल ही जन्म है, जीवन की अन्य चिन्ताएं उसी से उत्पन्न होती हैं।

- शिशु अवस्था - जन्त लेते ही उद्दीपक दिखते हैं, जिन्हें वह नियन्त्रित करने में असमर्थ रहता है। यह वास्तविकता से दूर भागना चाहता है, अत: सोता ही रहता है। इसी से मन को शान्ति मिलती है। परन्तु भूख का उद्दीपक तो परेशान करता ही है। उससे उसे जागना या रोना पड़ता है और उसके सन्तुष्ट होते ही सो जाता है। उसी में उसे सुख मिलता है। उसमें पूर्णत: प्राथमिक नार्सिसीयता होती है- वह अपना ही सुख जानता है, व बाह्या वस्तुओं के बारे में कोई चिन्ता नहीं करता।

- बाल्यावस्था - जन्म से तीसरी साल प्रारम्भ होने से शिशु बालक कहलाता है, जो 12 वर्ष तक रहता है। इस आयु में फ्रॉयड ने लिबिडो को विभिन्न अंगों में आधिक्य के आधार पर चार भागों में बांटा- गुदा अवस्था, मूत्रमार्गीय अवस्था, लिंग अवस्था व अव्यक्तता काल।

  - ✓ गुदावस्था - तीसरी साल में गुदा अवस्था प्रारम्भ होती है। बालक चूसने की अपेक्षा तब मल त्यागने में अधिक सुख पाता है। उस आयु में दांत निकलते हैं वह बालक को दस्त अधिक होते रहते हैं, वह उसके लिए आनन्ददायक होता है। उससे उसकी बड़ी आंत की श्लेष्मिक झिल्ली में उसे आनन्द मिलता है, परन्तु मां-बाप उसे ऐसा करने से मना करते हैं तथा धीरे-धीरे वह मल रोकना

सीखता है। मल रोकने से भी श्लेष्मिक झिल्ली पर कुछ तनाव सुख देता है। इसी सुख के कारण लोग सुबह शाम शौचालय जाते हैं। इस अवस्था के अन्त में ही लड़कों में पुल्लिंग व लड़किया में स्त्रीलिंग गुण प्रारम्भ होने लगते हैं।

- ✓ मूत्रमार्गीय अवस्था- बालक की चार वर्ष की आयु प्रारम्भ से मूत्रमार्गीय अवस्था प्रारम्भ होती है। यह थोड़े समय ही रहती है। बालक की मूत्र नलिका की श्लेष्मिक कला में मूत्र त्यागने से अधिक आनन्द प्राप्त होता है। इसी कारण बालक अन्य वस्तुओं पर मूत्र करेगा या दूसरे बालक द्वारा अपने उपर मूत्र करवायेगा। इस अवस्था में स्वयं का शरीर ही प्रेम वस्तु होती है।
- ✓ लिंगावस्था - पांचवे वर्ष के प्रारम्भ से पहले या चौथे वर्ष में लिंग अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। लिबिडो का विकास लिंग अंग में अधिक हो जाता है। लड़कों में शिश्न में अकड़न भी प्रारम्भ हो जाती है। इसी अवस्था में इडीपस ग्रंन्थि भी लड़कों में उत्पन्न होती है। लड़के पिता की अपेक्षा मां को अधिक प्रेम करते हैं। लड़कियों में इलेक्ट्रा ग्रन्थि उत्पन्न होती है। वे मां की अपेक्षा पिता को अधिक प्रेम करती है।
- ✓ अव्यक्तावस्था - उपर्युक्त धन्धों के कारण बालक मां-बाप को खोना भी नहीं चाहता क्योंकि वे उसके रक्षक हैं, वह मां-बाप की बाते करता है। उसे विद्यालय आदि में कुछ शिक्षा मिलती है, जिसमें चरित्र निर्माण, देशभक्ति, सेवा आदि सद्गुणों पर बल दिया जाता है। उनसे उसमें पराअहं विकसित होने लगता है। अव्यक्तता काल में वह चारित्रिक कार्य अधिक करता है। लैंगिक बातों से वह शर्माता है तथा चारित्रिक बातें करने लगता है। वह अपनी लैंगिक मूलप्रवृत्ति का दमन कर लेता है तथा मां-बाप के सामने वह निष्क्रिय भूमिका ही निबाहता है। काम वृत्ति उसके अन्दर अचेतन में रहते हुए भी उसका स्पष्टीकरण नहीं करता। इडीपस शक्ति के दबने से विपरीत लिंग वालों में वह रुचि नहीं लेता। लड़के लड़कियों के साथ नहीं खेलते व लड़कियां लड़कों के साथ नहीं खेलती।

- किशोरावस्था- किशोरावस्था या 12 वर्ष का होने पर बालकों में विशिष्ट विकास होने लगता है। शरीर व ग्रन्थियों में तीव्र विकास होता है जिससे लिंग में सर्वाधिक लिबिडो केन्द्रित हो जाता है, वे कामोद्दीपक हो जाते हैं। वे आन्तरिक रूप से विपरीत लिंग वालों में रुचि लेने लगते हैं। वे सामाजिकता को भी बनाये रखते हैं तथा मां-बाप से सम्बन्ध ठीक रखते हैं।

- युवावस्था - युवावस्था उन्नीस वर्ष की आयु के बाद प्रारम्भ होती है तथा किशोरावस्था का ही प्रसार है। व्यक्ति युवा होने से उसमें लैंगिक परिपक्वता आ जाती है, वह शादी करता है वह गृहस्थी बसाता है। लिबिडो लिंग में केन्द्रित रहती है। वह मां बाप के प्रति क्रान्ति कर सकता है वह जीवन स्वतन्त्र रूप से बिता सकता है।

(9) युवावस्था (Personality) - सन् 1921 में फ्रॉयड ने व्यक्तित्व का नया सिद्धान्त दिया। वह वन जिजीविषा तथा मरणवृत्ति के बीच गत्यात्मक अन्तर्परतन्त्रता का था। दूसरे वह चेतन, अचेतन व अग्रचेतन कार्यो को भी वर्णित करता था। फ्रॉयड ने शारीरिक व लैंगिक भेदों को भी महत्ता दी, जिससे पुरुष व स्त्री में भिन्न-भिन्न रूपों द्वारा कामवृत्ति कार्य बताया जो शारीरिक व मानसिक जीवन को जोड़ने का कार्य करते हैं। उन्होनें माता-पिता व शिक्षा के प्रभाव को बालक व्यक्तित्व विकास में दर्शाया। इस प्रकार उनके सिद्धान्त में जीवन अनुभवों को महत्ता दी गई।

- इद - इद वह मूलप्रवृत्ति हैजो बालक में जन्म से ही विद्यमान रहती है। वह शारीरिक विकास से सम्बन्धित रहती है। ये शारीरिक आवश्यकताएं उसको मानसिकता की उत्पत्ति का ज्ञान कराती हैं। वह जीवन उद्देश्य बताती है। वह शारीरिक तनावों को दूर करती है। वह शारीरिक सुख के कार्य ही करती है। इसी कारण उसे सुख नियम द्वारा संचालित कहा जाता है।

- फ्रॉयड ने अहं को लाभकारी बताया है। व्यक्तितव निर्माण में उसकी प्रमुख भूमिका होती है। अहं वास्तविकता का ज्ञान तो कराता है ही साथ ही वह वाक् व तर्क शक्ति भी बढ़ाता है। मांसपेशीयों पर भी नियन्त्रण करता है।

- पराअहं - पराअहं का वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता है, इसलिये यह जो पूर्णता की मांग करता है, वह पूर्णत: अवास्तविक होता है।

(10) रक्षा युक्ति - फ्रायड ने रक्षा युक्तियों के बारे में भी लिखा है। सन् 1894 में उन्होंने आठ प्रमुख रक्षा युक्तियों को बताया। बाद में उन्होनें व उनके शिष्यों ने उन्हें बढ़ाकर सत्रह कर दिया। व्यक्ति मूल प्रवृत्तिक कार्य को सामाजिक वास्तविकता के भय से सीधे सन्तुष्ट नहीं करता क्योंकि उसकी सन्तुष्टि समाज अनुमोदित नहीं होती। वह दूसरा माध्यम अपनाता है जो समाज द्वारा अनुमोदित होता है। इससे व्यक्ति तात्कालिक चिन्ता से मुकत हो जाता है। जैसे भूख लगने पर व्यक्ति दूसरे की रोटी चुरायेगा नहीं क्योंकि चोरी सामाजिक रूप से अनुमोदित क्रिया है, वह भीख मांग सकता है जो कि सामाजिक रूप से अनुमोदित क्रिया है।

9.3 मनोवैज्ञानिकों का योगदान

ऑटो रैन्क का इच्छा सिद्धान्त

फ्रायड के शिष्य ऑटो रैंक जो कि मनोविश्लेषण को बहुत मानते थे, ने अपना सिद्धान्त दिया। उस सिद्धान्त को फ्रॉयड ने बहिष्कृत किया, लेकिन मनोविज्ञान में मनुष्य को समझने की एक विधि रैन्क ने सुझाई। रैन्क के विचार निम्नलिखित थे-

(1) चिन्ता – मनुष्य के लिए जन्म सबसे बड़ी चिन्ता है। अन्य चिन्ताएं जन्म से उत्पन्न होती हैं व उससे छोटी हैं। मां की कोख में जन्म से पूर्व बालक शान्ति से दिन बताता है, उसे कुछ नहीं करना पड़ता है। जन्म लेते ही उसका स्वतन्त्रतजीवन प्रारम्भ होता है। उसे सर्दी, गर्मी, भोजन, पानी आदि की चिन्ताएं सताने लगती हैं। इसलिए वह जन्म से पहले की दशा में ही जाना चाहता है। स्वतन्त्र जीवन को रैन्क ने वैयक्तीकरण कहा हैं।

(2) आवेग - हर शिशु में आवेग रहता है। वह हर वस्तु के प्रति प्रतिक्रिया करके शक्ति निरसन करता है। प्रतिक्रिया न होने से दुख, व प्रतिक्रिया होने से वह सुख का अनुभव करता है।

(3) संवेग - जब शिशु को प्रतिक्रिया करने में बाधाएं होती हैं तो आवेग रुकता है। उससे संवेग उत्पन्न हो जाते हैं। रैंक ने दो प्रकार के संवेग बताये, संयोगी जैसे-प्रेम, दया आदि व पृथक्करण, जैसे- गुप्ता, भय, आक्रामकता आदि।

(4) इच्छा - व्यक्तिगतता व यूथचारिता, पृथक्करण व एकीकरण में द्वन्द्व से इच्छा उत्पन्न होती है। व्यक्तिगतता तब तक नहीं आ सकती, जब तक कि वह मां से अलग न हो, सामाजिक दबावों द्वारा समूहों से अलग न हो तथा लिंग का जैविक दबाव न हो।

(5) विकास अवस्थाएं - रैंक ने तीन विकास अवस्थाएं बतायीं जो बालक में शारीरिक बढ़ोतरी व वैयक्तिकरण करती हैं।

- प्रथम अवस्था में बालक मां-बाप के मानकों व प्रतिबन्धों तथा अपने शारीरिक व लैंगिक दबावों के बीच सामन्जस्य स्थापित करता है।
- बालक अपने सम्प्रत्यय व विचार विकसित करता है। उसका अपना ही दर्शन होता है जिससे आत्म आलोचना व हीन भावना उत्पन्न होती है।
- व्यक्ति सृजनात्मक विकसित करता है। इस अवस्था में उपर्युक्त अवस्थाओं की त्रुटियां समाप्त हो जाती हैं।

(6) व्यक्तित्व प्रकार - रैंक ने व्यक्तित्व के भी तीन प्रकार बताये- औसत, मनस्तापी व सृजनात्मक।

(7) समाज व संस्कृति - रैंक ने समाज व संस्कृति की रचना का विचार दिया। उन्होनें प्राचीन समाजों का विश्लेषण करने के बाद अपने विचार दिये। समाज पहले मातृप्रधान था। पिता की भूमिका उसमें गौण थी। फिर भी मनुष्य सदा जीना चाहता था। उसे मृत्यु का भय था। इडीपस दन्त कथा का उदाहरण देते हुए रैंक ने बताया कि इडीपस का पिता लेयस इसी भावना के कारण उत्तराधिकारी नहीं चाहता था। उनसे इडीपस को देश निकाला दे दिया, जिससे वह स्वतन्त्र रह सके। यहां अहं व इद के बीच संघर्ष होता है, अहं आमरणता का तथा इदं जाति विकास के लिए लैंगिकता का।

रैन्क ने मातृ प्रधान व पितृ प्रधान संस्कृतियों का वर्णन किया। प्राचीन मिस्त्र की संस्कृति मातृप्रधान थी। उसमें मृत्यु के बारे में विशेष धार्मिक बात थी। इसी से वे मृत शरीर को सुरक्षित रखते थे। बाद में सूर्य की पूजा होने लगी। सूर्य को शिशु जन्म से जाना जाने लगा। सभी संस्कृतियों में स्त्री दमन को माना गया। पुरुष प्रधान संस्कृति में वह और भी बढ़ा।

मूल्यांकन

रैंक अधिकतर बातों में फ्रॉयड से प्रभावित थे तथा उन्हीं के ही विचारों को दुबारा अपने ढंग से पेश किया। उनके सिद्धान्त के विचार मनुष्य प्रकृति पर आधारित न होकर प्राचीन इतिहास पर अधिक आधारित थे। रैंक दूसरे प्रकार के कारणवाद को मानते थे जिसमें सृजनकर्ता स्वयं अपना ही कारण होता है। सजृनात्मकता का उनका विचार कुछ भिन्न था, वैसा नहीं जो वस्तु या विचार सृजन में आज

प्रयोग होता है। रैंक का जीवन भय व स्त्रीलिंग स्थान भय का वर्णन एक अजीबोगरीब लगता है। उनका स्त्री भूमिका वर्णन कुछ अधिक ही बढ़ा-चढ़ा जा सा लगता है।

नोट:- मनोविश्लेषणवादी एडलर, कार्ल युंग तथा हार्नी - देखे इकाई - 7

बोध प्रश्न

1- फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त को समझाइये।

2- फ्रायड ने इच्छाओं को मारने को किस गुण द्वारा वर्णित किया है।

9.5 नव-मनोविश्लेषणवादी

फ्रॉयड के काल में ही या उनकी मृत्यु के बाद कुछ समाजशास्त्री व नृवैज्ञानिक उनके विचारों से प्रभावित हुए। उन्होंने विभिन्न समाजों, जनजाति व सभ्य समाजों के लोगों के व्यवहारों का अध्ययन करके फ्रॉयड के सम्प्रत्ययों को परखा तथा उन्हें अपने विचारों में वर्णित किया। उनमें प्रमुखत: क्लीन, फेरेन्जी, अलेक्जेण्डर, रीच, अब्राहम, कार्निडर तथा लिण्टन आदि सम्मिलित हैं। उन्होंने अपने कोई विशेष सिद्धान्त तो नहीं दिये बल्कि व्यवहारों में मनोविश्लेषण सम्प्रत्ययों का ही पता लगाकर उनकी सत्यता ज्ञात करनी चाही। उनके योगदान की संक्षिप्त विवेचना निम्नलिखित हैं-

मेलेनी क्लीन

क्लीन एक ब्रिटिश बालमनोवैज्ञानिक चिकित्सक थी। उन्होंने फ्रॉयड के विचारों को अपनाया तथा उनके आधार पर बालकों पर अध्ययन किया। इन अध्ययनों के आधार पर ही उन्होंने अपने विचार 1937 में दिये जो निम्नलिखित हैं-

1- आवेग - क्लीन का विचार था कि आक्रामक आवेग जीवन का प्रमुख आवेग होता है। उससे ही जीवन का निर्माण होता है। आवेग मनुष्य का प्रमुख सोपान है। वह पहले उसे अपने उपर तथा बाद में मां-बाप व अन्य वस्तुओं पर अजमाता है।

2- आवेग प्रकार - क्लीन का विचार था कि एक वर्ष से कम के शिशु में आक्रामकता या मुख परपीड़न आवेग रहता है, तथा उसका हर कार्य उसी से निर्धारित होता है। इसी गुण के कारण वह अपनी मां को समाप्त करना चाहता है। इस कार्य में वह अपने सम्पूर्ण शरीरांगों का प्रयोग करता है। वह मुख से काटता है, नाखूनों से नोंचता है, गुदा से मल व लिंगेन्द्री से मूत्रक करे विभिन्न विधियां उसी भावना के कारण अपनाता है।

3- व्यक्तित्व निर्माण - क्लीन ने बताया कि बालक का व्यक्तित्व एक वर्ष की आयु से निर्मित होना शुरु होता है।

4- पराअहं - जब मां बालक के आक्रामक आवेग को शान्त करती है तो उसकी मूलप्रवृत्ति की आवश्यकता पूर्ण होती है, जैसे स्तनपान द्वारा क्षुधा समाप्त होना। इससे शिशु में मां के प्रति प्रेम व भय दोनों उत्पन्न होने लगते हैं। उनसे शिशु में पराअहं उत्पन्न होने लगता है।

5- अवसाद - एक ओर शिशु मां को निगलना चाहता है तथा दूसरी ओर उससे डरता भी है। इससे बालक में अवसादी दशा उत्पन्न हो जाती है।

6- इडीपस ग्रंन्थि - क्लीन का विचार था कि शिशु में इडीपस ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है। अहं की उत्पत्ति के कारण अपनी इच्छाओं व संवेगों को वह प्रक्षेपित करता, हटाता व बांटता है। इसी के साथ उसकी हीनता भी बदलती है, जिससे उसकी रुचियां बदलने लगती हैं।

सैण्डोर फ्रेरेन्जी

फ्रेरेन्जी ने मूलप्रवृत्तियों का नया मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त दिया। उनकी विचारधाराएं निम्नलिखित थीं, जो उन्होंने अपनी 1916 व 1938 में प्रकाशित पुस्तकों में दीं।

(1) विकास दशाएं - फ्रायड की भांति ही फ्रेरेन्जी ने विकास की चार दशाएँ बतायीं जिनके द्वारा व्यक्ति वास्तविकता का प्रत्यक्षण करके अपना निर्माण कर पाता है। वे निम्नलिखित हैं - अशर्त सर्वशक्तिमान, विभ्रांति-जादू सर्वशक्तिमान, जादू भंगिमा सर्वशक्तिमान तथा विचार व शब्द जादू

- अशर्त शक्तिमान -प्रसवपूर्व स्थिति में शिशु की सभी आवश्यकताएं स्वत: ही पूर्ण हो जाती हैं। उसे उनकी पूर्ति के लिए कुछ करना नहीं होता। इसी कारण वह अपने को सर्वशक्तिमान समझता है।
- विभ्रान्ति जादू सर्वशक्तिमान - शिशु अवस्था में जब वह चाहता है वह मांगता है, तो उसकी सभी आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती हैं, जैसे भूख लगने पर रोते ही मां उसे दूध पिला देती है और उसकी भूख समाप्त हो जाती है।
- जादू भंगिमा सर्वशक्तिमान - बाल्यकाल में उसे कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है जिससे उसमें निराशा व कुंठाएं पैदा होती हैं। उसकी सभी मांगे पूर्ण न होने के कारण वह रोता, मचलता, हाथ-पैर फेंकता, रुठता गुस्सा होता, मारता-पीटता, कहना न मानना आदि विभिन्न प्रकार की मुद्राएं बनाता है। इससे वह अपनी कुण्ठाओं व निराशाओं को जीतना चाहता है।
- विचार व शब्द जादू - जब बालक बड़ा होता है तो वह चतुराई सीख जाता है तथा ऐसे शब्द बोलकर काम चलाता है जिनसे अनय लोग प्रभावित हो जायें और उसकी मांग पूर्ण हो जाये, जैसे वह चापलूसी करना सीखता है।

(2) सहभागिता - रोगियों के मानसिक रोग का उपचार करने के अनुभव से रोगी व चिकित्सक के सम्बन्ध को फ्रेरेन्जी पहचानते थे। उनका विचार था कि उन दोनों में वास्तविक सम्बन्ध स्थापित होता है। उन्होनें इस कार्य के लिए सहभागिता विधि अपनाई, जिसमें रोगी व चिकित्सक दोनों का ही परस्पर साथ-साथ योग रहता है।

(3) शक्ति - फ्रेरेन्जी का विचार था कि लैंगिक शक्ति सभी तनावों को किसी न किसी अंग में उत्पन्न करती है। शरीर के हर अंग में दो प्रकार की शक्तियां होती हैं- एक तो उपयोगिता

कार्य करने वाली तथा दूसरी आधिक्य या फालतू शक्ति। लैंगिक शक्ति आधिक्य शक्ति है, जो किसी कार्य में न आ सकी। वह सन्तुष्टि के लिए हर समय उद्यत रहती है।

(4) सन्तुष्टि - फ्रेरेन्जी ने जीव द्वारा अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की दो विधियां बतायी- स्वानुकूला व बाह्यनुकूला। स्वानुकूलता में व्यक्ति स्वयं बदलता है। विकास, चाहे वह स्वयं के लिए हो या जाति के लिए, आन्तरिक सामंजस्य द्वारा होता है। उसके शरीर के अन्दर के सभी परिवर्तन चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक सामंजस्य के लिए ही होते हैं। बाह्यनुकूलता द्वारा व्यक्ति बाह्य पर्यावरणीय परिस्थितियों, जैसे-भोजन, तापक्रम, त्वचा, रंग, आदि के साथ सामंजस्य करता है। यह कार्य था तो शरीर से कुछ-कुछ परिवर्तन करके या वातावरण में परिवर्तन करके किये जाते हैं, जैसे जीव मौसम में सर्दी या गर्मी बढ़ने से बिल या मांद या मकान या झोंपड़ी, या गुफा आदि बनाकर रहते हैं।

फ्रेज अलेक्ज़ेण्डर (Franze Alexander)

अलेक्ज़ेण्डर ने भी फ्रायड के कुछ विपरीत विचार दिये। उन्होंने अपना सदिश सिद्धांत मनोविश्लेषण का सहारा लेकर ही दिया। अलेक्जेण्डर के विचार निम्नलिखित थे, जो उनकी 1948 में प्रकाशित पुस्तक में मिलते हैं-

1- मन - अलेक्जेण्डर का विचार था कि व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक विश्लेषण एक ही वस्तु के दो उपागम हैं। मन के कार्य भी शारीरिक होते हैं। उन्हें भौतिकशास्त्र तथा रसायनशास्त्र द्वारा वर्णित किया जा सकता है।

2- शक्ति - जीवन को अलेक्जेण्डर सदा शक्ति का आयात, संचयन व खर्च ही मानते थे। शक्ति के आधार पर ही जीवन में तीन सदिश होते हैं। एक तो शक्ति को भोजन व ऑक्सीजन के रूप में प्राप्त करना होता है। दूसरा विकास के लिए शक्ति को इकट्ठा करना होता है। तीसरा जीवन निर्वाह, क्षतिपूर्ति, तापक्रम बनाये रखने तथा अन्य क्रियाओं में शक्ति का उपयोग करना होता है।

3- व्यक्तित्व - अलेक्जेण्डर ने व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये - जठरीय, कब्जीय, व वृहदांतशोधीय। भोजन नलिका का उपरी भागम ही शरीर के लिए शक्ति को प्राप्त करने वाला सबसे उत्तम अंग है। जिस व्यक्ति का वह अंग उत्तम हो वह खूब खायेगा व पचायेगा तथा उससे ही अधिक शक्ति उत्पन्न करेगा। इस प्रकार का व्यक्ति जठरीय व्यक्तित्व वाला होगा। भोजन नलिका का बीच के भाग का कार्य शक्ति का संचय करना होता है। जिनमें छोटी आंत अधिक प्रबल कार्य करे वे लोग कब्जीय व्यक्तित्व वाले होते हैं। वे शक्ति संचयन करते हैं। जिन लोगों में भोजन नलिका का नीचे का भाग प्रबल हो वे शक्ति निरसन अधिक करते हैं। उन्हें वृहदांत्रशोधीय व्यक्तित्व वाले व्यक्ति कहते हैं।

4- भूख - अलेक्जेण्डर ने भूख को लैंगिक नहीं माना अर्थात् खाना खाना प्रेमवृत्तिक नहीं है, परन्तु अंगूठा चूसना, सिगरेट पीना आदि को उन्होंने मुख लैंगिक माना।

5- सामाजिकता - अलेक्जेण्डर ने सामाजिक घटकों की महत्ता को पहचाना। वे व्यक्तित्व निर्माण में वंशानुगतता के अतिरिक्त कुटुम्ब व समाज का कार्य भी मानते थे। व्यक्ति का पर्यावरण उसके व्यक्तित्व विकास में यौगिक होता है।

विलहैम रीच

कई बातों में रीच फ्रायड से भी आगे बढकर मनोविश्लेषणात्मक हो गये। उन्होंने समाज की महत्ता को भली भांति समझा तथा प्रभावों के आधार पर ही अपने विचार दिये। उनके विचार निम्नलिखित हैं :-

1- लिबिडो - लैंगिक शक्ति ही मानसिक स्वास्थ्य निर्माण में प्रमुख होती है। लैंगिकता के आधार पर ही वयक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

2- समाज आर्थिक व्यक्ति- रीच ने अपने तो कोई व्यक्तित्व प्रकार नहीं बतायें, परन्तु उनका यह दृढ़ विचार था कि व्यक्तित्व निर्माण समाज आर्थिक परिस्थितियों से होता है। जिस समाज की जैसी समाज आर्थिक स्थिति होगी, वह व्यक्तियों को वैसा ही बना देता है।

3- चरित्र - रीच ने चरित्र निर्माण का विचार भी सामाजिक परिस्थितियों द्वारा ही माना। प्रत्येक समाज अपने लोगों में एक विशिष्ट चरित्र उत्पन्न करता है। यह चरित्र निर्माण इस बात पर अधिक निर्भर करता है कि उसके द्वारा लोग उस पर्यावरण मे संरक्षण की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें, जैसे- अधिकारी वर्ग के लोग शिक्षा पर बल देंगे। वे शिक्षण संस्थाएं खोलेंगे, जिनके द्वारा वे अधिकार जमा सकें। मजदूर वर्ग शिक्षा की नहीं सोचता क्योंकि उसे उससे कोई लाभ नहीं, उसे तो मजदूरी ही करनी है। यह भावना पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोगों में घर कर जाती है और उनमें उसी प्रकार के चरित्र भर देती है।

कार्ल अब्राहम

कार्ल अब्राहम फ्रॉयड के विचारों को कट्टर रूप में मानने वाले थे। उन्होंने 1913 में अपनी पुस्तक प्रकाशित की जिसमें नृवैनिक विचारों को मनोविश्लेषण द्वारा वर्णित किया गया है।

इडीपस - कई जनजाति व्यवहारों का वर्णन करने में अब्राहम ने इडीपस ग्रन्थि की प्राथमिकता दर्शायी। मैलीनोविस्की, जो नृवैज्ञानिक थे, ने अपनी पुस्तक में ट्रोब्रियण्ड टापू की जनजातियों की व्यवहार वर्णित किये। उन्हीमें अब्राहम ने मातृप्रधान व पितृप्रधान समजों में इडीपस ग्रन्थि की भिन्नता बताई। उन्होनें कई नृवैज्ञानिक जैसे - मीड, बातेसन आदि को उसी विचारधारा को अपनाने पर बाध्य कर दिया।

अन्ना फ्रायड

फ्रॉयड की बेटी अन्ना अपने पिता के विचारों से पूर्णत: सहमत रहीं। सन् 1946 में उनकी प्रकाशित पुस्तक में फ्रॉयड की मृत्यु के बाद उन्होनें केवल दो बातों का ही वर्णन किया।

1- अहं - वे रक्षा युक्तियों का आधार अहं में ही मानती थीं। सभी रक्षा युक्तियां केवल अहं के रक्षण के कारण होती हैं। व्यक्ति अहं को आघात से बचाना चाहता हैं इसी कारण वह परिवर्तित व्यवहार करता है। उसी को रक्षा युक्ति कहते हैं।

2- रक्षा युक्ति - उन्होंने कई रक्षा युक्तियों का सृजन भी किया। फ्रॉयउ ने प्रारम्भ में केवल सात रक्षा युक्तियों का वर्णन दिया था। अन्ना ने उन्हें सत्रह तक पहुंचाने में बड़ा योग दिया।

एब्राहम कार्डिनर

कार्डिनर एक नृवैज्ञानिक थे, ने भी समाज की दशा को समझा तथा अपनी 1939 में प्रकाशित पुस्तक में अपने कुछ मनोविश्लेषणात्मक विचार दिये जो समाज दशा पर ही आधारित थे। वे निम्नलिखित थे-

1- बाल्यकाल - कार्डिनर ने व्यक्ति के बाल्यकाल को महत्वपूर्ण माना। उनका विचार था कि बाल्यकाल में बाल के सभी मूल्य व अभिवृत्तिया निर्मित हो जाते हैं जिन्हें वह सदा ढ़ोता रहता है। वे मूल्य व अभिवृत्तियां वह अपने सभी पर्यावरणों के आधार पर ही निर्मित करता है।

2- व्यक्तित्व - व्यक्ति का व्यक्तित्व कुटुम्ब के अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। उन अनुभवों में एक तो बलक के माता पिता आदि कुटुम्बियों के साथ सम्बन्ध तथा दूसरे बालक की पोषण विधियां प्रमुख हैं।एक से ही मां बाप वाले दो अलग अलग कुटुम्बों के बालकों के व्यक्तित्व एक से ही होंगे। कार्डिनर ने इसे मूल व्यक्तित्व कहा। यदि दो समाजों में बालक की पालन पोषण विधियां एक जैसी ही हैं तो उनके बालकों के व्यक्तित्व भी एक जैसे ही होंगे। इसे कार्डिनर ने व्यक्तित्व समग्रता कहा। लोगों ने भिन्न व्यक्तित्व भिन्न भरण पोषण के कारण ही बनते हैं।

3- संस्कृति - कार्डिनर ने संस्कृति का ही वर्णन किया है। उनके विचारानुसार संस्कृति में संगठित एकत्रित लोगों का होना आवश्यक है जिनके कि एक से ही विचार, व्यवहार, रीति-रिवाज, धार्मिक चलन, विश्वास, जीविकोपार्जन के साधन, नियम व कानून, बाल पोलन पोषण विधि आदि होने चाहिए।

4- संस्थाएं - सभी संस्कृतियों में संस्थाएं होती हें। इन संस्थाओं के समान आचार िचार को उसके सभी सदस्य मानते हैं। उन आचार विचारों को न मानने पर लोगों में मानसिक विचलन उत्पन्न हो जाता है जो मनस्तपी होता है। इस संस्थाओं की समानताएं ही संस्कृतियों को पास तथा असमानताएं दू रखती हैं।

5- संस्था अध्ययन - कार्डिनर ने यह विचार दिया कि सभी संस्कृतियों का अध्ययन करना चाहिए। इस कार्य को करने के लिए उनकी विभिन्न संस्थाओं के बारे में प्रदत्त एकत्रित करने चाहिए। इन प्रदत्तों को एकत्रित करने के लिए कार्डिनर,ने प्रक्षेपण विधि तथा जीवन इतिहास विधि का प्रयोग किया। फ्रॉयड इस प्रकार की विधियां प्रयोग नहीं कर पाये।

6- इडीपस - कार्डिनर इडीपस ग्रन्थि को मानते थे। उनका विचार था कि इडीपस सभी संस्कृतियों व समाजों में समान नहीं होती। उन्होंने मारक्विसन्स व टनाला जनजातियों में इसे समझाया भी। मारक्विसन्स में औरतों की संख्या अधिक होती है। उसमें औरतों की स्थिति उच्च होने के कारण उनमें इडीपस का विकास भी भिन्न ही होगा, परन्तु वहां पिता ही पालक व रक्षक होने के कारण बालक उसे अधिक चाहते हैं। मां का वहां तिरस्कार सा ही होता है। इस कारण इडीपस कम शक्तिशाली उत्पन्न होता है। दूसरी ओर टनाला जनजाति के बच्चे कम आक्रामक होते हैं, वे मां-बाप का आदर करते हैं। बाल्यकाल में उन्हें मां शिक्षण व पालन पोषण करती है, मारती व फटकारती भी है। वहां के बच्चे मलमूत्र निगमन शिक्षा के कारण दमित हो जाते हैं। उनमें इडीपस कुछ बढ़ जाता है।

7- कार्डिनर व्यक्तित्व निर्माण में केवल पर्यावरण की ही महत्ता को मानते थे न कि वंशानुगत को। वे फ्रॉयड की व्यक्तित्व विकास दशाओं को भी नहीं मानते थे। उनका विचार था कि वे दशाएं व्यक्तित्व विकास नहीं करती, केवल पर्यावरणीय घटक ही यह कार्य करते हैं।

8- विकास अवस्था - फ्रॉयड का विचार था कि मुख अवस्था के कारण जो कुंठा उत्पन्न होती है, उससे बालक अंगूठा चूसता है। कार्डिनर इस बात से सहमत नहीं थे। उन्होनें मारक्विसन्स जनजाति के बच्चों में अंगूठा चूसना बिल्कुल नहीं पाया। यद्यपि उन बच्चों को मुख अवस्था के बाद ही मां का दूध पीना बन्द करा दिया जाता है क्योंकि वहां की औरतों स्तनों की सुन्दरता ककको बालक को अधिक दिनों तक दुध पिलाकर समाप्त करना नहीं चाहती। फिर भी बच्चे अंगूठा चूसना नहीं सीखते। कार्डिनर ने अंगूठा चूसने का कारण आर्थिक चिन्ता बताया न कि विकास दशा। निर्धन बालकों में भोजन अभाव के कारण अंगूठा चूषण उत्पन्न हो जाता है।

9- लैंगिक शक्ति - लैंगिक शक्ति के बारे में भी कार्डिनर के विचार दृढ़ थे। लैंगिक कार्यो को आस्थगित किया जा सकता है। उन्हें प्रतिस्थानिक रूप से संन्तुष्ट भी किया जा सकता है। लैंगिक शक्ति को लैंगिक सन्तुष्टि के अतिरिक्त अन्य कार्यो में उदात्तीकरण द्वारा भी लगाया जा सकता है, जैसे - लेखन, गायन आदि।

10- भोजन चिन्ता - कार्डिनर का विचार था कि सभी समाजों में भोजन चिन्ता सदा बना रहती है। हर संस्कृति में खाने के तौर तरीके भिन्न भिन्न रहते हैं। संस्कृति की हर संस्था में क्या, कैसे तथा कब खाना है, का एक अपना ढंग होता है। उसे ही प्राप्त करने में मनुष्य लगा रहता है। भोजन चिन्ता लोगों के व्यवहारों को प्रभावित करती रहती है। हर समाज में आर्थिक दबाव कई प्रकार से कार्य रहता है। एक ही प्रकार का आर्थिक दबाव हर संस्कृति में एक सा प्रभाव उत्पन्न नहीं करता। यह संस्कृति के विकास व दशा पर निर्भर करता है कि वह दबाव को कितना ग्रहण करती है।

राल्फ लिण्टन

लिण्टन भी नृवैज्ञानिक थे। उन्होंने कार्डिनर की भांति ही विचारों को रखा जो संस्कृति का मनोविश्लेषणात्मक वर्णन देते थे। उनके प्रमुख विचार निम्नलिखित हैं-

1- भोजन चिन्ता - लिण्टन कार्डिनर के भोजन चिन्ता के विचार से पूर्णत: सहमत थे। उन्होनें भी मारक्विसन्स जनजाति में भोजन चिन्ता का आधिक्य वर्णन करते हुए बताया कि उस द्वीप में प्राय: सूखे की स्थिति आती रहती है। पीने के पानी की भी वहां कमी रहती है। अनाज को लोग लोक भण्डारों में इकट्ठा कर देते हैं जो कि आपात स्थितियों में ही वितरित किया जाता है। वे लोग खाने की मात्रा के बारे में अधिक ध्यान देते हैं कि न गुण पर। इस कारण उन्हें भोजन जुटाने की चिन्ता बनी रहती है।

2- नरभक्षण चिन्ता - लिण्टन का विचार था कि भोजन चिन्ता की भांति ही लोगों में नरभक्षण की भी चिन्ता रहती है। भोजन की कमी के कारण वे सोचते हैं कि कोई दूसरा आदमी उन्हें मार कर न खा जाये। अपनी सुरक्षा के कारण वे कई संस्थाए खोलते हैं तथा कई रीति-रिवाज भी अपनाते हैं। खाने की कमी से मारक्विसन्स लोग दुश्मनों को या दूसरी जनजाति के लोगों को मारकर खा जाते हैं। वैसे वे ऐसा कम ही करते हैं।

3- रीति रिवाज - मारक्सिवन्स में दस साल का बच्चा भी अपने हाथों खाना बनाना प्रारम्भ कर देता है। इसके अतिरिक्त औरतों और मर्दों के लिए अलग-अलग बर्तन व चूल्हों पर खाने बनते हैं। कुछ प्रकार के खाने कुछ लोग ही खा सकते हैं, अन्य नहीं। यदि लोग चोरी करते हैं तो वह खाने की ही करते हैं, अन्य वस्तु की नहीं। भोजन की कमी ने ही उनके खाने की आदतें व रीति-रिवाज बना दिये।

4- विकास - लिण्टन का विचार था कि भोजन की कमी ही वहां के लोगों में स्वकाय दुश्चिन्ता उत्पन्न करती है। इससे उनके व्यक्तित्व का विकास भी वैसा ही होता है-स्वकाय दुश्चिन्तापूर्ण।

5- इडीपस - टनाला लोगों में पिता व बड़े लड़के ही स्वतंत्रता पाते है, अन्य उन पर अधिक आश्रित रहते है। इससे वे पिता के दबाव में रहते हैं हर बच्चा पिता का अनुमोदन पाने की कोशिश करता है। इससे उनमें प्रतिस्पर्धा शक्ति बढ़ती है। अधिक प्रतिस्पध्र्ाी बालक अपनी प्रतिष्ड्ा व स्तर बढ़ा लेता है। इस कारण छोटे लड़को में तनाव बना रहता है। इससे वे आपस में तो झगड़ते है परन्तु पिता से डरते है। वे पिता के प्रति आक्रामकता दर्शा सकते हैं, परन्तु या तो उसे वे विनिवर्तन या अधीनता द्वारा। इससे उनमें इडीपस ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है।

9.6 मनोविश्लेषणवाद तथा नव- मनोविश्लेषणवाद में अन्तर

मनोविश्लेषणवाद की आधारशीला फ्रायड के योगदान है जिन्हें मनोविज्ञान की अभूतपूर्व धरोहर माना गया है। परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिक ऐसे थे जो फ्रायड के विचारों एवं सिद्धांतों को स्वीकार तो करते थे परन्तु उनमें व्यापक संशोधन की सिफारिश भी करते हैं। इनमें हार्नी (Horney), फ्रोम (Fromm), सुल्लीभान (Sullivan) तथा इरिकसन (Erikson) के नाम मशहुर है। इन्हें नवफ्रायडवादी/ नव-मनोविश्लेषणवादी कहा गया है। यदि हम मनोविश्लेषणवादी तथा नव-मनोविश्लेषणवादी के मनोवैज्ञानिक योगदानों पर विचार करें, तो इन दोनों में कुछ स्पष्ट अन्तर दिखलाई देगा जो इस प्रकार है -

1- फ्रायड ने जैविक कारकों खासकर यौन मूलप्रवृत्ति को मानव व्यवहार का प्रमुख निर्धारक माना है। दूसरे तरफ, नवफ्रायडवादी सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों को मानव व्यवहार का प्रमुख निर्धारक माना है।

2- फ्रायड के अनुसार दोनों मनोग्रन्थि अर्थात् मातृ-मनोग्रंथि तथा पितृ मनोग्रन्थि को सार्वजनिक माना गया है तथा इसका कारण लैंगिक ईर्ष्या माना है। सार्वजनिक होने के नाते यह सभी मानव जातियों में पाया जाता है। लेकिन कुछ नवफ्रायडियन जैसे- सुल्लीभान, फ्रोम तथा हार्नी का मत था कि ये मनोग्रन्थियां न तो सार्वजनिक हैं और न ही इनकी उत्पत्ति में लैंगिक ईर्ष्या का कोई हाथ होता है। इन लोगों ने यह दावा किया है कि बहुत सारे ऐसे संस्कृति हैं जिनमें पिता एवं पुत्र के बीच संघर्षात्मक प्रतिद्वन्द्विता का कारण परिवार में पिता के सबल स्थान का पुत्र द्वारा विरोध किया जाना होता है।

3- फ्रायड ने चिन्ता को अहं (ego) के असंतोषजनक कार्यों का परिणाम माना था। जब अहं को पराहं (super ego) तथा उपाहं (id) से धमकी मिलता है, तो इससे व्यक्ति में

चिन्ता उत्पन्न होता है। नवफ्रायडियन का विशेषकर हर्नी का मत है कि चिन्ता विशेषकर मूल चिन्ता की उत्पत्ति तब होती है जब बाल्यावस्था से बच्चों में नि:सहायता तथा अलगांव का भाव प्रधान होता है और उससे एक तरह की धमकी एवं विद्वेष की भावना उससे उत्पन्न होता है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि नवफ्रायडवाद द्वारा फ्रायडवाद के मौलिक सम्प्रत्ययों को स्वीकार करते हुये उसे उन्नत बनाने की भरपूर कोशिश की गयी है।

फ्रायडियन मनोविश्लेषण की आलोचनाएँ

फ्रायडियन द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेषण का सम्प्रदाय अपनी लोकप्रियता के कारण काफी चर्चित रहा है। इतना ही नही इसका प्रभाव मनोविज्ञान के कुछ खास-खास शाखाओं जैसे- असामान्य मनोविज्ञान, नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में सर्वाधिक रहा है। इसके बावजूद भी इसकी कुछ आलोचनाएँ की गयी है जिनमें निम्नांकित प्रमुख है -

1- आंकड़ों का जांचनीय न होना - आलोचकों का मत है कि फ्रायड ने अपने सिद्धान्तों एवं संप्रत्ययों का विकास लोगों के व्यक्तिगत प्रेक्षणों के आधार पर किया है। इसमें अधिकांशत: उनके अपने व्यवहार के विश्लेषण के आधारित थे। इसके अलावा रोगियों द्वारा जो कुछ भी कहे गए, उस पर वे आँख मुन्दकर विश्वास किये और अपने सिद्धान्त का उसे आधार बनाया। इन सभी तरह के प्रेक्षणों से जो आँकड़े उन्हें मिले, उनका सत्यापन करना मुश्किल है। आलोचकों का यह भी मत है कि स्नायुविकृत लोगों के मानसिक संघर्ष, स्वप्न आदि के विश्लेषण से सामान्य व्यक्ति के मनोविज्ञान को समझना एक टेढ़ी खीर है। इसके तथ्यों को मात्र विश्वास पर स्वीकार किया जा सकता है न कि प्रयोगात्मक सत्यापन के आधार पर।

2- असत्यापित सैद्धान्तिक संप्रत्यय - फ्रायड के सिद्धान्त एवं प्राक्कल्पनाओं के विशेष स्वरूप के कारण उनको सत्यापित करना तो मुश्किल है। फलत: उन्हें मात्र एक असत्यापित सैद्धान्तिक संप्रत्यय के रूप में ही स्वीकार करने की बाध्यता है। जैसे- पराहं तथा मानसिक ऊर्जा का संप्रत्यय ऐसा ही है जिसकी प्रयोगात्मक जांच करके उनकी वैधता को स्वीकृत या अस्वीकृत करना मुश्किल है।

3- कल्पित संप्रत्यय - कुछ आलोचकों का मत है कि फ्रायड जरूरत से ज्यादा पुराण विद्या पर निर्भर थे। इनका सबसे उत्तम उदाहरण उनके द्वारा प्रतिपादित मातृ मनोग्रंथि है। आलोचकों ने फ्रायड के इस दावे की हंसी उड़ायी है कि एक अपरिपक्व बालक के अचेतन में अपने मां से लैंगिक सम्बन्ध के जन्मजात विचार होते है। ऐसी हंसी उनके अन्य संप्रत्ययो जैसे - बधिया की चिन्ता, शिश्न ईर्ष्या, पितृ मनोग्रंथि आदि की भी उड़ायी गई है। आलोचकों का मत है कि फ्रायड के ये सारे संप्रत्ययों का आधार कोई वैज्ञानिक तथ्य न होकर पौराणिक कथाएँ हैं जो सर्वथा अमान्य हैं।

4- परिमापन की कमी - यह आलोचना स्कीनर द्वारा की गयी है। स्कीनर का मत है कि फ्रायड ने किसी भी मानव व्यवहार के स्वरूप को कोई निश्चित आयाम नहीं बतलाया है। वे मात्र स्मृति, विचार आदि के बारे में बातचीत किये हैं। इसके किसी भी इकाई का वर्णन नहीं किया है जिसका सही-सही मापन किया जा सके। उनके कुछ संप्रत्यय जैसे लिबिडो या कैथेक्सिस ऐसे प्रमुख संप्रत्ययो में से है जिसे आयामहीन कहा जा सकता है। फलस्वरूप,

उनका मापन सम्भव नहीं है। जब उन्हें मापना ही सम्भव नहीं है, तो उसे आधार बनाकर किसी प्रकार का सामान्यीकरण करना अर्थहीन है।

5- मध्यवर्ती चर - यह आलोचना स्कीनर द्वारा ही कि गई है। स्कीनर का मत है कि फ्रायड मानव व्यवहारों को करने के लिए मध्यवर्ती चरों की ओर जरूर झुके परन्तु उनके मौलिक कारणों की उपेक्षा करके। जैसे- फ्रायड की व्याख्या के अनुसार व्यक्ति में दोष भाव का कारण पराहं (जो स्वभावत: एक मध्यवर्ती चर है।) का दंड होता है। ऐसा तभी हो सकता है कि व्यक्तियों में दोष भाव का कारण बाल्यावस्था में दुश्चिता से अत्यधिक अनुबन्धन हो जिसका कभी भी विलोपन नहीं हुआ हो।

6- यौन पर अत्यधिक बल देना - फ्रायड की आलोचना इसलिए भी की गयी है कि उन्होंने मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों में जरुरत से ज्यादा लैंगिक सम्बन्धों पर बल डाला गया है। फ्रायड का यह दावा कि लैंगिक इच्छाएँ शिशुओं में जन्म से ही मौजूद रहती हैं, की आलोचना कई लोगों द्वारा ही गयी है।

इन आलोचनाओं के बावजूद फ्रायड के मनोविश्लेषण सम्प्रदाय का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। आज के मनोवैज्ञानिक विशेषकर नैदानिक मनोविज्ञान तथा व्यक्ति के मनोविज्ञान के मनोविज्ञानी उनके योगदानों के प्रति काफी आधारित है और उनके कई संप्रत्यय एवं सिद्धान्त आधुनिक चिन्तन के प्रमुख स्रोत हैं।

बोध प्रश्न

7- युंग ने मन की कौन-कौनसी स्थितियां बताई है।

8- लिण्टन किस प्रकार के वैज्ञानिक थे।

9.8 सारांश

फ्रायड ने मन के दो स्तर बताये है - चेतन व अचेतन। फ्रायड ने मन को तीन भागों में बांटा है - उपाहं, अहं तथा पराहं। उपाहं व्यक्ति का जैविक तत्व होता है। यह जन्मजात होता है, उपाहं अपनी इच्छाओं की तुरन्त पूर्ति करना चाहता है तथा वह उसके परिणाम की चिन्ता कुछ भी नहीं करता है। जब शिशु कुछ बड़ा हो जाता है तो उसके उपाहं की प्रवृतियों से ही अहं का विकास होता है। वह व्यक्ति के पूरे जीवन काल तक वद्धित होते रहता है। अहं मन का वह भाग होता है जिसका सम्बंध वास्तविकता से होता है। पराहं का वास्तविकता से कोई संबंधनहीं होता है। इसलिए यह जो पूर्णता की मांग करता है, वह पूणर्त अवास्तविक होता है। एक सामान्य स्वस्थ व्यक्ति में उपाहं, अहं तथा पराहं तीनों ही समन्वित होते है तथा एक दूसरे के साथ मिलकर कार्य करते है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि नवफ्रायडवाद द्वारा फ्रायडवाद के मौलिक सम्प्रत्ययों को स्वीकार करते हुये उसे उन्नत बनाने की भरपूर कोशिश की गयी है।

9.9 अभ्यास प्रश्न

1- मनोविश्लेषण तथा नव मनोविश्लेषण में अन्तर लिखिए।

2- एडलर व युग के सिद्धान्त की तुलना कीजिए।

3- मनोविज्ञान में हार्नी के योगदान को बताइये।

9.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- डॉ, शर्मा, के.एन. (2002), मनोवैज्ञानिक विचारधाराएँ, एच.पी. भार्गव, बुक हाउस, आगरा
- डॉ. सिंह, अरूण कुमार, सिंह आशीष कुमार, मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, प्रकाशक, दिल्ली
- डॉ. शर्मा रामनाथ (2002), मनोविज्ञान का इतिहास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल अस्पताल रोड़, आगरा - 3
- अशरफ अज़ीमुर्रहमान एवं जावेद (1994) मनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, प्रकाशक दिल्ली।

इकाई -10

चयनात्मक एवं दीर्घीकृत अवधान, उत्तेजन एवं सूचना संसाधन प्रक्रिया तथा चयनात्मक अवधान के सिद्धान्त या मॉडल

Selective and sustained attention, arousal and information processing, theories of selective attention

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 अवधान का अर्थ

10.2 चयनात्मक अवधान का स्वरूप

10.3 दीर्घीकृत ध्यान का स्वरूप

10.4 दीर्घीकृत अवधान के निर्धारक

10.5 चयनात्मक स्वरूप का विस्तृत अध्ययन

10.6 चयनात्मक अवधान के सिद्धान्त या मॉडल

10.7 उत्तेजन सिद्धान्त एवं सूचना संसाधन प्रकिया

10.8 बोध प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी

- अवधान का अर्थ एवं अवधान के प्रकार समझ सकेगे।
- चयनात्मक अवधान का स्वरूप समझ सकेगे।
- दीर्घीकृत ध्यान का स्वरूप तथा दीर्घीकृत अवधान के निर्धारक को समझ सकेगे।
- चयनात्मक अवधान के सिद्धान्त एवं मॉडल को समझ सकेगे।
- उत्तेजन सिद्धान्त एंव सूचना संसाधन प्रक्रिया को समझ सकेगें।

10.1 अवधान का अर्थ

अवधान या ध्यान शब्द का प्रयोग बहुधा हम अपने दैनिक जीवन मे करते है। व्यवहार सिद्धान्त मनोभौतिकी शरीर मनोविज्ञान कागनीटिव. परसेप्चुअल मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों मे ध्यान से सम्बन्धित ज्ञान का विकास तीव्र गति से हुआ है। परन्तु विकास काफी हद तक एक. दूसरे से स्वतन्त्र रूप से हुए है। अवधान से सम्बन्धित ज्ञान का विकास के साथ.साथ विभिन्न क्षेत्रों में अवधान की परिभाषाए भिन्न.भिन्न हैं। अवधान से सम्बन्धित यदि प्राचीन साहित्य को देखा जाए तो इस प्राचीन साहित्य में अवधान की परिभाषाए चेतना के रूप में की गई है।

सरंचनावादी मनोविज्ञान में अवधान की परिभाषा चेतना में उद्धीपकों की स्पष्टता से है। वुण्ट के अनुसार अवधान एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा उद्दीपक चेतना के सीमा प्रदेश से चेतना के केन्द्र मे आता हैं।

बोरिगं (1927) के अनुसार प्रत्यक्षीकरण अवधान के द्वारा स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण में बदल जाता है। अवधान प्रत्यक्षीकरण को स्पष्टता प्रदान करता है।

विलियम जेम्स 1890 जो एक प्रकार्यवादी मनोवैज्ञानिक था के अनुसार अवधान वह प्रक्रिया है जो चेतना के बाहर उद्धिपको को चयन करती है तथा इन चयन किए हुए उद्धिपको में से कुछ चेतना में रहते है तथा अन्य बाहर रहते है।

जैम्स ने आगे यह भी कहा कि चेतना में स्पष्टता के लिए अवधान आवश्यक है।

इन उपर्युक्त परिभाषाओ के आधार पर अवधान को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि अवधान प्रत्यक्षीकरण को स्पष्टता प्रदान करने वाली प्रक्रिया है जो चेतना के बाहर के उद्दीपक या उद्दीपकों का चयन करती है तथा जिसके द्वारा उद्धिपको या उद्दीपक समूह चेतना के सीमा प्रदेश से चेतना से केन्द्र मे आते है।

हेब्ब 1949 के अनुसार अवधान वह स्वतन्त्र केन्द्रीय प्रक्रिया है जो सांवेदिक प्रक्रियाओं के लिए एक प्रकार के पुर्नबलन का कार्य करती है। तथा अधिगम से बहुत अधिक प्रभावित होती है। जिस प्रत्यक्ष परक संगठन तथा प्रत्युतर चयन में संवेदना का एक विशिष्ट योगदान होता है। अवधान उसको निर्धारित करता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि अवधान प्रत्यक्षण को स्पषटता प्रदान करने वाली वह स्वतन्त्र केन्द्रीय प्रक्रिया है जो सांवेदिक प्रक्रियाओं के लिए एक प्रकार से पुर्नबलन का कार्य करती है। चयन में निर्धारित करने वाली इस प्रक्रिया के द्वारा उद्दीपक या उद्दीपक समूह चेतना के सीमा प्रदेश से चेतना के केन्द्र में आता है।

अवधान एक चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया है. अवधान की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि यह एक चयनात्मक प्रक्रिया ह। इसका अर्थ हुआ है कि हम अपने समक्ष उपस्थित सभी उद्धिपको पर अवधान नही देते है बल्कि उसमे से अपनी इच्छाए आवश्यकताए या उद्दीपकों की कुछ खास विशेषताओ के आधार पर कुछ उद्दीपकों को चुन लेते है। और उस पर ध्यान देते है।

उदाहरणार्थ वर्ग में शिक्षक का भाषण सुनते आपके अवधान में शिक्षक की आवाज उनका चेहरा भाव भंगिमा के अलावा कुछ नही होता है हालाकि वर्ग में अन्य उद्दीपक जैसे. ब्लैक बोर्ड टेबल कुर्सी पंखा अन्य दोस्त भी केन्द्र में नही होते है।

उदाहरणार्थ. अवधान एक चयनात्मक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया द्वारा अनेकों उद्दीपकों मे से कुछ खास खास उद्दीपकों को ही व्यक्ति अपनी चेतना केन्द्र मे लाता है यानि उस पर ध्यान दे पाता है।

10.2 चयनात्मक अवधान का स्वरूप

चयनात्मक अवधान एक ऐसा विषय है जिसमे गत 40 वर्षो से मनोवैज्ञानिको ने काफी अभिरूचि दिखलायी है। चयनात्मक अवधान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक क्रिया पर अपनी मानसिक क्रियाशीलता को एकाग्रचित करते है। जैसे यदि एक साथ कई व्यक्ति मिलकर बगल के कमरे में बातचीत कर रहे हो और उनमें से किसी एक व्यक्ति की बात पर ध्यान दे रहे हो तो इसमे आप उस व्यक्ति के बात को ठीक ढग से सुन पायेगें तथा अन्य व्यक्तियों के बातों को पर ध्यान नही देते हैं तो यह चयनात्मक अवधान का उदाहरण होगा ।

10.3 दीर्घीकृत ध्यान का स्वरूप

दीर्घीकृत अवधान या ध्यान या जिसे निगरानी भी कहा जाता है एक ऐसी प्रत्यक्षज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति अधिक समय तक ध्यान किसी उद्दीपक पर केन्द्रित किये रहता है। उस उद्दीपक के प्रति अधिक सतर्कता बनाये रखता है।

दीर्घीकृत अवधान के अध्ययन में मनोवैज्ञानिक की अभिरूचि तब उन्पन्न हुई जब उन्होने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान रेडार संचालको में अवधान से सम्बन्ध समस्याए उत्पन्न होते पाये गये। इन संचालको को गौर से ध्यान देते हुए दुश्मन के आते हुए हवाई जहाज से रडार उत्पन्न संकेतो की पहचान करनी होती थी। कुछ समय तक इस तरह के कार्य करने के बाद रडार संचालको के निष्पादन में गिरावट आने लगती थी और वे दुश्मन के आते हुए हवाई जहाज से रडार मे उत्पन्न संकेतो की पहचान करने में असफल होने लगते थे। इस तरह के प्रेक्षण से प्रेरित होकर दीर्घीकृत अवधान के प्रयोगात्मक अध्ययन का प्रयास प्रारम्भ किया गया इस सिलसिले मे पहला प्रयोगशाला प्रयोग मैकवर्थ 1950 द्वारा किया गया।

इस प्रयोग में इन्होने रडार के अनुरूप प्रदर्शन जिसे घडी परीक्षण का उपयोग किया। इस परिक्षणा मे प्रयोग की घडीनुमा परिधीय उपकरण में कुछ लिखा नही था उसमें किसी प्रकार का कोई संकेत नही था। सुई प्रति सेंकड इंच की गति से आगे बढ़ता था तथा कभी कभी बीच मे उसकी गति दुगुना अर्थात प्रति सेंकड 0.6 इंच हो जाती थी। प्रयोज्यो को उस समय बटन दबाकर अनुक्रिया करना था जब उसे यह प्रतीत हो कि 4 सुई दुगुने गति से अर्थात 0.6 इंच गति प्रति सेंकड की गति से आगे बढ़ा हो । प्रयोज्य को इस कार्य में दो घंटे तक लगाया गया। परिणाम मे यह देखा गया कि करीब आधे घंटे तक दीर्घीकृत अवधान उक्त कार्य पर देने के बाद उनके निष्पादन में कमी आने लगी। प्रयोज्य प्रत्येक चार पहचानने वाले संकेत दुगुना गति में से एक की पहचान करने में असफल होने लगा।

मैकवर्थ के बाद में भी कई वैज्ञानिक द्वारा इस तरह के प्रयोग किए गए जिसमें मैकवर्थ के ही समान निष्कर्ष पाये गए। इसमें टीचनर 1974 द्वारा किया गया कार्य काफी महत्वपूर्ण है। इन प्रयोगों से यह

स्पष्ट हुआ कि संकेत पहचान के कार्य निष्पादन में उत्पन्न कमी का कारण शारीरिक थकान नही था क्योंकि इन प्रयोगों में कार्य भार बहुत ही हल्का था।

ब्रोडबेन्ड 1971 के अनुसार इन निगरानी कार्या का सैद्धान्तिक महत्व है कि यह मनोवैज्ञानिक को उन सभी कारणो का अध्ययन करने की प्रेरणा देता है जो दीर्घीकृत अवधान को प्रभावित करते है।

दीर्घीकृत अवधान के प्रयोगो से अवधान के बारे में कुछ रूचिकर तथ्य सामने आये है। दीर्घीकृत अवधान या निगरानी कार्य के स्वरूप से स्पष्ट हुआ है कि किसी बाह्य उद्दीपक पर ध्यान देना एक तीव्र क्रिया व्यक्ति को करना पडता हैं। इस मानसिक प्रयास का उपयोग तब तक नही होता है जब तक कि व्यक्ति एक खास ढग से उत्तेजित नही हो पता है। उद्धिपको पर अवधान देने के लिए आवश्यकता है कि व्यक्ति मे दैनिक उत्तेजन का स्तर जैसे . विशेष शारीरिक मुद्रा विशेष मांसपेशियो मे तनाव तथा सतत् सक्रिय एकाग्रता आदि का विशेष स्तर बना हुआ हो। परन्तु निगरानी कार्य के दौरान जो घटना घटित होती है उससे यह स्पष्ट है कि उत्तेजन के बढते हुए स्तर में उत्तम निष्पादन नही हो पाया है। जैसे जैसे उत्तेजन के स्तर मे वृद्धि होती है अवधान किसी केन्द्रीय लक्ष्य पर केन्द्रीत हो जाता है। 1908 में यक्स तथा डोडसन ने उतेजन के स्तर तथा निष्पादन के सम्बन्ध को एक विशेष नियम जिसे यक्स डोडसन नियम कहा है। उत्तेजन स्तर तथा निष्पादन के स्तर के सम्बन्ध विलोमित यू के समान होता है जो यह बतलाता है कि दीर्घीकृत अवधान या निगरानी कार्या में निष्पादन उस समय सबसे उत्तम होता है जब व्यक्ति में उत्तेजना स्तर मध्यम होता है। बहुत अधिक तथा बहुत कम उत्तेजना स्तर होने पर निष्पादन में ह्यास होता है

10.4 दीर्घीकृत अवधान के निर्धारक

दीर्घीकृत अवधान पर कई तरह के कारको का प्रभाव पडता है। इन कारकों में निम्नाकिंत पाच महत्वपूर्ण है

1. संवेदी कारक
2. संकेत या उद्दीपक उत्कृष्टता
3. पृष्ठभूमि घटना दर
4. सामायिक एवं स्थानिक अनिश्चितता
5. परिणाम ज्ञान

1. संवेदी कारक जब दीर्घीकृत अवधान कार्य में श्रवण संकेत की पहचान करनी होती है वो ऐसे कार्य का निष्पादन उस परिस्थिति में उत्तम होती है जब दीर्घीकृत अवधान कार्य में दृष्टि संकेत की पहचान करती पडती है।
2. संकेत या उद्दीपक उत्कृष्टता मनोविज्ञानिकों द्वारा किये गये प्रयोगो से यह भी स्पष्ट हुआ है कि दीर्घीकृत अवधान पर उद्दीपक संकेत दृष्टि की पहचान करनी पडती है।
3. संकेत या उद्दीपक उत्कृष्टता मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये एवं प्रयोगो से यह भी स्पष्ट हुआ है कि दीर्घीकृत अवधान पर उद्दीपक या संकेत की उत्कृष्टता का भी प्रभाव पडता है। संकेत की उत्कृष्टता के दो पहलुओं का अध्ययन किया गया है।
    1. संकेत की तीव्रता या विस्तार

2. संकेत की अवधि

3. पृष्ठभूमि घटता दर दीर्घीकृत अवधान पर उद्दीपक की पृष्ठभूमि घटना दर का भी प्रभाव पडता है। पृष्ठभूमि घटना से तात्पर्य वैसे घटना चक्र से होता है जिससे विवेचित उद्दीपक या संकेत जिसकी पहचान व्यक्ति को करना होता है एक तरफ से छिपा होता है।

4. सामयिक एवं स्थानिक अनिश्चितता

मनोदैहिक कारकों को जिनसे दीर्घीकृत अवधान प्रभावित होता है उन्हे प्रथम क्रम का कारक कहा जाता है। क्योकि इनमें उद्दीपक के कुछ तात्कालिन भौतिक गुर्णा में परिवर्तित किया जाता है इस प्रथम क्रम कारक के अलावा कुछ अद्वितीय क्रम के कारक भी है जिनमें दीर्घीकृत अवधान प्रभावित होता है।

5. परिणाम ज्ञान

परिणाम ज्ञान का भी प्रभाव दीर्घीकृत अवधान पर पडता है। मैकवर्थ द्वारा इस क्षैत्र में किये गये आरम्भिक प्रयोगो में यह देखा गया कि परिणाम ज्ञान देने से अर्थात निगरानी या दीर्घीकृत अवधान कार्य के निष्पादन के बारे में प्रयोज्यो की आवृति में वृद्धि होती है।

दीर्घीकृत अवधान के कई निर्धारक है। ये सभी निर्धारकों का स्वरूप मनोदैहिक निर्धारक तत्व कहा जाता है।

10.5 चयनात्मक स्वरूप का विस्तृत अध्ययन

चयनात्मक अवधान का विशेष गुण या लाभ यह है कि इसमें व्यक्ति एक तरह के कार्य पर दूसरों के कार्यो के बिना किसी तरह के अवरोध अनुभव किये एकाग्रचित कर सकता है।

परिणामतः इससे मानसिक निष्पादन की कार्यक्षमता बढ़ जाती है। चयनात्मक अवधान व्यक्ति मे कुछ विशेष परिस्थितियों में खासकर उस परिस्थिति में कुठां प्रदर्शित करने लगता है जब उसे एक ही साथ कई क्रियाओ पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। ऐसी परिस्थिती में लाचारी में व्यक्ति को अन्य क्रियाओ की अवहेलना करना पडता है।

चयनात्मक अवधान के क्षैत्र में महत्वपूर्ण अध्ययन चेरी (1953) द्वारा किया गया। इस प्रयोग में उन्होने छायाभासी प्रविधि का प्रतिपादन किया जिसमें प्रयोज्यों को सुने हुए शब्दों को ठीक उसी रूप में बोलने के लिए कहा जाता है।

चेरी ने एक वक्ता के आवाज में दो अलग सूचनाओं को अभिलेखित किया । प्रयोज्यों को आकर्षक लगा देने के लिए कहा गया। प्रत्येक कान में अलग अलग सूचनाओ को दिया गया तथा उन्हे उनमें से किसी एक सूचना को ठीक ढंग से बोलकर दोहराने के लिए कहा गया। इस तरह के कार्य को द्विभाषित सुनना कहा जाता है। परिणामतः प्रयोज्यो द्वारा दोनो में से एक ही सूचना जिस पर वे ध्यान दे सके थे का प्रत्यावाहन किया गया । दुसरी सूचना जिस पर ध्यान नही दे सके वे बहुत कम प्रत्यावाहन कर सकने में समर्थ हुए। जब इस दूसरे तरह की सूचना जिस पर वे ध्यान दे सके थे वे बहुत कम प्रत्यावाहन कर सकने में समर्थ हुए।

जब दूसरे तरह की सूचना मे कुछ परिवर्तन कर दिया जाता था इसे पुरूष की आवाज में न कहकर महिला की आवाज में कहा जाता था तो वैसी परिस्थिति में प्रयोज्यो का ध्यान उस ओर चला जाता

था इस प्रयोग से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति को जब कई तरह की सूचनाओ पर एक साथ ध्यान देने के लिए कहा जाता है। तो उसमें कुछ सूचना पर वह ध्यान दे पाता है तथा कुछ पर ध्यान नही दिया जाता हैं। अगर उसके स्वरूप में कुछ परिवर्तन कर दिया जाता है तो उस पर व्यक्ति का ध्यान चला जाता है। मोरे ने अपने एक प्रयोग मे पाया कि जिन सूचनाओ पर प्रयोज्य ध्यान नही दे पाता है उनमें यदि प्रयोज्य का नाम कही कही पर जोड दिया जाता है तो उस पर ध्यान देने में समर्थ हो पाता है।

अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि बहुत ही परिचित उद्दीपकों जैसे अपना नाम या अपने शहर के नाम को व्यक्ति इतना अपने आप या यन्त्रवत् ढग से प्रत्यक्षण करता है कि उसकी उपेक्षा करना संभव नही हो पाता है। प्रत्यक्षण में इस तरह के यन्त्रवतता को मनौवेज्ञानिको ने स्टूप प्रभाव कहा है क्योकि इसे सबसे पहले स्टूप ने 1935 में अपने अध्ययन के आधार पर बतलाया था।

बेसनर तथा स्टोल्ज से उस शब्द को पढना आसान हो जाता है परन्तु वही यन्त्रवता से किसी रंग के अर्थ की उपेक्षा करना मुश्किल हो जाता है जब वह लाल रंग के अक्षर में लिखा होता है इस तरह के स्टूप प्रभाव से चयनात्मक अवधान की कमी का चलता है।

चयनात्मक अवधान का सबसे पहला मार्गविरोधी सिद्धान्त बौडवेन्ट द्वारा प्रतिपादित किया गया। इस सिद्धान्त जिसे फिल्टर सिद्धान्त भी कहा जाता है के अनुसार जब व्यक्ति को एक ही साथ कई तरह की सूचनाओ पर एक ही साथ ध्यान देना होता है तो इस आरम्भिक अवस्था में मार्गविरोध उत्पन्न हो जाता है।

दूसरे शब्दों में जैसे ही ज्ञानेन्द्रिय कई तरह की सूचनाओं द्वारा उत्तेजित होता है मार्गविरोध उत्पन्न हो जाता है। ब्राडबेन्ट मॉडल को आरंभिक चयन मॉडल भी कहा जाता है क्योकि इसमें सूचनाओ के संवेदी पंजीकरण के तुरंत बाद ही चयन प्रक्रिया या फिल्टरिंग प्रक्रिया प्रांरभ हो जाती है।

चयनात्मक अवधान के आरंभिक चयन मॉडल तथा विलम्बित चयन मॉडल के स्वरूप के बारे में तब यह कहा जा सकता है। कि इन दोनो मॉडल प्राप्त सूचनाओ को संसाधित करने की क्षमता पर व्यक्ति में एक जैविक सीमा होने की पूर्व कल्पना करता है परन्तु आरम्भिक चयन मॉडल का यह मानना है कि संवेदी संयम या नियन्त्रण से ही अवधानात्मक नियन्त्रण का निर्धारण होता है।

विलम्बित चयन मॉडल यह पूर्वकल्पना करता है कि व्यक्ति की स्मृति एवं प्रत्याशाओ से इस बात का निर्धारित होता है कि व्यक्ति किसी चीज पर ध्यान नहीं देता है तथा हमलोग आगे क्या संसाधित करने जा रहे है। विलबिंत चयन मॉडल मे इस तरह का मार्गविरोध पैटर्न पहचान की प्रक्रिया से पहले ही उत्पन्न हो जाता है। इस तरह के मार्गविरोध का उद्देश्य अधिक संख्या में उद्दीपकों को ध्यान केन्द्र में प्रवेश करने से रोकना होता है तथा साथ ही साथ व्यक्ति को कई तरह की उद्दीपकों से एक ही साथ प्रभावित हो जाने से अवधान बाधित होता है।

10.6 चयनात्मक अवधान के सिद्धान्त या मॉडल

चयनात्मक अवधान की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिको ने कई तरह के सिद्धान्त का प्रनिपादन किया है जिनमें निम्नाकिंत प्रमुख है.

1. मार्गविरोधी सिद्धान्त
2. नारमैन एवं बावरो मॉडल
3. नाईसर मॉडल

4. समर्थता मॉडल

इन चारो का अलग अलग वर्णन निम्नाकिंत है.

मार्ग विरोधी सिद्धान्त के तहत कई मनावैज्ञानिक द्वारा चयनात्मक अवधान की प्रदत्त व्याख्या को रखा गया है इनमें ब्रौडबेन्ट (1958) ट्रीसमैन तथा डियूश एवं डियूश के विचार प्रमुख है। इन मनोवैज्ञानिक का मत है कि जिस तरह से यदि हम ऐसे बोतल में पानी डालने की कोशिश करते हैं जिसका मुह छोटा है तो पानी को भीतर जाने आसानी होती है और कुछ मात्रा में वह बोतल से बाहर गिर जाता है ठीक उसी तरह यदि व्यक्ति को एक ही साथ कई तरह का मार्गविरोध होता है कुछ सूचनाए इस मार्ग विरोध को पार नही कर पाती है । जो सूचनाए पीछे रह जाती है वह व्यक्ति के ध्यान केन्द्र के बाहर हो जाती है और धीरे.धीरे व्यक्ति उन्हे भूल जाता है। उसे अपने आप को बचाना होता है मार्ग विरोध फिल्टर प्रक्रम जिसके द्वारा एक व्यक्ति विभिन्न सूचनाओ में से किसी एक का चयन कर लेता है उसके द्वारा कुछ कमी नही होती है।

बै्रडवेन्ट मॉडल द्वारा चयनात्मक अवधान की प्रक्रिया की व्याख्या की गयी है जब व्यक्ति को सेब शब्द एक कान में बोला जाता है जिस पर उसे ध्यान देना है तो वह मार्ग विरोध को पार करते हुए आगे बढ जाता है तथा व्यक्ति इस सूचना को संसाधित करके उसके प्रति अनुक्रिया करता है। ijUrq जब उसे पैसिल शब्द दूसरे कान में बोला जाता है जिसे lqudj उसे बतलाना नही है तो सूचना मार्गविरोध मे फस जाता है और आगे नही बढ पाता है।

ब्रोडबेन्ट के अनुसार सूचना के भौतिक गुणों के आधार पर हम उसका चयन करते है या उसे एक तरह से छानते है तथा उस पर ध्यान दे पाते है व्यक्ति उच्चस्वर आवाज पर ध्यान दे पाता है तथा निम्नस्वर आवाज पर नही। इसलिए ऐसा होता है कि निम्न स्तरी आवाज मार्गविरोध को पार करने में असमर्थ रहता है।

ब्रोडबैनट मॉडल द्वारा इस बात की व्याख्या तो आसानी से हो जाती है कि व्यक्ति सूचना की कुछ विशेषताओ पर ध्यान रही दे पाता है। परन्तु ब्राडवेन्ट मॉडल द्वारा इस बात की व्याख्या नही होती है कि व्यक्ति सूचना की कुछ विशेषताओ पर ध्यान नही दे पाने में क्यो स्मर्थ हो जाता है।

ट्रिसमैन जो एक महिला मनोवैज्ञानिक थी ब्रोडबैन्ट मॉडल में थोडा सा परिवर्तन कर उसे अधिक उपयोगी बनाने की कोशिश की। इनके मॉडल को फिल्टर. तनुकरण मॉडल कहा जाता है। इस मॉडल के अनुसार व्यक्ति जिस कान से प्राप्त सूचना पर ध्यान नही दे पाता है वह संसाधित होने से पूर्णतः अवरूद्ध नही हो पाता है बल्कि उसका रूप थोडा सूक्ष्म हो जाता है और मात्र इसका आशिक विश्लेषण ही व्यक्ति कर पाता है। यही कारण है कि ध्यान नही ही गयी सूचना की कुछ विशेषताओ से भी व्यक्ति अवगत हो जाता है। ट्रीसमैन मे ब्रोडवेन्ट सिद्धान्त के इस दावे का खंडन किया हैं सूचनाओ के संसाधन की प्रांरभिक अवस्था में ही समाप्त हो जाता है।

ट्रीसमैन द्वारा किया गया यह खंडन उनके द्वारा किये गये एक प्रयोग के परिणाम पर आधारित है। इस प्रयोग में प्रयोज्य को एक साथ दो तरह की सूचनाए दी गयी। एक तरह की सूचना अग्रेजी की उपन्यास का एक छोटा गंद्याश था जिसे सुनकर प्रयोज्य को बतलाना था। इसके साथ एक दुसरी सूचना भी उन्हे दी गयी जिनका उन्हे बतलाना नही था। दूसरी सूचना के रूप मे उसी उपन्यास का दूसरा गद्यांश तथा जैव रसायन का एक तकनीकी विवेचन दिया गया।

परिणाम मे देखा गया कि प्रयोज्य उन सूचनाओ पर ध्यान न देने में अर्थात उसे अस्वीकृत करने में अधिक कठिनाई हुई जो उस सूचना के समान जिसे उनको दोहराना था अर्थात उसी उपन्यास के को अस्वीकृत करना उसके लिए कठिन था।

इन लोगो का मत है कि चूकि व्यक्ति के पास जो साधन होता है वह सीमित होता है फलतः वह कुछ सीमित वस्तुओ या उद्दीपकों या कार्या पर ही ध्यान दे पाता है इन लोगों ने स्पष्ट किया है कि व्यक्ति का ध्यान कई कार्या में विभाजित होने से निष्पादन में जो देर होती है उसका कारण होता है कि उस सीमित साधन का उपयोग व्यक्ति को उन सभी कार्या में बाटकर करना होता है।

नारमैन एवं बावरो मॉडल

नारमैन तथा बावरो 1957 ने अवधान की व्याख्या एक.दूसरे दृष्टिकोण से किया गया। इन लोगो ने मार्ग विरोध के सम्प्रन्यय को अस्वीकृत किया है और कहा है कि सचमुच में सूचना संसाधन में मार्गविरोध नाम की काई चीज नही होती है। इन लोगो के सिद्धान्त या मॉडल के अनुसार अवधान का स्वरूप सीमित होता है। क्योकिं व्यक्ति के पास किसी कार्य पर ध्यान देने लिए मानसिक प्रयास करने की क्षमता सीमित होती है। ऐसे मानसिक प्रयास को नारमैन एवं बाबरो ने साधन या युक्ति की संज्ञा दी है। इन लोगो ने साधन में मानसिक प्रयास के अलावा स्मृति के विभिन्न प्रयासो एवं संचार माध्यमो को भी सम्मिलित किया है।

नारमैन नथा बावरो ने अपने सिद्धान्त में दो तरह के कार्या के बीच अन्तर किया है.

1. साधन lhfer कार्य तथा 2. आकडे. lhfer कार्य

साधन सीमित कार्य से तात्पर्य वैसे कार्य से होता है जिसमें निष्पादन साधन के उपलब्ध होने पर निर्भर करता है। यदि ऐसे कार्य के लिए अधिक साधन उपलब्ध होते है तो उसका निष्पादन बढ जाता है।

मान लिजिए कि कोई व्यक्ति गणित की समस्या का समाधान कर रहा है तथा साथ ही साथ जोर से गीत भी गा रहा है। ऐसी परिस्थिती में गणित की समस्या का समाधान मंद गति से तो होगा साथ ही साथ कई तरह की त्रुटिया भी होगी। परन्तु गीत गाना बन्द करके जब व्यक्ति अपना सारा मानसिक प्रयास गणित की समस्याओ के समाधान मे ही लगाता है तो उसका निष्पादन निश्चित रूप से बढ जायेगा। यह एक साधन सीमित कार्य का उदाहरण होगा

ट्रीस मैन के निष्कर्ष को लेविस ने भी अपने प्रयोगो के परिणाम से स्पष्ट किया है। जैवरसायन की तकनीकी विवेचन को जो दोहराये जाने वाले गंद्याश से भिन्न था को अस्वीकृत करने में कोई खास कठिनाई का अनुभव नही हुआ। इस प्रयोग के परिणाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन सूचनाओ पर व्यक्ति ध्यान नही दे पाता है या उन्हे ध्यान नही देता रहता है उनका भी विश्लेषण वह करता है। ब्रोडवेन्ट का यह कहना है कि ध्यान नही ही गई सूचना का अस्तित्व आरंभिक अवस्था में ही समाप्त हो जाता है सही नही है।

आकडे सीमित कार्य से तात्पर्य वैसे कार्य का उदाहरण होगा जिसमें वैसे कार्यो से होता है जिसमे निष्पादन व्यक्ति के सीमित स्मृति क्षमता या उद्दीपक विशेष गुण के कारण सीमित होता है ऐसे कार्य के निष्पादन पर साधन की उपलब्धता या अनुउपलब्धता का कोई असर नही पडता है ऐसे कार्य मे पर्याप्त साधन होने के बावजूद भी व्यक्ति का निष्पादन खराब हो सकता है। जैसे यदि कोई व्यक्ति पूर्ण

प्रबलता में रेडियो खोलकर तथा उसके नजदीक काम करके उसे सुनता है और उसी समय कलम टेबल पर से नीचे गिर जाता है ऐसी परिस्थिति में कलम गिरने से उत्पन्न आवाज पर वह ध्यान नही दे पायेगा। क्योकि यहा निष्पादन कार्य के विशिष्ट गुण द्वारा सीमित है। यह आकडे सीमित कार्य का उदाहरण है।

नारमैन व बावरो के अनुसार सूचनाओं को संसाधित करने के लिए जो साधन उपलब्ध होते है उनकी एक ऊपरी सीमा निश्चित हेती है। जब व्यक्ति को कई ऐसा कार्य करना पडता है जिसे संसाधित करने मे लगा कुल साधन की मात्रा की सीमा उस ऊपरी सीमा से कम है तो व्यक्ति उन पर आसानी से ध्यान देने मे बाधा पहुचाता है। फलस्वरूप ऐसी परिस्थिति में एक या कई अन्य कार्य पर निष्पादन पर खराब होगा।

3. नाईसर मॉडल- नाईसर (1976) ने एक तीसरा मॉडल प्रतिपादन किया है जिसके द्वारा चयनात्मक अवधान की व्याख्या की गयी ह। मार्ग विरोध सिद्धान्तो एवं नारमैन तथा बावरों द्धारा प्रतिपादित सिद्धान्त के इस विचार से नाईसर बिल्कुल ही असहमत है कि व्यक्ति मे सूचनाओ को संसाधित करने की एक सीमित क्षमता से होती है।

नाईसर के अनुसार, ''कोई दैहिक या गणितीय ढंग से स्थापित सीमा नहीं होती है कि हम लोग एक समय में कितनी सूचना पर ध्यान दे सकते है। '' नाइसर ने अपने सिद्धान्त में इस बात पर बल डाला कि उद्दीपक की सीमित मात्रा पर ही व्यक्ति एक समय मे ध्यान दे पाता है इस तरह के सिद्धान्त से प्रभावित होकर न्युरोशास्त्री ने तन्त्रिका तन्त्र में व्याप्त फिल्टरिंग प्रक्रम की खोज के लिए शोध प्रारम्भ कर दिया है।

इन शोधो से स्पष्ट हुआ है कि मस्तिष्क में अरबो न्यूरोन्स होते है जो एक- दूसरे से सम्बन्धित होते है। तथा उसकीक्षमता भी असीमित होती है यही कारण कि दीर्घकाल स्मृति का आकार तथा चन्द सेकड पहले की घटनाओ एवं सूचनाओ को घ्यान रखने की क्षमता असीमित होती है। उसी तरह से किसी एक समय में व्यक्ति सूचना की कितनी मात्रा पर ध्यान दे पायेगा यह भी सीमित नही होती है।

नाईसर ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि दिन प्रतिदिन की जिन्दगी में यदि एक ही साथ व्यक्ति कई चीजो या कामो को करना प्रारम्भ करता है तो उसका निष्पादन थोडा जरूर प्रभावित हो जाता है। परन्तु अभ्यास से धीरे-धीरे उसके निष्पादन में सुधार हो जाता है। ओर व्यक्ति एक साथ कई उद्दीपको पर ध्यान देने में समर्थ हो जाता है इस तथ्य का समर्थन हमें कई प्रयोगात्मक अध्ययनो से हुआ है।

4. समर्थता मॉडल-

चयनात्मक अवधान की सैद्धान्तिक व्याख्या करने की दुसरी अवस्था की शुरूआत काहनेमैन द्वारा प्रकाशित पुस्तक एटेनशन एवं एफोर्ट से हुआ। काहनमैन का तर्क यह था कि चयनान्मक बल्कि तथ्य यह है कि व्यक्ति से वह कार्य क्या उम्मीद करता है या किस तरह की मांग करता है।

काहनमैन के इस सिद्धान्त को संज्ञानान्मक व्यक्ति से वह कार्य क्या उम्मीद करता है या किसी तरह की माग करता है। काहनेमैन के इस सिद्धान्त को संज्ञानात्मक मॉडल कहा जाता है। इस मॉडल मं इस बात की पूर्वकल्पना नही की जाती है कि व्यक्ति में सूचनाओ को संसाधित करने की एक जैविक सीमा होती है। बल्कि इसमें इस बात की पूर्वकल्पना की जाती है कि व्यक्ति को एक साथ कई तरह के कार्या को करने में वांछित मानसिक प्रयास करने की एक सीमित क्षमता होती है। काहनमैन का

मत है कि किसी वस्तु पर ध्यान देने मं मानसिक प्रयास एव उतेजन की एक निश्चित मात्रा की जरूरत होती है। इसे उन्होने संज्ञानात्मक युक्ति या संज्ञानात्मक क्षमता की संज्ञा दिया है।

10.7 उत्तेजन सिद्धान्त

उत्तेजन सिद्धान्त जिसे सक्रियता सिद्धान्त भी कहा जाता है में दीर्घीकृत अवधान की व्याख्या न्यूरो देहिक सबुतो के रूप मे की गई है इन सबुतो का आधार हेब का योगदान है जिन्होने यह स्पष्टतः कहा था की संवेदी निवेश के मुख्य दो कार्य होते है- पहला तो यह की इस तरह के संवेदी निवेश से मस्तिष्क को वातावरण के बारे मे कुछ सूचना मिलती है तथा दूसरा यह कि इससे मस्तिष्क में कुछ अस्पष्ट एवं विसरित क्रियाए होती है जिनसे सतर्कता के स्तर मे वृद्धि होकर प्रमस्तिष्कीय संचरण होती है।

उत्तेजन सिद्धान्त के अनुसार दीघीकृत अवधान रेटिकुलर फारमेशन की विशेष भुमिका होती है आर.एस.एस मस्तिष्क में एक जाली नुमा संरचना होती है जो सुषुम्ना की उपरी भाग से प्रारम्भ होकर थैलेमस तक फैला होता है जब संवेदी निवेश सुषुम्ना होते हुए आर.ए.एस में पहुचते है तो इससे प्रमस्तिषकिय oYdy के पूरे क्षेत्र मे आवेगो का निर्माण होता है आर.ए.एस. के इस कार्य का प्रयोगात्मक समर्थन कई अध्ययनो में हुआ है। जैसे- फ्रेन्च तथा मालमो ने अपने - अपने अध्ययन में पाया की यदि पशुओ के मस्तिष्क मे आर.ए.एस. को काट कर हटा दिया जाता है तो ऐसे पशु अचेतन एवं निष्क्रियता की अवस्था मे चले जाते है। आर.ए.एस. के उत्तेजन प्रक्रम द्वारा दीघीकृत अवधान की व्याख्या होती है को समझाया गया है। उत्तेजन सिद्धात के अनुसार आर.ए.एस को आदर्श स्तरीय कार्य करने के लिए यह आवश्क है कि व्यक्ति के प्रत्यक्षज्ञानात्मक वातावरण मे पर्याप्त परिवर्तनशीलता हो अर्थात उद्दीपक मे पर्याप्त परिवर्तनशीलता हो यदि उद्दीपक परिवर्तनशीलता एक क्रान्तिक स्तर से नीचे होता है तो व्यक्ति मे उत्तेजनशीलता का स्तर कम होता है तथा दीर्घीकृत अवधान में ह्रास उत्पन्न होगा। दीर्घीकृत अवधान कार्य के नीरस पहलु द्वारा आर.ए.एस उतना अधिक प्रभावित नही हो पाता है। फलस्वरूप व्यक्ति मे सतर्कता तथा उत्तेजन का पर्याप्त स्तर नही रह पाता है और दीर्घीकृत अवधान कार्य या निगरानी कार्य के दोरान उसका निष्पादन में ह्रास होता है अर्थात संकेत की पहचान कार्य मे त्रुटियॉ बढने लगती है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक द्व्वारा कई ऐसे सबुत उपलब्ध किये गये है जिनसे उत्तेजना के न्युरोदैहिक सूंचक को एवं निगरानी कार्यो के बीच के सम्बन्ध को दिखलाया गया है। इन न्युरोदैहिक सुचकाको के अल्फा क्रियाओ तथा जी.एस.आर की क्रियाए कमने लगती हैं। डेविज एवं कर्कविक ने अपने अध्ययन में पाया की निगरानी कार्य में पहचान प्राप्ताकों में कमी उक्त दोनो तरह के सुचकांको मे हुए कमी के साथ सम्बन्धित पाया है। मिलोसेविक ने अपने अध्ययन मे पाया है कि जी.एस.आर मे कमी होना तथा संकेत पहचान में कमी होना एक समान्तर प्रक्रिया है। उसी तरह वटि तथा उनके सहयोगियो ने अपने अध्ययन मे पाया कि जब मस्तिष्कीय क्रियाओ मे कमी होती है अर्थात व्यक्ति में सतर्कता का स्तर निम्न होता है तो निगरानी निष्पादन मे कमी आ जाती है जैसा कि हम जानते आर.ए.एस की क्रियाओ में जैविक उत्तेजित जैसे- इपाइनफ्राइन या एड्रीनलीन के स्तर तथा निगरानी कार्य में संकेत के पहचानने की अनुक्रिया में धनात्मक सम्बन्ध होता है।

उपर्युक्त प्रयोगात्मक अध्ययनों के आलोक में हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि निगरानी कार्य या दीर्घीकृत अवधान कार्य में निष्पादन का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के प्रमस्तिष्कीय सक्रिय स्तर से होता

है। जब ऐसे कार्य में व्यक्ति एक औसत सक्रियता स्तर बनाये रखता है तो ऐसी परिस्थिती में निगरानी निष्पादन या संकेत की पहचान की अनुक्रिया में पर्याप्त वृद्धि होती है।

उत्तेजन सिद्धान्त के साथ कुछ कठिनाईया भी है जिनसे इस सिद्धान्त की उपयोगिता काफी सीमीत हो गयी। इस सिद्धान्त की कुछ प्रमुख कठिनाईया निम्न लिखित है

1 किसी प्रकार का बाह्य उतेजन तथा कितनी मात्रा मे ऐसी उतेजन दिया जाना चाहिए जिससे कि निगरानी कार्य दीर्घीकृत अवधान के दौरान व्यक्ति का निष्पादन श्रेष्ठ बने। यह कही भी स्पष्ट नही किया गया है।

2 जेरीसन तथा ब्रौउवेन्ट ने अपने-अपने अध्ययनो के आधार पर यह बताया है कि इस सिद्धान्त में यह भी स्पष्ट नहीं किया गया है कि अमुक तरह के प्रयोगात्मक जोड-तोड से निगरानी कार्य के निष्पादन मे परिवर्तन की दिशा क्या होगी जैस आर.ए.एस को यदि किसी उद्दीपक को 80 प्रतिशत तीव्रता से उतेजित किया जाए तो क्या इसे निगरानी कार्य का निष्पादन उस परिस्थिती की तुलना मे दुगुना हो जाऐगा जब आर.ए.एस को उसी उद्दीपक के 40 प्रतिशत तिव्रता से उतेजित किया जाता है इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर हमे उत्तेजन सिद्धान्त मे नही मिलता है

3 कई प्रयोगों से जो तथ्य सामने आये हैं कि रस सिद्धान्त में असंगतता का पता चला है। जैसे - डेवेनपार्ट एवं टोलिन तथा फिशर ने अपने-अपने अध्ययनो मे यह पाया कि हल्के ढग से उतेजित होने पर निगरानी निष्पादन मे वृद्धि हो जाती है परन्तु जान्स ने अपने अध्ययन मे पाया कि किसी तरह के हल्के उतेजन से निगरानी निष्पादन में कमी आ जाती है। इन कठिनाईयो और आलोचनाओं के बावजुद इस सिद्धान्त को लोगो ने इसलिए स्वीकार किया है क्योंकि इसने आर.ए.एस तथा उतेजन स्तर का सम्बन्ध निगरानी कार्य दिर्गीकृत कार्य के निष्पादन से जोडा गया है।

10.8 बोध प्रश्न

1. अवधान का अर्थ बताते हुए अवधान के निर्धारक तत्वां की व्याख्या कीजिए।
2. चयनात्मक अवधान के सिद्धान्त या मॉडल की व्याख्या कीजिए।
3. उत्तेजन सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- डॉ. शर्मा, रामनाथ (2002), ''मनोविज्ञान का इतिहास '' आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल
- डॉ. सिंह, अरूण कुमार, डॉ. सिंह अशीष कुमार (2002), ''व्यक्तित्व का मनोविज्ञान'' दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास
- डॉ. सिंह अरूण कुमार, डॉ. सिंह, आशीष कुमार (2007)''मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास
- Braman, James F. (2005)] "History and systems of psychology Delhi, Person Education.
- Hall clasis S. hindzey Gardan (1985), Theires & Ppasonality Delhi, wiley earson limited

इकाई – 11

प्रत्यक्षीकरण : स्वरूप, सिद्धांत एवं प्रत्यक्षणात्मक अधिगम

(Perception: Nature, Theories and Perceptual Learning)

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 प्रत्यक्षीकरण का अर्थ व स्वरूप
11.4 परिभाषा
11.5 प्रत्यक्षीकरण की विशेषताएँ
11.6 प्रत्यक्षीकरण और संवेदना में अंतर
11.7 प्रत्यक्षीकरण के सिद्धांत
11.7.1 प्रत्यक्षीकरण का गैस्टाल्ट सिद्धांत
11.7.2 प्रत्यक्षीकरण का गिब्सन का सिद्धांत
11.7.3 प्रत्यक्षीकरण का दैहिक सिद्धांत
11.7.4 प्रत्यक्षणका सूचना-संसाधन सिद्धांत
11.7.5 प्रत्यक्षीकरण का व्यवहारवादी सिद्धांत
11.7.6 प्रत्यक्षीकरण का निर्देश-अवस्था सिद्धांत
11.8 प्रत्यक्षणात्मक संगठन जन्मजात होता है या अर्जित?
11.9 प्रत्यक्षणात्मक अधिगम
11.10 सारांश
11.11 शब्दावली
11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.14 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

बालकों में प्रत्यक्षीकरण के विकास के लिए अधिक से अधिक प्रयास किया जाता है क्योंकि उनमें अवलोकन शक्ति की गहनता का आभाव होता है जिसके कारण वे अपने सामने विभिन्न उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाते हैं। प्रत्यक्षीकरण के लिए पूर्व ज्ञान एक आधार के रूप में काम करता है। यह ज्ञान प्राप्ति का दूसरा सोपान है। शिक्षा के द्वारा बालकों के पूर्व ज्ञान, अनुभव तथा अधिगम में

वृद्धि कर उनमें प्रत्यक्षण शक्ति का विकास किया जा सकता है ताकि वे प्रत्यक्षीकरण के द्वारा किसी भी उद्दीपक को अर्थ प्रदान करने में सक्षम हो सके।

प्रस्तुत इकाई में आप प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप, इसके उद्देश्य, परिभाषाएँ, विशेषताएँ, विभिन्न सिद्धांतों एवं प्रत्यक्षणात्मक अधिगम आदि का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

- प्रत्यक्षीकरण का अर्थ बता सकेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण को परिभाषित कर सकेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण की विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण और संवेदना अंतर कर सकेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण के उपागम या सिद्धांतों को जान सकेंगे।
- प्रत्यक्षणात्मक अधिगम के बारे में जान सकेंगे।

11.3 प्रत्यक्षीकरण का अर्थ व स्वरूप (Meaning and Nature of Perception)

प्राणी वातावरण में रहता है तथा वातावरण में उपस्थित उत्तेजनाएं उनमें अनुक्रिया उत्पन्न करती हैं। वातावरण से प्राप्त होने वाली उत्तेजनाओं या उद्दीपकों का तात्कालिक ज्ञान कराने वाली मानसिक प्रक्रिया ही प्रत्यक्षीकरण कहलाती है। प्रत्यक्षीकरण एक पूर्ण मानसिक प्रक्रिया है। प्रत्यक्षीकरण की क्रिया संवेदना (Sensation) की प्रक्रिया से प्रारंभ होती है और किसी व्यवहार करने की क्रिया के पहले तक होती है। इस प्रकार **वुडवर्थ** के अनुसार प्रत्यक्षीकरण में **"बाह्य उद्दीपक के प्रति मस्तिष्क को प्रथम क्रिया संवेदन होती है।प्रत्यक्षीकरण का क्रम संवेदन के बाद आता है।"**अत:कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया संवेदना तथा व्यवहार करने की क्रिया के बीच की प्रक्रिया है।

जब कोई बालक किसी उद्दीपक को पहली बार देखता है तो उसे उसका कोई पूर्व अनुभव नहीं होता है। वह यह नहीं जनता है कि वह वस्तु क्या है। उद्दीपक के इस प्रकार के ज्ञान को 'संवेदना' कहते है। समय के साथ जब वह उस उद्दीपक को बार-बार देखता है तो वह बता सकता है कि उपस्थित उद्दीपक पेन, किताब, मकान आदि है। उद्दीपक के इस प्रकार के ज्ञान को प्रत्यक्षीकरण कहते हैं।

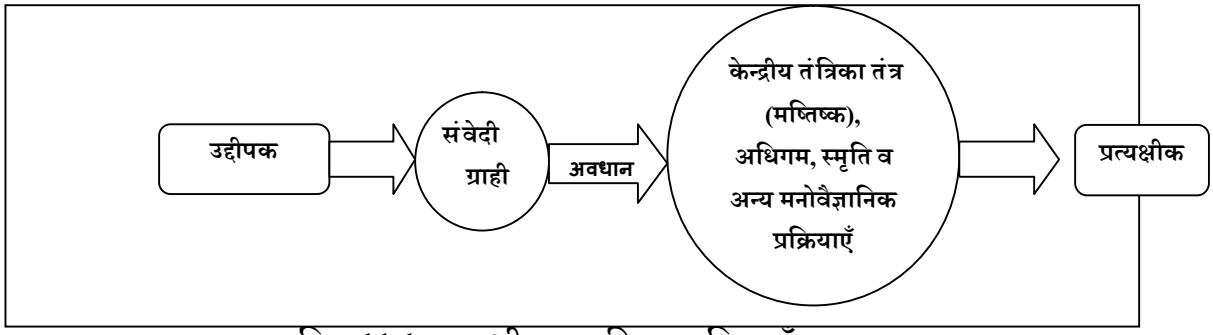

चित्र 11.1 -प्रत्यक्षीकरण की उप-प्रक्रियाएँ

अभ्यास प्रश्न-1

1. प्रत्यक्षीकरणएक पूर्ण.....प्रक्रिया है।
2. प्रत्यक्षीकरण की क्रिया..... की प्रक्रिया से प्रारंभ होती है।

11.4 परिभाषाएं (Definitions)

प्रत्यक्षीकरण को भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अलग-अलग तरह से परिभाषित किया है-

मनोवैज्ञानिक **रायबर्न** के अनुसार- "अनुभव के आधार पर संवेदना की व्याख्या करने की प्रक्रिया प्रत्यक्षीकरण कहलाती है।"

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **वुडवर्थ** केअनुसार- "प्रत्यक्षीकरण ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा वस्तुओं तथा वस्तुनिष्ठ तथ्यों को जानने की प्रक्रिया है।"

जलोटा के अनुसार- "प्रत्यक्षीकरण वह मानसिक क्रिया है, जिससे हमें बाह्य जगत की वस्तुओं या घटनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है।"

आइजेंनक तथा उनके साथियों के अनुसार- "प्रत्यक्षीकरण प्राणी का एक मनोवैज्ञानिक प्रकार है जिसका सम्बन्ध वातावरण की स्थिति या परिवर्तनों की सूचना ग्रहण करने तथा प्रणाली से है।"

कोलमैन के अनुसार- "प्रत्यक्षीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीव को अपने आंतरिक अंगों तथा वातावरण के बारे में सूचना मिलती है।"

कॉलिन्स तथा ड्रेवर के अनुसार- "संवेदना के द्वारा किसी वस्तु अथवा परिस्थिति को तत्काल समझ लेना प्रत्यक्षीकरण है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षीकरण एक सक्रिय, चयनात्मक एवं संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जो संवेदना होने के उपरांत तथा चिंतन प्रारम्भ होने से पूर्व सम्पादित होती है। अर्थात जिसके द्वारा व्यक्ति को अपने आंतरिक अंगों (आंतरिक वातावरण) तथा बाह्य वातावरण में उपस्थित वस्तुओं का तात्कालिक अनुभव होता है। संवेदना बाह्य उद्दीपकों पर आधारित होती है जिसमें पूर्व अनुभवों अथवा अधिगम का कोई स्थान नहीं होता है परन्तु इसके विपरीत प्रत्यक्षीकरण में बाह्य उद्दीपकों तथा पूर्व अनुभवों व अधिगमों का अपरोक्ष ढंग से पर्याप्त

योगदान प्राप्त रहता है। प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण करने पर इसके सात सोपान प्राप्त होते हैं। ये सात सोपान क्रमशः-

i. उद्दीपक का होना।
ii. उद्दीपक द्वारा ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजना देना।
iii. ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान वाहक तंतुओं को प्रभावित करना।
iv. ज्ञान वाहक तंतुओं द्वारा उत्तेजना को मस्तिष्क में पहुचना।
v. संवेदना का होना।
vi. पूर्व अनुभवों से संवेदना को जोड़ना।
vii. प्रत्यक्षण का होना।

11.5 प्रत्यक्षीकरण की विशेषताएँ (Characteristics of Perception)

i. प्रत्यक्षीकरण एक सक्रिय मानसिक व मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया (Active Mental and Psychological Process) है क्योंकि प्राणी इसमें कुछ न कुछ संज्ञानात्मक प्रक्रिया में प्रतिभाग अवश्य करता है। जैसे, 'अंगूर' को देखकर मात्र अंगूर का ही प्रत्यक्षीकरण नहीं होता बल्कि विशेष गुण खट्टे या मीठे होने का भी हम प्रत्यक्षीकरण करते हैं।

ii. प्रत्यक्षीकरण का प्रथम प्रक्रम (Process) वातावरण के उद्दीपकों का ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण करना है। द्वितीय प्रक्रम में उद्दीपकों का ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से स्नायु आवेग में परिवर्तित करना है। तृतीय प्रक्रम में स्नायु आवेग जब मस्तिष्क में पहुँचते हैं तो उद्दीपक से सम्बंधित अनेक संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। मध्यस्थताकारी प्रक्रम के अंतर्गत इन संवेदनाओं का पुनर्गठन संशोधन और एकीकरण होता है तथा मध्यस्थताकारी प्रक्रम के फलस्वरूप व्यक्ति को उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण होता है।

iii. प्रत्यक्षीकरण के लिए उद्दीपक का होना जरुरी है क्योंकि प्रत्यक्षीकरण हमेशा किसी वस्तु, घटना, या व्यक्ति का होता है और इन्ही को ही उद्दीपक की संज्ञा दी जाती है। जब तक कोई उद्दीपक व्यक्ति के सामने उपस्थित नहीं होगा, तब तक न कोई संवेदन होगा और न ही प्रत्यक्षीकरण होगा।

iv. प्रत्यक्षीकरण चुनाव और ध्यान (Selection and Attention) पर आधारित होता है। किसी उद्दीपक पर ध्यान दिए बिना केवल उद्दीपक के पास रहने मात्र से अथवा ज्ञानेन्द्रियों के पास रहने मात्र से ही प्रत्यक्षीकरण सम्भव नही है। उदाहरण के लिए, ध्यान दिए बगैर इमारत के सामने से निकल जाते हैं इसलिए इमारत का प्रत्यक्षीकरण नहीं हो पाता है।

v. प्रत्यक्षीकरण में उद्दीपक से सम्बंधित संवेदनाएं बिखरी न होकर संगठित रूप में होती हैं। एक उद्दीपक के रंग, गंध, आकार, स्पर्श आदि से सम्बंधित संवेदनाएँ जब संगठित रूप में होती हैं तभी उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण होता है। उदाहरण के लिए यदि जूही के फूल के रंग, गंध, आकार, और स्पर्श आदि से सम्बंधित संवेदना यदि संगठित रूप में न हो तो कथित फूल का प्रत्यक्षीकरण सम्भव नहीं है।

vi. प्रत्यक्षीकरण में उद्दीपक का तात्कालिक अनुभव होता है जैसे- यदि कोई व्यक्ति कमरे में पढ़ रहा है इतने में यदि उसकी बहिन उस कमरे में प्रवेश करती हैं तो कमरे में बहिन के प्रवेश करते ही उसका प्रत्यक्षीकरण हो जाता है न कि कुछ देर सोचने के बाद।

vii. प्रत्यक्षीकरणपूर्व अनुभवों और अधिगम (Past Experiences & Learning) पर बहुत कुछ निर्भर करता है। यह देखा गया है कि उद्दीपकों का अधिगम और पूर्व अनुभव जितने अधिक होते हैं उनका प्रत्यक्षीकरण उतना ही शीघ्र होता है, दूसरी ओर जिन उद्दीपकों का व्यक्ति ने पहले कभी अनुभव नहीं किया होता हैं उन उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण देर से करता है।

viii. प्रत्यक्षीकरण एक चयनात्मक प्रक्रिया है। हर समय अनेकों उद्दीपक हमारे ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजित करते हैं। परन्तु उनमें से हम सभी का प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाते हैं सच्चाई तो यह है कि हम अपनी रुचि, आदत, प्रेरणा के अनुसार जिन उद्दीपकों पर ध्यान या अवधान (Attention)देते हैं उन्हीं उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण हमें होता है।

ix. प्रत्यक्षीकरण का आधार परिवर्तन है। यदि बाह्य वातावरण में सब कुछ एक-सा ही होता तो हमें जो अनुभव प्राप्त हुए हैं वह नहीं प्राप्त हुए होते। वातावरण के किसी परिवर्तन के प्रति अनुक्रिया के रूप में ही हमेशा प्रत्यक्षीकरण होता है।

अभ्यास प्रश्न -2

1. संवेदना बाह्य....……पर आधारित होती है।
2. प्रत्यक्षीकरण में उद्दीपक से सम्बंधित संवेदनाएं बिखरी न होकर …….....….. रूप में होती हैं।
3. प्रत्यक्षीकरण में उद्दीपक का…….....होता है।
4. प्रत्यक्षीकरण का आधार.....होता है।

11.6 प्रत्यक्षीकरण और संवेदना में अंतर (Difference Between Perception and Sensation)

प्रत्यक्षीकरण तथा संवेदना एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बंधित हैं निःसंदेह दोनों ही ज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रियाएँ हैं, परन्तु दोनों ही प्रक्रियाएँ एक ही चैन की दो अलग-अलग कड़ियाँ हैं। प्रत्यक्षीकरणतथा संवेदना के बीच प्रमुख अंतर निम्नलिखित है.-

i. संवेदना एक सरल प्रक्रिया है जबकि प्रत्यक्षीकरण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है।

ii. संवेदना में मस्तिष्क निष्क्रिय रहता है जबकि प्रत्यक्षीकरण में मस्तिष्क सक्रिय रहता है।

iii. संवेदना का पूर्व-अनुभव से कोई सम्बन्ध नहीं होता है जबकि प्रत्यक्षीकरण का होता है।

iv. संवेदना से हमें ज्ञान का कच्चा माल मिलता हैं जबकि प्रत्यक्षीकरण उस ज्ञान को संगठित रूप प्रदान करता है।

v. संवेदना उद्दीपकों के प्रति मस्तिष्क की प्रथम प्रक्रिया है, जबकि प्रत्यक्षीकरण संवेदना के उपरांत होने वाली दूसरी प्रक्रिया है।

vi. संवेदना में हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ और नाडी संस्थान ही सक्रिय रहता है, जबकि प्रत्यक्षीकरण में व्यक्ति का सम्पूर्ण शरीर सक्रिय रहता है।

vii. संवेदना केवल एक मनोवैज्ञानिक कल्पना मात्र है, जबकि प्रत्यक्षीकरण एक प्रकार का मूर्त अनुभव है।

viii. संवेदना से प्राप्त ज्ञान अस्पष्ट तथा होता है, जबकि प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त ज्ञान स्पष्ट, निश्चित तथा अवबोधपूर्ण होता है।

ix. कुछ मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि संवेदना प्रत्यक्षीकरण का एक भाग है। वे मानते है कि उत्तेजना की प्रथम अनुभूति संवेदना है, और उत्तेजना के स्पष्ट ज्ञान से सम्बंधित मानसिक प्रक्रिया प्रत्यक्षीकरण है।

अभ्यास प्रश्न-3 सत्य/असत्य बताइये

1. प्रत्यक्षीकरण में व्यक्ति का सम्पूर्ण शरीर सक्रिय रहता है।
2. प्रत्यक्षीकरण में मस्तिष्क निष्क्रिय रहता है।
3. प्रत्यक्षीकरण संवेदना के उपरांत होने वाली दूसरी प्रक्रिया है।

11.7 प्रत्यक्षीकरण के सिद्धांत(Theories of Perception)

मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया को समझने हेतु मुख्यतः छः सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। इनके माध्यम से प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या अलग-अलग ढंग से की गयी है जो निम्नलिखित हैं-

i. प्रत्यक्षीकरण का गैस्टाल्ट सिद्धांत (Gestalt Theory of Perception)
ii. प्रत्यक्षीकरण का गिब्सन का सिद्धांत (Gibsonian Theory of Perception)
iii. प्रत्यक्षीकरण का दैहिक सिद्धांत (Physiological Theory of Perception)
iv. प्रत्यक्षणका सूचना-संसाधन सिद्धांत (Information Processing Theory of Perception)
v. प्रत्यक्षीकरण का व्यवहारवादी सिद्धांत(Behaviouristic Theory of Perception)
vi. प्रत्यक्षीकरण का निर्देश-अवस्था सिद्धांत (Directive-State Theory of Perception)

11.7.1 प्रत्यक्षीकरण का गैस्टाल्ट सिद्धांत(Gestalt Theory of Perception)

1912 में गैस्टाल्ट मनोविज्ञान का उदय हुआ। इस सिद्धांत के प्रतिपादक गैस्टाल्ट सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिक हैं, जिसमें वरदाइमर गुरु तथा कोफका एवं कोहलर शिष्य थे। गैस्टाल्ट शब्द जर्मन भाषा का शब्द है। इसका कोई पर्याय नहीं है। गैस्टाल्ट शब्द से किसी वस्तु या अनुभव में निहित समग्रता का बोध होता है। गैस्टाल्टवादियों का मत है कि व्यक्ति उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण उद्दीपक के खण्डों के रूप में न करके पूर्ण (whole) के रूप में करता है। प्रत्यक्षीकरण के सम्बन्ध में गैस्टाल्टवादियों के दो मुख्य नियम हैं-

1. **समग्रता का नियम (Law of Whole):-**इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण समग्र रूप में करता है। किसी उद्दीपक के आकार, रंग, गंध, रूप आदि से सम्बन्धित संवेदनाएँ क्रमशः या अलग-अलग न होकर एक समग्र अथवा पूर्ण रूप में होती हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम एक साईकिल उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण करते हैं तो इसका प्रत्यक्षीकरण समग्र रूप में करते हैं। ऐसा नही कि टायर, रिम, पैडल, सीट, घंटी,

चैन, हैंडल, कैरियल, रंग, आकर आदि का प्रत्यक्षीकरण अलग-अलग करते हैं। कभी-कभी उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण करते समय व्यक्ति इस समग्रता के नियम के कारण उद्दीपक की छोटी-मोटी कमियों या दोषों पर ध्यान नहीं देता है जैसे तीन रेखाओं से एक त्रिभुज की रचना की जाए और यदि त्रिभुज की तीनों रेखाओं के सिरे आपस में एक-दूसरे को स्पर्श न किये हुए हों अर्थात त्रिभुज के अपूर्ण होने के बावजूद भी हम इसका प्रत्यक्षीकरण समग्र या पूर्ण रूप में अर्थात त्रिभुज के रूप में करते हैं।

2. **आकृति तथा पृष्ठभूमि का नियम (Law of Figure and Background):-**जब व्यक्ति किसी वस्तु विशेष का दृष्टि प्रत्यक्षीकरण करता है तो उसमें आकृति और पृष्ठभूमि अधिक महत्वपूर्ण होती है। वस्तु विशेष का जो भाग अत्यन्त स्पष्ट दिखाई देता है उसे आकृति तथा जो भाग कम स्पष्ट दिखाई देता है वह पृष्ठभूमिकहलाता है। इस तरह के प्रत्यक्षीकरण को आकृति-पृष्ठभूमि प्रत्यक्षीकरण**(Figure and BackgroundPerception)** कहा जाता है।

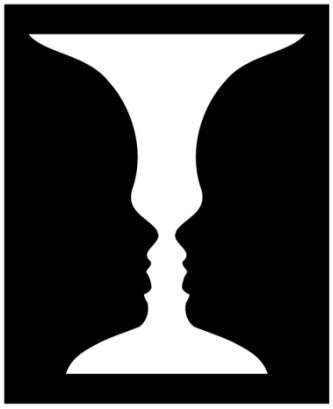

चित्र11.2 - Reversible Figure & Background

चित्र 11.2 में उजला भाग आकृति तथा काला भाग पृष्ठभूमि के रूप में दिखाई पड़ता है, परन्तु जब काला भाग आकृति के रूप में दिखलाई देता है तो उजला भाग पृष्ठभूमि के रूप में दिखलाई पड़ता है। प्रत्यक्षीकरण केवल दृष्टि संवेदनाओं में ही नही होता बल्कि सभी प्रकार की संवेदनाओं में भी होता है जैसे- संगीत की पृष्ठभूमि में किसी गीत का सुनना श्रवण प्रत्यक्षीकरण का उदहारण है।

11.7.2 प्रत्यक्षीकरण का गिब्सोनियन सिद्धांत(Gibsonian Theory of Perception)

जे. जे. गिब्सन ने प्रत्यक्षीकरण के स्वरूप की व्याख्या करने हेतु जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया उसे गिब्सोनियन सिद्धांत कहा जाता है यह एक सरल एवं प्रत्यक्ष सिद्धांत है। गिब्सन का मत था कि वातावरण में उपस्थित उद्दीपक में पर्याप्त सूचनाएं विद्यमान होती है इसलिए प्रत्यक्षीकरण में उद्दीपक के गुणों या विशेषताओं पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इस सिद्धांत की सबसे महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि प्रत्यक्षीकरण का निर्धारण प्रत्यक्षणकर्ता के गुणों के आधार पर न होकर उद्दीपक जिसका प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति सीधे-सीधे करता है, के गुणों या विशेषताओं के आधार पर होता है। इसलिए गिब्सन के सिद्धांत को प्रत्यक्षीकरण का प्रत्यक्ष सिद्धांत कहा जाता है। कुछ आलोचकों ने इस सिद्धांत के बारे में आलोचना

करते हुए कहा है कि गिब्सन ने प्रत्यक्षीकरण हेतु सामान्य सूझ-बूझ से काम लिया है जिसमें वस्तुनिष्ठता तथा वैज्ञानिकता का आभाव नजर आता है। प्रत्यक्षीकरण के गिब्सोनियन सिद्धांत के आधार पर सारांशत: कहा जा सकता है कि-

i. उद्दीपक(Stimulus)की विशेषता सभी प्रकार के प्रत्यक्षीकरण का आधार होती है।
ii. प्रत्यक्षीकरण सरल व प्रत्यक्ष(Direct)होता है।
iii. प्रत्यक्षीकरण में प्रत्यक्षणकर्ता के गुणों पर ध्यान न देकर उद्दीपक के गुणों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

11.7.3 प्रत्यक्षीकरण का दैहिक सिद्धांत(Physiological Theory of Perception):-

वातावरण का वह तत्व जो क्रिया का कारण बनता है उद्दीपक (Stimulus) कहलाता है। जब किसी उद्दीपक से व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रिय प्रभावित होती हैं तो उसमें तंत्रिका आवेग उत्पन्न हो जाता है जो मस्तिष्क के विशिष्ट क्षेत्र में पहुँचता है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को उसका प्रत्यक्षीकरण होता है। ज्ञानेन्द्रियों से लेकर मस्तिष्क तक होने वाली प्रक्रिया को न्यूरोदैहिक प्रक्रम (Neuro-Physiological Mechanism) कहा जाता है।दैहिक सिद्धांतमें सभी तरह के प्रत्यक्षणात्मक अनुभूतियों की व्याख्या न्यूरोदैहिक प्रक्रम के रूप में की जाती है।

दैहिक सिद्धांत के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या किस तरह से की जाये तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो अंत:क्रियाएँ होती हैं उनका क्या आधार है? प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता किस प्रकार होता है? हेब्ब (Hebb, 1949) का मत है कि प्रत्यक्षीकरण का अधिकतर अंश जन्मजात न होकर अर्जित होता है। उन्होंने अनुबंधन के सामान एक नियम का प्रतिपादन किया है। जबकि गैस्टाल्टवादियों का मत है कि प्रत्यक्षणात्मक अनुभूति जन्मजात होती है तथा इसके पक्ष में उन्होंने यह दावा किया कि किसी आकृति की मूल एकता का प्रत्यक्षीकरण उन व्यक्तियों या प्राणियों द्वारा भी आसानी से कर लिया जाता है जो जन्म से किसी कारण से अन्धे रहे होते हैं। गैस्टाल्टवादियों ने वॉन सेन्डन (VonSenden) तथा रिसेन(Risen) द्वारा किये गये प्रयोगों का उदहारण दिया। वॉन सेन्डन के अध्ययन में पाया गया कि जो व्यक्ति जन्म से मोतियाबिन्द के कारण नहीं देख पाये थे; ऑपरेशन के बाद वे लोग आकृतियों को पहली बार देखकर विभेद नहीं कर पाते थे परन्तु उन आकृतियों को स्पर्श कर विभेद कर लेते थे। इसी तरह रिसेन के अध्ययन में पाया गया कि वनमानुष को अँधेरे में रखकर पालन-पोषण के बावजूद भी वे आकृतियों का प्रत्यक्षण लगभग कर लेते हैं। दोनों प्रयोगों को विश्लेषित करने के बाद हेब्ब (Hebb) ने बताया कि, जितना एक सामान्य प्राणी अच्छी तरह से प्रत्यक्षण कर सकता है उतना दुबारा से रोशनी प्राप्त करने वाला व्यक्ति या अँधेरे में पाला गया वनमानुष नही कर सकता अर्थात ऐसे मनुष्य या पशु को सामान्य मनुष्य या पशु से अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है तभी उनसे प्रत्यक्षण की पूर्ण स्पष्टता की उम्मीद की जा सकती है। हेब्ब के सिद्धांत में प्रत्यक्षण प्रक्रिया में गत अनुभूति या सीखना या प्रशिक्षण अनिवार्य है।

11.7.4 प्रत्यक्षीकरण का सूचना-संसाधन सिद्धांत(Information Processing Theory of Perception):- सूचना-संसाधन सिद्धांत के अनुसार प्रत्यक्षण, संवेदना तथा अन्य उच्चतर मानसिक प्रक्रियाएँ एक-दूसरे से भिन्न नहीं होती हैं बल्कि एक-दूसरे पर निर्भर और

अंतरसंबंधित होती है। इन सभी का अध्ययन एक ही तंत्र के भीतर किया जमा चाहिए। जब व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियाँ किसी उद्दीपक से प्रभावित होती हैं तो उनमें संवेदना उत्पन्न होती है फिर उसका संसाधन (Process) करने से उसे प्रत्यक्षीकरण होता है। यह सिद्धांत उन मनोवैज्ञानिकों ने दिया जो संचार तथा कम्प्यूटर में रूचि रखते थे। सूचना से अभिप्राय है, जिसके प्राप्त होने से व्यक्ति के मन में उद्दीपक के बारे में बनी अनिश्चितता दूर हो जाती है। उदाहरणार्थ आप पुस्तकालय में किताब खोज रहे हो। आपको मालूम है कि किताब वहाँ है लेकिन कहाँ रखी हुई है यह पता नही है। अगर आपका मित्र यह बताता है कि वह किताब पुस्तकालय में है तो यह तथ्य आपके लिए कोई सूचना नहीं कहलाएगी क्योंकि इससे आपको उसकी सही स्थिति का पता नही चल पायेगा तथा मन में अनिश्चितता बनी रहेगी। अनिश्चितता से ज्ञान की कमी की ओर संकेत मिलता है तथा सही सूचना की मात्रा का निर्धारण इस बात से होता है कि अनिश्चितता की मात्रा में कितनी कमी आती है।

सूचना-संसाधन सिद्धांत की यह मान्यता है कि व्यक्ति में प्रत्यक्षीकरण की क्षमता सीमित होती है। व्यक्ति बहुत सारे उद्दीपकों में से कुछ का ही प्रत्यक्षीकरण कर पता है। अगर व्यक्ति किसी एक सूचना पर ध्यान देता है तो उसे दूसरी प्रकार की सूचना को छोड़ना ही पड़ता है। प्रत्यक्षीकरण में किसी भी सूचना का प्रवाह निम्नांकित चरणों में होता है-

i. **उद्दीपक**(Stimulus)- वातावरण का वह तत्व जो क्रिया का कारण बनता है उद्दीपक कहलाता है। व्यक्ति के सामने जब कोई उद्दीपक उपस्थित होता है तो उससे संवेदी ग्राहक प्रभावित होते हैं।

ii. **संवेदी ग्राहक**(Sensory Receptor)- उद्दीपक व्यक्ति के संवेदी ग्राहक (आँख, कान, नाक आदि) को प्रभावित करता है जिससे सूचनाएँ केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में पहुँचती हैं।

iii. **केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र**(Central Nervous System)- केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र जब उन सूचनाओं को ग्रहण करता है। ऐसी सूचनाएँ वहाँ पहले से उपस्थित सूचनाओं से प्रभावित होती हैं। पहले से उपस्थित सूचनाओं को मनोवैज्ञानिक शोर कहा जाता है।

iv. **कॉरटिकल मस्तिष्क केंद्र**(Cortical Brain Centre)- केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा ग्रहण की गई सूचनाओं को मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों द्वारा संसाधित किया जाता है।

v. **प्रत्यक्षीकरण** (Perception)- अन्त में कॉरटिकल मस्तिष्क केन्द्रों से प्राप्त सूचना के आधार पर व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण की अनुक्रिया सही ढंग से कर पाता है।

11.7.5 प्रत्यक्षीकरण का व्यवहारवादी सिद्धांत(Behaviouristic Theory of Perception) - व्यवहारवादी सिद्धांत का मानना है कि प्रत्यक्षीकरण भी अन्य व्यवहार की तरह एक सीखा हुआ व्यवहार है, जैसे अन्य व्यवहारों को निर्धारित करने में जिन नियमों और सिद्धांतों की आवशयकता होती है उसी प्रकार प्रत्यक्षीकरण में भी आवश्यकता होती है। प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या करने का सफल प्रयास हल (Hull, 1943) द्वारा किया गया। उनके अनुसार जब सभी तंत्रिका आवेग जो तंत्रिका तंत्र में सक्रिय होते हैं, एक दूसरे के साथ

अंत:क्रिया करते हैं और एक दूसरे को इस ढंग से परिवर्तित कर देते हैं कि उनका रूप सभी वर्तमान संवेदी आवेग से भिन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि हरे रंग के कागज के टुकड़े को बैंगनी रंग के बड़े कागज के टुकड़े के बीच में रखते हैं तो दृष्टि तंत्र हरे कागज से उत्पन्न संवेदी तंत्रिका आवेग बैंगनी रंग के कागज से उत्पन्न संवेदी तंत्रिका आवेग के साथ अंत:क्रिया कर दोनों तरह के संवेदी आवेगों को परिवर्तित कर एक नया रूप देता है, जिसके परिणामस्वरूप हरे रंग के कागज का टुकड़ा कुछ पीलापन लिये दिखलाई पड़ता है।

व्यवहारवादियों का यह भी मत था कि पूर्व में कहे गये कोई शब्द जिनका कुछ देर बाद तक प्रभाव तंत्रिका तंत्र में होता है ऐसे शब्दों को उद्दीपक चिन्ह कहा जाता है। ऐसे उद्दीपक चिन्ह वर्तमान शब्दों से उत्पन्न वर्तमान तंत्रिका आवेग के मध्य अंत:क्रिया करते हैं तभी हम शब्दों का सही अर्थ समझते हैं। इस प्रकार होने वाली अंत:क्रिया को कालिक अंत:क्रिया (Temporal Interaction) कहते हैं। जिस अंत:क्रिया में उद्दीपक व्यक्ति के सामने उपस्थित होते हैं। तथा उन उपस्थित उद्दीपकों से उत्पन्न तंत्रिका आवेगों के मध्य हुई अंत:क्रिया को स्थानिक अंत:क्रिया(Spatial Interaction) कहा जाता है। ऊपर के उदहारण में हरे व बैंगनी रंग के कागज के टुकड़ों के मध्य हुई अंत:क्रिया स्थानिक अंत:क्रिया का घोतक है क्योंकि दोनों व्यक्ति के सामने उपस्थित रहते हैं।

तंत्रिका आवेग के मध्य इन अंत:क्रियाओं के आधार पर हल (Hull) ने एक विशेष संप्रत्यय का प्रतिपादन किया जिसे उद्दीपक पैटर्न्स कहा जाता है। उन्होंने उद्दीपकों के पैटर्निंग के आधार पर बताया कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में एक ही उद्दीपक के अर्थ बदल जाते हैं। उदाहरणार्थ चित्र-12.3 में बायीं ओर का शब्द 'सॉर्ड' (तलवार) है तथा दायीं ओर 'एट थाउजेण्ड फिफ्टी थ्री' (आठ हजार तिरेपन) लिखा हुआ हम देखते हैं। अब दोनों शब्दों के 's' तथा'o' के प्रत्यक्षण पर ध्यान दें तो ये दोनों ही उद्दीपक दोनों ही परिस्थितियों में समरूप हैं यानि सामान रूप से लिखे गये हैं, फिर भी शब्द के सन्दर्भ में इसे 'एस' तथा 'ओ' तथा अंक के सन्दर्भ में इसे 'फाइव' (पांच) तथा 'जीरो' (शून्य) पढ़ा जाता है।

चित्र 9.3

Sword 8oS3

चित्र – 11.3

11.7.6 प्रत्यक्षीकरण का निर्देश-अवस्था सिद्धांत(Directive-State Theory of Perception)

गैस्टाल्ट सिद्धांत के द्वारा प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या ठीक ढंग से नही हो पाती है, इसलिए गैस्टाल्टवादियों की भूल को सुधारने के ख्याल से ब्रूनर, शेफर, मर्फी तथा पोस्टमैन आदि ने निर्देश-अवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इनका मत था कि एक तरफ तो गैस्टाल्टवादियों ने प्रत्यक्षीकरण में पूर्ण क्षेत्र के संप्रत्यय पर अधिक बल डाला तथा दूसरी तरफ इन्होंने उद्दीपक कारकों को छोड़कर व्यक्तिगत कारकों जिसमें व्यवहारपरक या प्रेरणात्मक कारक मूल रूप से आते हैं, के बारे में कुछ नहीं कहा गया है।निर्देश-अवस्था सिद्धांतवादियों ने बताया कि प्रत्यक्षीकरण दो तरह के

कारकों द्वारा निर्धारित होता है (1) स्थानिक कारक जिसमें उद्दीपक कारक आते हैं तथा (2) व्यवहारपरक कारक में व्यक्तिगत कारक जैसे आवश्यकता, अभिप्रेरक, मान आदि आते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक ने निर्देश-अवस्था सिद्धांत को क्रियात्मक सिद्धांत भी कहा गया।

प्रत्यक्षीकरण में व्यवहारपरक कारकों या अभिप्रेरणात्मक कारकों के महत्व को बताने के लिए निर्देश-अवस्था सिद्धांतवादियों ने निम्नलिखित प्राकथन दिए गए जिससे प्रत्यक्षीकरण का निर्धारण होता है।

i. व्यक्ति की शारीरिक या दैहिक आवश्यकताओं द्वारा प्रत्यक्षीकरण निर्धारित होता है।
ii. प्रत्यक्षीकरण किये जाने वाली वस्तु से सम्बंधित पुरस्कार एवं दण्ड द्वारा प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया प्रभावित होती है।
iii. व्यक्ति अपने मूल्य गुणों से सम्बंधित वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण तेजी से करता है।
iv. जिस उद्दीपक का मूल्य व्यक्ति के लिए अधिक होता है, वह उसी का प्रत्यक्षीकरण बढ़-चढ़ कर करता है।
v. जो उद्दीपक व्यक्ति के शीलगुणों के अनुकूल होते हैंतो वह उनका प्रत्यक्षीकरण करता है।
vi. व्यक्ति सांवेगिक या धमकाने वाले उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण तटस्थ उद्दीपकों की अपेक्षा देरी से करता है।

अभ्यास प्रश्न 4

1. गिब्सोनियन सिद्धांत का प्रतिपादन.....ने किया था।
2. ज्ञानेन्द्रियों से लेकर मस्तिष्क तक होने वाली प्रक्रिया को.....कहते है।
3. समग्रता का नियम.....ने दिया था।
4. व्यक्ति के मन में उद्दीपक के बारे में बनी अनिश्चितता.....के प्राप्त होने से दूर हो जाती है।

11.8 प्रत्यक्षणात्मक संगठन जन्मजात होता है या अर्जित? (Is Perceptual Organization Innate or Acquired?)

क्या प्रत्यक्षणात्मक संगठन की प्रक्रिया जन्मजात होती है या अर्जित होती है? इस प्रश्न को लेकर मनोवैज्ञानिकों में विशेषकर गेस्टाल्टवादियों तथा व्यवहारवादियों के बीच काफी मतभेद रहा है। गेस्टाल्टवादियों तथा उनके समर्थक मानते हैं कि प्रत्यक्षणात्मक संगठन जन्मजात होता है। इनका मत है कि केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में कुछ जन्मजात ऐसे दैहिक गुण होते हैं जिनके कारण प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन की प्रक्रिया जन्मजात होती है। व्यवहारवादियों एवं उनके समर्थकों का मत है कि अन्य व्यवहारों के सामान प्रत्यक्षणात्मक संगठन अर्जित होता है। दोनों पक्षों ने अपने-अपने तर्क के पक्ष में प्रयोगात्मक तथ्य उपलब्ध किये हैं, जिनका वर्णन निम्नांकित है-

i. **प्रत्यक्षणात्मक संगठन की प्रक्रिया जन्मजात होती है-** प्रत्यक्षणात्मकसंगठन एक जन्मजात प्रक्रिया है, इस तथ्य को जानने के लिए फैंज (Fantz) ने नवजात चूजों पर एक प्रयोग किया। जिसमें उन्होंने नवजात चूजों को अंडे से निकलने के तुरंत बाद उनको छोटे-छोटे वस्तुएं जो उनके भोजन के गोल-गोल दाने से मिलते-जुलते थे, उनके सामने रखी गयीं। परिणाम में देखा गया कि चूजे उन वस्तुओं पर चोंच मारने लगे। इस प्रयोग के आधार पर वे इस परिणाम पर पहुँचे कि नवजात चूजों में पहले से किसी तरह की सीखी गयी अनुभूति की पूर्ण कमी होने के बावजूद अपने भोजन से मिलती-जुलती चीजों का प्रत्यक्षण करने की क्षमता थी जिससे यह निष्कर्ष निकलता है किन चूजों मेंप्रत्यक्षणात्मक संगठन की क्षमता जन्मजात थी। हेस (Hass,1959) ने एक दूसरा प्रयोग किया जिसमें उन्होंने चूजों के प्रत्यक्षणात्मक अनुभूति को चूजों की आँख पर प्रिज्म धूप-चश्मा लगाकर बदलने की कोशिश की। इस प्रिज्म धूप चश्मा को लगा लेने के बाद चूजों को कोई भी वस्तु अपने वास्तविक जगह से कुछ अंश विस्थापित नजर आती थी। इन चूजों को भोजन प्राप्त करने के लिए भोजन रखे गये जगह से कुछ अंश अलग जो उसे प्रिज्म धूप चश्मा से दिखाई देता था, पर चोंच मारना सीखना था। परिणाम में देखा गया कि चूजों द्वारा ऐसा करना कभी नहीं सीखा गया बल्कि वे ठीक उसी जगह पर चोंच मारते पाये गए जहाँ भोजन की वास्तविक जगह थी। इससे साबित होता है कि इन चूजों में वस्तुओं के आकर, स्थान आदि के प्रत्यक्षण की जन्मजात क्षमता थी जो प्रयोगकर्ता के कोशिश के बावजूद भी परिवर्तित नहीं हो सका। फैंज(Fantz, 1961)ने एक अध्ययन शिशुओं पर किया। इस अध्ययन में उन्होंने पाया कि जन्म के करीब 4 दिन बाद इन शिशुओं को मानव चेहरा के समान चेहरा तथा मानव चेहरा का विकृत रूप दिखलाया गया। परिणाम में देखा गया कि इन मानव शिशुओं में स्पष्ट चेहरा पर न कि विकृत चेहरा पर गौर से देखने की एक जन्मजात प्रवृति थी। इसके आधार पर पुनः यह सबूत मिलता है कि प्रत्यक्षणात्मक संगठन की प्रक्रिया जन्मजात होती है।

गेस्टाल्टवादियों ने अपने समकृतिकता के नियम (Principle of Isomorphism)के सहारे यह दिखलाने की कोशिश किये हैं कि प्रत्यक्षणात्मक संगठन की प्रवृति व्यक्ति में जन्मजात होती है। व्यक्ति जो कुछ भी देखता है, उसका आधार केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में होता है। इसके समर्थन में कोहलर तथा हेल्ड ने एक प्रयोग किया जिसमें आँख के सामने से दृष्टि उद्दीपक को ले जाया गया तो मस्तिष्क के दृष्टि क्षेत्र से प्राप्त होने वाले उसके EEG (Electroencephalogram)को रिकार्ड किया गया। परिणाम में पाया गया कि ऐसी परिस्थिति में EEG द्वारा अभिलेखित मस्तिष्कीय तरंग में कुछ परिवर्तन होते पाये गए जिससे इस बात का स्पष्ट सबूत मिलता है कि प्रत्यक्षणात्मक क्षेत्र तथा दैहिकमस्तिष्कीयक्षेत्र में स्पष्ट सम्बन्ध है और इस का स्वरूप अर्जित न होकर जन्मजात है।

ii. **प्रत्यक्षणात्मकसंगठन की प्रक्रिया अर्जित होती है-** व्यवहारवादियों तथा उनके समर्थकों का मत है कि प्रत्यक्षणात्मकसंगठन की प्रक्रिया जन्मजात न होकर अर्जित होती है। रिसेन तथा ऐरोंस ने एक प्रयोग बिल्ली के बच्चों पर किया। इन्होने बिल्ली

के इन बच्चों को सामान्य दृष्टि वातावरण में रखकर पाला-पोषा परन्तु उन्हें घुमने-फिरने या चलने पर रोक लगा दी गयी थी। परिणाम में देखा गया कि इन बच्चों का दृष्टि विभेदन क्षमता अविकसित थी प्रत्यक्षणात्मक आकार, दूरी आदि का भी प्रत्यक्षण काफी असंतोषजनक था। ऐसा परिणाम इसलिए आया क्योंकि बिल्ली के इन बच्चों को वातावरण में घुमने-फिरने नहीं दिया, अतः उन्हें बाहरी पर्यावरण के साथ होने वाले अंतःक्रिया की अनुभूतियों की कमी थी। इस अनुभूतियों के कमी के कारण उनका प्रत्यक्षणात्मकसंगठन काफी असंतोषजनक था अर्थात उमें आकार, दूरी आदि का स्पष्ट प्रत्यक्षण नहीं हो रहा था।

11.9 प्रत्यक्षणात्मक अधिगम (Perceptual learning)

प्रत्यक्षीकरण और अवलोकन करने की शक्ति में घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि अवलोकन के माध्यम से किसी भी उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण स्पष्ट ढंग से होता है। इसलिए बालक को प्रारंभ से ही मॉन्टेसरी, डाल्टन, किंडरगार्डन तथा प्रोजेक्ट विधि (किल्पैट्रिक महोदय) जैसी शिक्षा की नवीन प्रणालियों के द्वारा अवलोकन शक्तियों के विकास पर ध्यान देना चाहिए। प्रत्यक्षीकरण हेतु बालकों को शैक्षिक दृष्टि से उपयोगी विभिन्न स्थानों का भ्रमण कराया जाना चाहिए जिससे उनको प्रत्यक्ष अनुभव करने के अधिक अवसर मिलते हैं। उन्हें क्रियाशील रखने हेतु खेलकूद, व्यायाम आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा स्वंय कार्य करके सिखने पर बल दिया जाना चाहिए। अध्यापक द्वारा कक्षा में विभिन्न प्रकार की शिक्षण सामग्री का भी प्रयोग करना चाहिए क्योंकि इससे प्रत्यक्षण शक्ति का विकास होता है।

प्रत्यक्षीकरण के विकास हेतु बालकों को अवलोकन करने के अधिक से अधिक प्रयास करने होंगे।क्योंकि बालकों में अवलोकन शक्ति की गहनता का आभाव होने कारण वे अपने सामने विभिन्न उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाते हैं। माता-पिता व अध्यापकों को बालकों में प्रत्यक्षीकरण का विकास हेतु उन्हें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को दिखाया जाना चाहिए और उनकी विशेषताओं, समानता और असमानता का भी ज्ञान कराया जाना चाहिए। बालकों से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बारे में प्रश्न पूछकर उनमें निरीक्षण करने की शक्ति हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।तभी उनमें प्रत्यक्षणात्मक अधिगम हो पायेगा।

अभ्यास प्रश्न 5

1. प्रत्यक्षीकरण और.....करने की शक्ति में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।
2. किल्पैट्रिक महोदय ने.....का प्रतिपादन किया।
3. गेस्टाल्टवादियों ने प्रत्यक्षणात्मकसंगठनको एक .....प्रक्रिया माना है।

11.10सारांश(Summary)

प्रत्यक्षीकरण एक पूर्ण मानसिक प्रक्रिया है। वर्तमान समय में सभी शिक्षा-शास्त्री एवं मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्षीकरण के महत्व और उपयोगिता को स्वीकार करते हैं क्योंकि व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के द्वारा किसी भी वस्तु का संज्ञान कर सकता है।प्रत्यक्षीकरण के माध्यम से बालक के ज्ञान में स्पष्टता आती है एवं विचारों का विकास होता है। विशेष परिस्थितियों में प्रत्यक्षीकरण का निर्धारण किस तरह से होता है इससे सम्बंधित जानकारी प्रदान करने हेतु इस पाठ के अंतर्गत हमने प्रत्यक्षीकरण का अर्थ,

स्वरूप, विशेषताएँ, प्रत्यक्षीकरण व संवेदना में अंतर, प्रत्यक्षीकरण के सिद्धांत व प्रत्यक्षणात्मक अधिगम का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया।

11.11 शब्दावली(Terminology)

- **उद्दीपक:-** वातावरणका वह तत्व जो क्रिया का कारण बनता है।
- **गैस्टाल्ट:-** किसी वस्तु या अनुभव में निहित समग्रता का बोध।
- **केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र:-** मस्तिष्क और मेरुरज्जु से बना वह तंत्र जो ग्रहण सूचनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचता है।
- **संवेदी ग्राहक:-** वे अंग जिनके द्वारा सूचनाओं को ग्रहण किया जाता है।
- **अनुबंधन:-** एक व्यवस्थित प्रक्रिया जिसके माध्यम से उद्दीपक के प्रति नयी अनुक्रिया सीखी जाती है।
- **न्यूरोदैहिक प्रक्रम:-** ज्ञानेन्द्रियों से लेकर मस्तिष्क तक होने वाली प्रक्रिया।
- **आवश्यकता:-** किसी वस्तु का अभाव या कमी।
- **प्रत्यक्षीकरण:-** संवेदना के उपरांत होने वाली मानसिक क्रिया।
- **संवेदना:-** उत्तेजना की प्रथम अनुभूति ।
- **अधिगम:-** अनुभव के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में होने वाला सकारात्मक परिवर्तन।
- **अवलोकन:-** किसी उद्दीपक से सम्बंधित तथ्यों को प्राप्त करने हेतु की गयी जाँच या अभिलेखन।

11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Exercises)

अभ्यास प्रश्न-1

1. मानसिक 2. संवेदना

अभ्यास प्रश्न-2

1. उद्दीपकों 2. संगठित 3. तात्कालिक अनुभव 4. परिवर्तन

अभ्यास प्रश्न-3

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

अभ्यास प्रश्न-4

1. जे. जे. गिब्सन 2. न्यूरोदैहिक प्रक्रम 3. गैस्टाल्टवादियों 4. सूचना

अभ्यास प्रश्न-5

1. अवलोकन 2. प्रोजेक्ट विधि 3. जन्मजात

11.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

- गुप्ता, एस. पी. एवं गुप्ता, अलका (2014); *उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान सिद्धांत : एवं व्यवहार*. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.
- पाठक, पी. डी. (2012); *शिक्षा मनोविज्ञान*. आगरा : श्री विनोद पुस्तक मंदिर.
- सिंह, अरुण कुमार (2006); *संज्ञानात्मक मनोविज्ञान*. वाराणसी: मोतीलाल बनारसी दास.
- एन.सी.ई.आर.टी (2006); *मनोविज्ञान*. नई दिल्ली.
- गर्ग, भंवरलाल एवं बक्षी, उषा (2002); *शिक्षा मनोविज्ञान*.जयपुर: सुरभि पब्लिकेशन्स.
- सिंह, अरुण कुमार (2001); *उच्चतरसामान्य मनोविज्ञान*. वाराणसी: मोतीलाल बनारसी दास.
- वर्मा, प्रीति एवं श्रीवास्तव, डी.एन. (2001);*आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर.
- माथुर, एस.एस. (1981); *शिक्षा मनोविज्ञान*. आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर.

11.14 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. प्रत्यक्षीकरण और संवेदनामें अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. प्रत्यक्षीकरण की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए प्रत्यक्षणात्मक अधिगम की व्याख्या कीजिए।
3. प्रत्यक्षीकरण के विभिन्न सिद्धांतों के विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. प्रत्यक्षणात्मक संगठन जन्मजात होता है या अर्जित? विभिन्न विचारधाराओं द्वारा स्पष्ट कीजिए।
5. प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप समझाते हुए प्रत्यक्षीकरण के गैस्टाल्ट सिद्धांत को विस्तार से लिखिए।

इकाई – 12

पैटर्न प्रत्याभिज्ञान पैटर्न प्रत्याभिज्ञान -का सिद्धांत, ऊपरी निचली संसाधन तथा आधारिक ऊपरी संसाधन (निम्न -उच्च तथा उच्च- निम्न) उपागम , प्रत्यक्षीकरण स्थैर्य Pattern recognition-Theories of pattern recognition, bottom up and top-down approach, perceptual constancy

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 पैटर्न प्रत्यभिज्ञान

(क) विशिष्ट विशेष सिद्धान्त

(ख) प्रोटोटाईप सुमेल सिद्धान्त

12.4 ऊपरी-निचली संसाधन तथा आधारिक ऊपरी संसाधन की अंतक्रिया

12.5 प्रत्यक्षीकरण स्थैर्य

12.6 प्रत्यक्षणज्ञानात्मक स्थिरता का महत्वपूर्ण सामान्यीकरण

12.7 सारांश

12.8 स्वमूल्यांकन प्रश्न

12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.1 प्रस्तावना

प्रत्यक्षीकरण या प्रत्यक्षण एक महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रिया है। यह वस्तुतः मनोविज्ञान एवं मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का विज्ञान है। व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का सही अध्ययन प्रत्यक्षण पर ही निर्भर करता है।

प्रत्यक्षण की क्रिया संवेदन की प्रक्रिया से प्रारंभ होती है और किसी व्यवहार करने की क्रिया के पहले तक होती रहती है। अतः प्रत्यक्षण की क्रिया संवेदन तथा व्यवहार करने की क्रिया के बीच की प्रक्रिया होती है।

पैटर्न प्रत्यभिज्ञान दिन-प्रतिदिन की एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है जिसके सहारे हम अपने आस-पास की घटनाओं का अर्थ समझते है। व्यक्ति को सार्थक ढंग से अपने वातावरण के साथ अन्तः क्रिया करने के लिए यह आवश्यक है कि वह उस वातावरण के विभिन्न उद्दीपक पैटर्न की पहचान करे। इस इकाई में आप पैटर्न प्रत्यभिज्ञान, ऊपरी-निचली संसाधन तथा आधारिक ऊपरी संसाधन की अंतक्रिया, प्रत्यक्षीकरण स्थैर्य तथा प्रत्यक्षणज्ञानात्मक स्थिरता का महत्वपूर्ण सामान्यीकरण के सन्दर्भ में अध्ययन करेंगे|

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- पैटर्न प्रत्यभिज्ञान के सिद्धान्त या उपागम के बारे में जान सकेंगे,
- पैटर्न प्रत्यभिज्ञान के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें,
- ऊपरी निचली संसाधन तथा आधारिक ऊपरी संसाधन की अंतक्रिया-के बारे में समझ पायेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण स्थैर्य के बारे में जान सकेंगे,

12.3 पैटर्न प्रत्यभिज्ञान

पैटर्न प्रत्यभिज्ञान दिन-प्रतिदिन की एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है जिसके सहारे हम अपने आस-पास की घटनाओं का अर्थ समझते है। व्यक्ति को सार्थक ढंग से अपने वातावरण के साथ अन्तः क्रिया करने के लिए यह आवश्यक है कि वह उस वातावरण के विभिन्न उद्दीपक पैटर्न की पहचान करे। मैटलिन' (1983) के अनुसार ''पैटर्न प्रत्यभिज्ञान से तात्पर्य संवेदी उद्दीपकों के जटिल व्यवस्थाओं की पहचान से होता है।'' पर एक 'कुत्ता' को देखता है और समझ जाता है कि यह मेरे मित्र रमेण का कुत्ता है। वस्तुतः व्यक्ति उद्दीपक को एक सही पहचान करता है जिससे उसके प्रति अर्थपूर्ण अन्तः क्रिया करना संभव हो पाता है। आधारित ऊपरी संसाधन तथा ऊपरी निचली संसाधन आधारिक ऊपरी संसाधनों में उद्दीपकों के महत्वपूर्ण तथ्यों या विशेषताओं से प्रक्रिया आरंभ करके ऊँचे स्तर पर लाया अनुभूति एवं संदर्भ से विशेष प्रत्याशा उत्पन्न होती है और उसी के अनुसार उद्दीपकों की व्याख्या होती है। आधारिक ऊपरी संसाधन मॉडल के तहत दो तरह के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है-

(क) विशिष्ट विशेष सिद्धान्त

(ख) प्रोटोटाईप सुमेल सिद्धान्त

इन दोनों सिद्धान्तों का वर्णन निम्नांकित हैं-

(क) विशिष्ट विशेष सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कार्नेल विश्वविद्यालय गिब्सन (1975) द्वारा इस बात की व्याख्या करने के लिए की गयी थी कि हमलोग अक्षरों की पहचान किस तरह से करते है। इनका कहना था कि व्यक्ति अक्षरों की पहचान उनकी विशिष्ट विशेषताअें के आधार पर करता है। प्रत्येक अक्षर की कुछ

अपनी विशिष्ट विशेषताएँ होती है जिनके आधार पर उनकी पहचान संभव हैं। जैसे H में तीन सीधी रेखाएँ जो उसकी अपनी विशिष्ट विशेषता के कारण अक्षर श्व्श् में एक भी सीधी रेखा नहीं है जो भी इस अक्षर की अपनी विशिष्ट विशेषता है। इस विशिष्ट विशेषता के कारण अक्षर श्व्श् अक्षर श्भ्श् से भिन्न लगता है। गिब्सन का यह सिद्धान्त इस बात पर बल डालता है कि प्रत्येक अक्षर का एक विशिष्ट विशेषता होता है जिसके आधार पर उसकी पहचान होती है। अक्षरों का कुछ समूह इस बात पर बल डालता है कि प्रत्येक अक्षर का एक विशिष्ट विशेषता होता है जिसके आधार पर उसकी पहचान होती है। अक्षरों का कुछ समूह तो ऐसा होता है जिनकी विशिष्ट विशेषता एक-दूसरे में पूर्णतः भिन्न होती है। जैसे, H एवं O दो ऐसे अक्षर हैं जिनकी विशिष्ट विशेषता आपस में समान नहीं है। कुछ अक्षर ऐसे है जिनकी विशिष्ट विशेषता आपस में बहुत अधिक है। जैसे H एवं O दो ऐसे ही अक्षर हैं। इन दोनों में अन्तर सिर्फ इतना ही है कि O में एक तिरछी रेखा होती है। अक्षरों की 'विशिष्ट विशेषता' की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह हमेशा स्थिर होती है चाहे उसे हाथ से लिखा जाय या फिर छापा जाय। गिब्सन ने अंग्रेजी के सभी 26 अक्षरों की विशिष्ट विशेषताओं का एक चार्ट बनाया है। इन्होंने ने कई तरह की विशेषताओं का वर्णन किया है जिसमें तीन विशेषताएँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है सीधा मुड़ा हुआ तथा कटान या प्रतिच्छेदन विशेषताओं पर सर्वाधिक निर्भर।

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए गिब्सन, सापिरों एवं योनास (1968) ने प्रयोग किया। इस प्रयोग में प्रयोज्यों के अक्षरों को एक-एक जोड़ा बारी-बारी से दिखलाया गया। उनसे यह निर्देशित किया गया है। दोनों अक्षर एक समान लगे, तो वे विशेष बटन को दबाकर अपनी अनुक्रिया करेंगे। इस तरह से प्रयोगकत्र्ताओं प्रत्येक प्रयोग से अन्तर्निहित अर्थात् अनुक्रिया करने में लगा समय के आधार पर समानता की माप की गयी यदि अन्तर्निहित कम होता था जैसा कि H तथा O के जोड़ा में होता था तो यह समझा जाता था कि दोनों एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं। अगर अन्तर्निहित लम्बा होता था जैसा कि H तथा O के जोड़ा में होता था, तो मर जाना जाता था कि अक्षर एक-दूसरे से समान है।

विशिष्ट विशेषता सिद्धान्त का एक आर्थिक पहलू यह है कि सिद्धान्त का दावा कुछ दैहिक सबूतों के अनुरूप है। जैसा कि अध्ययन से पता चला है कि दृष्टि कॉर्टेक्स में विभिन्न प्रकार के न्यूरोन होते हैं जिनमें से कुछ ऐसे होते है जो विशेष तरह की उन्मुखता वाले रेखाओं के प्रति अधिक तेजी से अनुक्रिया करते है। शायद यही कारण है कि सीधी रेखा वाले अक्षर तथा वक्राकार अक्षरों के प्रति अन्तर्निहित में अंतर होता है।

हम सिद्धान्त के साथ कुछ संप्रत्ययात्मक कठिनाइयाँ है। नॉस तथा शिलमैन ने एक ऐसी ही प्रमुख समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट कराया है। इन्होंने यह बतलाया प्रायः अक्षरों की विशिष्ट विशेषताओं के बीच अंतर करना संभव नहीं हो पाता है।

(ख) प्रोटोटाईप सुमेल सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के आधार पर यह कहा जाता है कि में उद्दीपकों का एक अमुर्त एवं आदर्श पैटर्न संचित करके रखता है। जब व्यक्ति कोई वस्तु को देखता है तो वह उसकी तुलना मन में संचित प्रोटोटाईप या आदर्श आकृति से करता है। अगर वह उससे सुमेलित होता हैं, तो पैटर्न की पहचान कर लेता हैं। अगर वह सुमेलित होता हैं, तो व्यक्ति पैटर्न की पहचान कर लेता है। अगर वह सुमेलित नहीं होता व्यक्ति उसे अन्य प्रोटोटाईप से एक-एक करके तब तक मिलाते जाता ही जब तक कि सही सुमेल न

प्राप्त हो जाय। इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि मन में संचित प्रोटोटाईप की निम्नांकित तीन विशेषताएँ होती है -

1. प्रोटोटाईप अमूर्त्त होता है।
2. प्रोटोटाईप आदर्शस्वरूप होते हैं।
3. प्रोटोटाईप का आकार दृढ़ रूप से विशिष्ट नहीं होता है।

इन दोनों सिद्धान्तों में सबसे प्रमुख अंतर यह है कि प्रोटोटाईप सिद्धान्त में उद्दीपक के सम्पूर्ण आकारों के महत्व पर बल डाला जाता है जबकि विशिष्ट विशेषता सिद्धान्त यह बतलाता है कि उद्दीपक के विशिष्ट महत्वपूर्ण हिस्सा की पहचान करने के बाद ही पैटर्न प्रत्यभिज्ञान होता है। इस तरह से विशिष्ट विशेषता सिद्धान्त के अनुसार स्मृति में संचित पैटर्न दृढ़ रूप से आकार में विशिष्ट होता है जबकि प्रोटोटाईप सिद्धान्त के अनुसार ऐसे संचित पैटर्न में लचीलापन का गुण होता है। इस लचीलेपन के विचार को एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है। व्यक्ति वैसे अक्षर को भी अपने वास्तविक स्वरूप में पहचान लेता है जिसकी आकृति विकृत होती है।

प्रोटोटाईप सुमेल सिद्धान्त के समान ही एक अन्य सिद्धान्त भी है जिसमें तुलनात्मक रूप से लचीलापन कम है सांचा सुमेल सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक अक्षर के विभिन्न रूपी का अलग पहले यह जाँचते है कि यह अक्षर मन में संचित अक्षरों के किसी साँचे से मिलता जुलता है या नहीं। अगर यह मिलता जुलता है तो हम उसकी पहचान कर लेते है। अगर वह किसी विशेष सांचा से नहीं मिलता है, तो हम फिर किसी दूसरे साँचे की तलाश करते है। यह सिद्धान्त ऊपर से देखने में बिलकुल ही सरल दिखता है परंतु इसमें दोष भी विद्यमान है। इस सिद्धान्त को यदि सही मान लिया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि सभी अक्षरों एवं उनके आकारों के सभी परिवर्तनों को सही-सही पहचानने के लिए मस्तिष्क में करोड़ों सांचा की जरूरत होगी और इसके लिए स्मृति तंत्र को काफी व्यापक एवं विस्तृत होने की आवश्यकता है। यह निश्चित रूप से एक असंभव कार्य दिखता है। इतना ही नहीं, इस सिद्धान्त की यह प्रक्रिया को पूरा होने में समय भी काफी लगेगा। इन दोषों या कठिनाइयों के कारण सांचा सुमेल सिद्धान्त को अस्वीकृत करके प्रोटोटाइप सुमेल सिद्धान्त को ही अधिक महत्व दिया गया है जो इस बात पर स्पष्ट रूप से बल देता है कि स्मृति में संचित प्रोटोटाईप अमूर्त आकार में दृढ़ एवं विशिष्ट न होकर लचीले होते है।

पोजनर, गोल्डस्मीथ एवं वेल्टन (1967) ने पैटर्न पहचान पर एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया। प्रयोज्य को प्रोटोटाईप के प्रत्येक विकृत प्रारूप को देखने के बाद बटन दबाकर उसे पहचानने की प्रतिक्रिया करनी थी। परिणाम में देखा गया है कि मौलिक प्रोटोटाईप के समान प्रारूप को अर्थात् प्रारूप में कम विकृति होने पर प्रयोज्यों ने उसकों पहचानने में कम त्रुटि किया परंतु जैसे-जैसे प्रारूप मौलिक प्रोटोटाईप से अधिक विकृत होता गया, पहचानने में त्रुटि बढ़ते गयी। पोजनर तथा उनके सहयोगियों के इस अध्ययन का समर्थन फ्रैक्स एवं ब्रैनस्फोर्ड (1971) ने अपने अध्ययन के परिणाम से किया है। इन्होंने अपने अध्ययन में बिंदु पैटर्न की प्रोटोटाईप के रूप में व्यवहत न करके ज्यामितीय आकार का उपयोग किये। प्रयोज्यों को यह बतलाना था कि वे पहले डिजाइन को देखे है या नहीं। परिणाम में पाया गया कि प्रयोज्य द्वारा उन डिजाइनों की पहचान सही-सही की गयी जो मौलिक डिजाइन के समान थे। परंतु जो जो डिजाइन मौलिक प्रोटोटाईप या डिजाइन से काफी भिन्न या परिवर्तित थे,

उनको पहचानने में त्रुटि की गयी। इस अध्ययन से पोजनर, एवं बेल्टन के अध्ययन की भी पुष्टि होती है।

कुछ अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि पैटर्न पहचान पर संदर्भ का भी प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में, पैटर्न ने पहचान में ऊपरी निचली संसाधन-मॉडल महत्व होता है। इस संसाधन में उद्दीपकों की व्याख्या व्यक्ति के पूर्व ज्ञान एवं उद्दीपक के संदर्भ में किया जाता है। रूमेलहार्ट)1977) ने सर्वाधिक बल देते हुए बताया है कि ऊपरी निचली संसाधन प्रक्रिया स्वरूप चयनित होता है। इस संसाधन को संप्रत्यात्मक रूप से व्युत्पन्नसंसाधन भी कहा गया है जबकि आधारिक ऊपरी संसाधन आँकड़े- ।व्युत्पन्न संसाधन भी कहा गया है

ऊपरी निचली संसाधन का समर्थन हमें दो तरह के मनोवैज्ञानिक घटना में भी स्पष्ट रूप से मिलती है शब्द श्रेष्ठता प्रभाव तथा सम्पूर्ण संसाधन शब्द श्रेष्ठता प्रभाव द्वारा ऊपरी निचली संसाधन की घटना को दिखलाया जाता है जिसमें व्यक्ति उन अक्षरों की पहचान उस समय तेजी से करता है जब वे एक सार्थक शब्द का निर्माण करते पाये जाते है। जानस्टोन तथा रीकर ने शब्द अध्ययन के परिणाम में देखा गया किमें उपस्थित करने पर उसे उसी अक्षर को में उपस्थित करने की तुलना में प्रयोज्यों द्वारा पहचान आसानी से कर लिया जाता था। इस परिणाम से स्वभावतः ऊपरी निचली-संसाधन को व्याख्या की पुष्टि होती है क्योंकि ऐसा होने का प्रमुख कारण विशेष संदर्भ तथा पूर्व ज्ञान का हो ना है अर्थात प्रयोज्य द्वारा देखने का पूर्व अनुभूति है।

सम्पूर्ण संसाधन की प्रक्रिया से भी ऊपरी निचली संसाधन मॉडल को समर्थन मिलता है। सम्पूर्ण संसाधन घटना इस सिद्ध करती है कि व्यक्ति प्रायः किसी उद्दीपक के विशिष्ट विशेषताओं को पहचानने के पहले उसके समग्र विशेषताओं की पहचान कर लेता है। इस तथ्य का प्रयोगात्मक समर्थन नेवन के प्रयोग में मिलता है।

परिणाम में यह देखा गया कि समग्र लक्ष्य की पहचान व्यक्ति तुलनात्मक रूप से अधिक तेजी से कर लेता था। परिणाम में यह भी देखा गया कि समग्र प्रत्यभिज्ञान कार्य की प्रतिक्रिया समय इस बात पर आधारित नहीं होता है कि उसका निर्णय किस अक्षर विशेष से किया गया है।

इस परिणाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति किसी उद्दीपक को पहले समग्र रूप से अर्थात ऊपरी निचली प्रक्रिया अपनाकर न कि उद्दीपक के विशेष तत्व या विशेषता प्रारंभ करते हुए आधारिक) ऊपरी) संसोधित करता है।

12.4 ऊपरी-निचली संसाधन तथा आधारिक ऊपरी संसाधन की अंतक्रिया

मनोवैज्ञानिकों जिनमें एवं नारमैन (1972) तथा रूमेलहार्ट (1977) ने बतलाया है कि पैटर्न प्रत्यभिज्ञान ऊपरी-निचली संसाधन तथा आधारिक ऊपरी संसाधन की अंतिक्रिया पर आधारित होता है। पैटर्न पहचान में व्यक्ति उद्दीपक की विशेषताओं का विश्लेषण करता है। (अधारिक ऊपरी विश्लेषण) लेकिन इसके अतिरिक्त उसकी प्रत्याशा से भी पहचान की प्रक्रिया प्रभावित होती है। (ऊपरी निचली विश्लेषण) दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि किसी उद्दीपक की पहचान में कई तरह की प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती है। कुछ प्रक्रियाए ऐसी होती है जिनमें उद्दीपक की विशिष्ट विशेषताओं का विश्लेषण होता है तथा कुछ प्रक्रियाए ऐसी होती हैं जिनमें प्रयोज्य की गत अनुभूति

प्रत्याशा या संदर्भ जिसमें उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है, महत्वपूर्ण होता है। पालमर (1975) ने इसके समर्थन में एक अति महत्वपूर्ण योगदान किया है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि पैटर्न पहचान में आधारिक ऊपरी संसाधन तथा ऊपरी निचली संसाधन दोनों ही सम्मिलित होते है। हम लोग मानव चेहरा का एक समग्र चेहरा के रूप में इसलिए पहचान कर पाते है क्योकि हम उसके हिस्से को पहचानते है परंतु हम लोग उन हिस्सों को समग्रता के संदर्भ के अभाव में नहीं पहचान पाते है।

निष्कर्षतः तब हम इस बिन्दु पर पहुँचते हैं कि हम लोग सूचनाओं को दो ढंग से संसाधित करते है-

1 उद्दीपक की उसकी विशेषताओं के रूप में विश्लेषित करके उसके अर्थ को समझने की कोशिश की जाती है (आधारिक ऊपर संसाधन)

2 किसी उद्दीपक के अर्थ को अपने प्रत्याशा के रूप में समझने की कोशिश की जाती है जिसमें उद्दीपक का संदर्भ महत्वपूर्ण होता है। (ऊपरी निचली संसाधन)

अतः पैटर्न पहचान में आधारिक-ऊपरी संसाधन तथा ऊपरी निचली संसाधन दोनों ही सम्मिलित होते है। मनोवैज्ञानिकों जिनमें एवं नारमैन (1972) तथा रूमेलहार्ट (1977) ने बतलाया है कि पैटर्न प्रत्यभिज्ञान ऊपरी-निचली संसाधन तथा आधारिक ऊपरी संसाधन की अंतिक्रिया पर आधारित होता है। पैटर्न पहचान में व्यक्ति उद्दीपक की विशेषताओं का विश्लेष्ण करता है। (अधारिक ऊपरी विश्लेषण) लेकिन इसके अतिरिक्त उसकी प्रत्याशा से भी पहचान की प्रक्रिया प्रभावित होती है। (ऊपरी निचली विश्लेषण) दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि किसी उद्दीपक की पहचान में कई तरह की प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती है। कुछ प्रक्रियाए ऐसी होती है जिनमें उद्दीपक की विशिष्ट विशेष का विश्लेषण होता है तथा कुछ प्रक्रियाए ऐसी होती हैं जिनमें प्रयोज्य की गत अनुभूति प्रत्याशा या संदर्भ जिसमें उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है, महत्वपूर्ण होता है। पालमर (1975) ने इसके समर्थन में एक अति महत्वपूर्ण योगदान किया है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि पैटर्न पहचान में आधारिक ऊपरी संसाधन तथा ऊपरी निचली संसाधन दोनों ही सम्मिलित होते है। हम लोग मानव चेहरा का एक समग्र चेहरा के रूप में इसलिए पहचान कर पाते है क्योकि हम उसके हिस्से को पहचानते है परंतु हम लोग उन हिस्सों को समग्रता के संदर्भ के अभाव में नहीं पहचान पाते है।

निष्कर्षतः तब हम इस बिन्दु पर पहुँचते हैं कि हम लोग सूचनाओं को दो ढंग से संसाधित करते है-

1 उद्दीपक की उसकी विशेषताओं के रूप में विश्लेषित करके उसके अर्थ को समझने की कोशिश की जाती है (आधारिक ऊपर संसाधन)

2 किसी उद्दीपक के अर्थ को अपने प्रत्याशा के रूप में समझने की कोशिश की जाती है जिसमें उद्दीपक का संदर्भ महत्वपूर्ण होता है। (ऊपरी निचली संसाधन)

अतः पैटर्न पहचान में आधारिकऊपरी संसाधन तथा ऊपरी निचली संसाधन दोनों ही सम्मिलित - होते है।

12.5 प्रत्यक्षीकरण में स्थैर्य

परिवर्तनशील संसार की उत्तेजनाआं में दान प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षीकरण के बल अस्थिर और अविश्सनीय प्रक्रम है। प्रत्यक्षीकरण में अस्थिरता के साथ-साथ स्थिरता में पाई जाती है। प्रत्यक्षीकरण में स्थैर्य मुख्यत निम्न प्रकार से पाया जाता है।

आकार स्थैर्य

आकार स्थैर्य का अर्थ है जब प्रत्यक्षीकरण करने वाले व्यक्ति और उद्दीपक के बीच की दूरी बढ़ाने-घटाने से भी उद्दीपक के आकार में परिवर्तन का अन्तर न दिखाई दे तो वह आकार स्थैर्य है।

होल्वे तथा बोरिंग ने अपने एक प्रयोग में देखा कि जब प्रत्यक्षीकरण करने वाला व्यक्ति दोनों आँखों से वस्तु का प्रत्यक्षीकरण करता है। तब प्रत्यक्षीकरण में अति स्थैर्य पाई जाती है, दूसरे शब्दों में दूर की वस्तुएँ भी अपने आकार की अपेक्षा बड़ी दिखाई देती है। दूसरी ओर जब प्रत्यक्षीकरणकत्र्ता केवल एक आँख स्थैर्य रहता है।

कुछ अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि आकार स्थैर्य आयु वृद्धि के साथ-साथ बढता है इसके अतिरिक्त आकार स्थैर्य की उद्दीपक का ज्ञान और उद्दीपक के साथ अनुभव तथा उद्वीपन के प्रत्यक्षीकरण का समय आदि कारक भी महत्वपूर्ण ढंस से प्रभावित करते है।

रूप स्थैर्य

रूप के आधार पर उद्वीपकों में अन्तर और तादात्मीकरण स्थापित किया जाता है। भाउलेस तथा गिब्सन ने प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यक्षीकरण में रूप स्थैर्य की मात्रा का सम्बन्ध वातावरण में उपस्थित दिक् संकेतों से होता है। तथा प्रत्यक्षीकरण में रूप स्थैर्य उतना अधिक होता है जितना ही अधिक स्पष्ट संकेत दिव्य् परिपेक्ष्य प्रदान करते है। आयु भी रूप स्थैर्य को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती है। एक अध्ययन में बोरेसन तथा लीचे ने यह सिद्ध किया कि अभ्यास भी रूप स्थैर्य का प्रमुख कारक है।

चमक तथा रंग स्थैर्य

प्रत्यक्षीकरण में चमक स्थिरता पाई जाती है चमक स्थैर्य की भाँति रंग स्थैर्य भी प्रत्यक्षीकरण में पाया जाता है परन्तु रंग स्थैर्य चमक स्थैर्य की भाँति पूर्ण रूप से नहीं पाया जाता है। रूप स्थैर्य का पूर्ण रूप में न पाए जाने का मुख्य कारण वातावरण में उपस्थित चमक है।

वालाच ने अपने अध्ययनों ये यह निष्कर्ष निकाला कि जब प्रत्यक्षीकरणकत्र्ता के लिये सीमित समय होता है तो इस अवस्था के वातावरण की चमक का अनुपात उद्दीपक की चमक को प्रभावित करता है।

बैक के अध्ययन से स्पष्ट है कि चमक स्थैर्य उद्वीपकों की दिक् स्थिति से प्रभावित होती है उनके अनुसार उद्वीपकों के चारों ओर के वातावरण में संगठन किस प्रकार का है यह चमक स्थैर्य को प्रभावित करता है।

12.6 स्थिरता अस्थिरता विरोधाभास

प्रत्यक्षण स्थिरता के क्षेत्र में किए गये प्रयोगों से यह स्पष्ट हुआ कि उद्वीपनों के आकार रंग आदि में परिवर्तन होने के पश्चात् भी एक निश्चित एवं स्थिर प्रारूप में ही प्रत्यक्षण किया जाता है उदाहरण के लिए यदि हम दुध की गिलास को 4 फीट की दूरी से देखे या उसे 20 फीट की दूरी पर रखे उसे हम

भोजन के प्लेट के रूप में ही दंबे। इसी प्रकार यदि एक मोबाइल को धूप अथवा छाया में रखकर प्रत्यक्षण करे वह एक ही रूप में प्रत्यक्षीकृति किया जाएगा पहली स्थिति में अक्षीयपटलीय प्रतीभा में भिन्नता होने के बावजूद भी प्रत्यक्षण में स्थिरता होती है।

मनोवैज्ञानिकों ने यह अध्ययन करने का प्रयास किया कि जब सभी उद्दीपन में समाजीयता उत्पन्न कर दी जाये ताकि उनमें पूर्ण स्थिरता तथा समरूपता आ जाए इसका प्रभाव प्रत्यक्ष नात्मक अनुभूति पर क्या पडेगा? इस हेतु प्रयोगात्मक अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट हुआ है कि व्यक्ति के प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अनुभूति में स्थिरता एवं श्रेष्ठता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि उदीपक को अस्थिर बनाकर रखा जाए इस प्रकार स्थिरता अस्थिरता विरोधाभास उत्पन्न हुआ।

स्थिरता अस्थिरता विरोधाभास एक ऐसी प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अवस्था माना जा सकता है जिसमे प्रत्यक्षण में स्थिरता तथा स्पष्टता लाने के लिए उद्दीपक में अस्थिरता तथा परिवर्तन लाना आवश्यक हो जाता है। स्थिरता अस्थिरता विरो. के सत्यापन के लिए प्रयोगों में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की गई जिसमें उद्दीपकों की प्रतिभा हमेशा एक समान रह सके। इसे स्थिगित या स्थिर प्रतीभा कहा जाता है।

अलपर्न (1971) क्रानस्वीर (1970), डिचबर्न (1973), हेकेन्मूलर (1965) प्रिटचार्ड (1961) ने इसे प्रयोगों द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया इनके प्रयोगों में प्रयोज्यों के अक्षीयपटलीय पर उद्दीपक के बनने वाले प्रतिबिम्ब या प्रतिभाओं को स्थिर किया गया ऐसे उद्दीपकों को देखने के बाद मात्र कुछ सेकण्डों में ही प्रयोज्यों ने बताया कि उद्दीपक धीरे-धीरे उनकी आंखों के सामने से गायब होने लगा जिसके परिणाम स्वरूप उद्दीपक परिस्थिति में एकरूपता उत्पन्न हो गई और धीरे-धीरे अधिक अन्धेरा दिखने के कारण प्रयोज्यों को स्पष्ट प्रत्यक्षण होना बन्द हो गये।

स्थिगित या स्थिर आकृतियों का धीरे-धीरे लुप्त होना इस बात की ओर संकेत करता है कि नेन गतिक द्वारा व्यक्ति उद्दीपक को प्रत्यक्षीकृत कर बनाये रखने का प्रयास करता है।

मेककिन्नी (1963, 1964) ने स्थिरता अस्थिरता विरोधाभास दिखाने के लिए प्रयोग किये है। परन्तु वे स्थिगित या स्थिरता प्रतिभाओं की जगह पर चमकीली आकृतियों के उपयोग द्वारा संवेदी परिस्थिति को स्थिर रखने का प्रयास करते है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने उद्दीपक परिवर्तन में समानता एवं एक रूपता की उत्पत्ति का अध्ययन सम्पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक क्षेत्र में चमक के देवर को समान बनाकर किया है। इस तरह प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक क्षेत्र को समरूप क्षेत्र या गेंज फिल्ड कहा जाता है। कोहेन (1958), एवं सिमेन (1958) ने गेंजकेल के सहारे उदी परिस्थिति में समरूपता एवं स्थिरता लाकर उनका प्रयोज्या के प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अनुभूति पर पडने वाले प्रभावों का अध्ययन किया।

उपयुक्त प्रयोगात्मक अध्ययनों के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्थिरता अस्थिरता विरोधा प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्थिरता से काफी सम्बन्धित है।

यह इस तथ्य की ओर भी संकेत करता है कि वस्तुओं का सही एवं स्पष्ट स्थिरता प्रत्यक्षण करने के लिए यह आवश्यक है कि उद्दीपक परिस्थिति में स्थिरता या समरूपता न होकर अस्थिरता व भिन्नता हो।

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि स्थिर उद्दीपक परिस्थिति से अस्थिर प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अनुभूति होती है।

12.7 प्रत्यक्षणज्ञानात्मक स्थिरता का महत्वपूर्ण सामान्यीकरण

प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता कई प्रकार की होती है तथा इसके प्रत्येक प्रकार से सम्बन्धित बहुत से प्रयोग किए गए है। इन प्रयोगों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता के बारे में कुछ सामान्यीकरण निम्न है-

1 प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता में व्यक्ति जो प्रत्यक्षण करताहै वह संवेदी आँकड़े तथा वस्तु सदभी के मध्य एक तरह का समझौता होता है दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता में जो अनुभव होता है वह न तो पूर्णतः वस्तु या उद्दीपक के समान होता है और न संवेदी आंकड़ों के समान बल्कि या उद्दीपक के समान होता है और न संवेदी आंकड़ों के समान बल्कि यह दोनों के मध्य होता है। बाऊलेस, 1931 ने आकार, रंग दीप्ति आदि स्थिरताओं का अध्ययन किया तथा स्थिरता अनुपात कभी न तो शून्य होता है और न 100 ही। अतः कहा जा सकता है कि विभिन्न परिस्थितियों विभिन्न व्यक्तियों में प्रत्यक्षभावांत्मक स्थिरता की मात्रा में अलगहोती है। अलग-

2 मानक वस्तु तथा तुलनात्मक वस्तु के बीच निरपेक्ष अन्तर जैसे बढ़ता है, वैसे वैसे प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता की मात्रा बढती जाती है हासिया, 1943 इसे सिद्ध करते हुए बताया और उन्होने दीप्ति स्थिरता घर प्रयोग किया था जिसमें मानक तथा तुलनात्मक डिस्क को एक निश्चित दूरी पर अंधेरे की पृष्ठभूमि में अलग अलग घूसर कागज पर रखकर दिखाया- जैसे घूसर कागज के दीप्ति में अन्तर उत्पन्न होता है।-और परिणाम में देखा गया कि जैसे बर्नस्विक 1940 ने अपने अध्ययन में पाया कि 50 मिलिमीटर के मान ब्लॉक को तुलनात्मक ब्लॉक से 2 मीटर की दूरी पर रखकर दिखलाया गया तो वर्नस्विक अनुपात 50 था परन्तु जब वही मानक ब्लॉक तथा तुलनात्मक ब्लॉक में 10 मीटर की दूरी उत्पन्न कर दी गई तो वनीस्थिक अनुपात बढ़कर 96 हो गया।

3 यदि मानक वस्तु तथा तुलनात्मकवस्तु को पहचानने के लिए एक समान संकेत अधिक मात्रा में उपलब्ध होते है, तो प्रत्यक्षनात्मक स्थिरता की मात्रा अधिक होती है।

4 जब व्यक्ति मं सीधा या सरल वस्तु उन्मुखी मनोवृति होती है तो इससे प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता बढ़ती है परन्तु जब आलोचनात्मक उद्दीपक उन्मुखी मनोवृति दिखाता है तो इससे प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता कमती है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा स्पष्ट किया गया है कि समान निर्देश एवं परिस्थितियों के बावजूद भी अप्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्थिरता में अन्तर होने का कारण प्रयोज्य की मनोवृति में भिन्नता पायी जाती है।

5 स्थिरता में की वृद्धि होती है वेर्ल ने आकार स्थिरता पर उम्र में वृद्धि होने से प्रत्यक्षज्ञानात्मक 2 साल के बच्चों से लेकर प्रयोग किये तथा थाऊलेस ने आकार, दीप्ति, रूप स्थिरता पर 20 से 50 साल के प्रयोज्यों को लेकर अध्ययन किये ओर यह निष्कर्ष निकाले ही प्रयोज्यों में आयु की वृद्धि होने पर उनके द्वारा अनुमवित प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता में वृद्धि होती है।

6 निम्न प्रजातियों के प्राणियों में भी प्रत्यक्षगात्मक स्थिरता मनुष्यों जैसी होती है। जो यह बताता है कि व्यवहार का आधार जन्मजात तन्त्रिकीय सगंठन है। कोहलर1918 गोड्स 1926, ने चूजों पर प्रयोग करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाले की इनमें दीप्ति स्थिरता ओर आकार स्थिरता अधिक होती है। कल्ज एवं रेवेन्ज 1921 में चूजों पर अध्ययन करके उनमें रंग स्थिरता को पाया लोके ने बन्दरों और मानव वयस्कों को समान परिस्थिति में रखकर

दीप्ति स्थिरता का अध्ययन किया और पाया कि बन्दरों को मानव वयस्कों की तुलना में दीप्ति स्थिरता अधिक मात्रा में होती है।

वर्कम्प वे 1923 ने मछलियों पर अध्ययन कर पाया कि मछलियों ने दीप्ति तथा रंग स्थिरता अधिक मात्रा में होती है।

12.8 सारांश

पैटर्न प्रत्यभिज्ञान दिन-र्ण घटना है जिसके सहारे हम अपने आसप्रतिदिन की एक बहुत ही महत्वपू-पास की घटनाओं का अर्थ समझते है। व्यक्ति को सार्थक ढंग से अपने वातावरण के साथ अन्तः क्रिया करने के लिए यह आवश्यक है कि वह उस वातावरण के विभिन्नउद्दीपक पैटर्न की पहचान करे। म ैटलिन' (1983) के अनुसार ''पैटर्न प्रत्यभिज्ञान से तात्पर्य संवेदी उद्दीपकों के जटिल व्यवस्थाओं की पहचान से होता है।'' आधारित ऊपरी संसाधन तथा ऊपरी निचली संसाधन आधारिक ऊपरी संसाधनों में उद्दीपकों के महत्वपूर्ण तथ्यों या विशेषताओं से प्रक्रिया आरंभ करके ऊँचे स्तर पर लाया अनुभूति एवं संदर्भ से विशेष प्रत्या शा उत्पन्न होती है और उसी के अनुसार उद्दीपकों की व्याख्या होती है। आधारिक ऊपरी संसाधन मॉडल के तहत दो तरह के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है -

(क) विशिष्ट विशेष सिद्धान्त

(ख) प्रोटोटाईप सुमेल सिद्धान्त

परिवर्तनशील संसार की उत्तेजनों में क्षय प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षीकरण के बल अस्थिर और अविश्सनीय प्रक्रम है। प्रत्यक्षीकरण में अस्थिरता के साथ साथ स्थिरता में पाई जाती है। प्रत्यक्षीकरण में स्थैर्य मुख्यत-आकार, रूप, चमक तथा रंग पर आधारित होता है।

12.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न

1 प्रत्यक्षण के सिद्धान्त या उपागम के बारे में विस्तार से समझाइयो

2 गहराई प्रत्यक्षीकरण की उत्पति, गहराई प्रत्यक्षण के जन्मजात होने के पक्ष में किये गये प्रयोग कौन से है, समझाओ।

3 गहराई व दूरी प्रत्यक्षण के सिद्धान्त, पैटर्न प्रत्यभिज्ञान के बारे में संक्षेप में लिखिए।

4 ऊपरी निचली संसाधन तथा आधारिक ऊपरी संसाधन की अंतक्रिया-का वर्णन कीजिए।

5 प्रत्यक्षणज्ञानात्मक स्थिरता का महत्वपूर्ण सामान्यीकरण के बारे में विस्तार से लिखो?

12.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- गुप्ता, एस. पी. एवं गुप्ता, अलका (2014); *उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान सिद्धांत : एवं व्यवहार*. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.
- पाठक, पी. डी. (2012); *शिक्षा मनोविज्ञान*. आगरा : श्री विनोद पुस्तक मंदिर.

- सिंह, अरुण कुमार (2006); *संज्ञानात्मक मनोविज्ञान*. वाराणसी: मोतीलाल बनारसी दास.
- एन.सी.ई.आर.टी (2006); *मनोविज्ञान*. नई दिल्ली.
- गर्ग, भंवरलाल एवं बक्षी, उषा (2002); *शिक्षा मनोविज्ञान*.जयपुर: सुरभि पब्लिकेशन्स.
- सिंह, अरुण कुमार (2001); *उच्चतरसामान्य मनोविज्ञान*. वाराणसी: मोतीलाल बनारसी दास.
- वर्मा, प्रीति एवं श्रीवास्तव, डी.एन. (2001);*आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर.
- माथुर, एस.एस. (1981); *शिक्षा मनोविज्ञान*. आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर.
- डॉ. शर्मा, रामनाथ (2002), ''मनोविज्ञान का इतिहास '' आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल
- डॉ. सिंह, अरूण कुमार, डॉ. सिंह अशीष कुमार (2002), ''व्यक्तित्व का मनोविज्ञान'' दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास
- डॉ. सिंह अरूण कुमार, डॉ. सिंह, आशीष कुमार (2007)''मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास
- Braman, James F. (2005)] "History and systems of psychology Delhi, Person Education.
- Hall clasis S. hindzey Gardan (1985), Theires & Ppasonality Delhi, wiley earson limited
- Walman Bejamin B. (2006) Contempargey thessi & system in psychology delhi Freeman Boom Company.

इकाई - 13

उद्योग में मनोविज्ञान (Psychology in Industry)

इकाई की संरचना

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 औद्योगिक मनोविज्ञान का अर्थ

13.4 उत्पादन में कठिनाई

13.5 कर्मचारी विश्लेषण

13.6 कार्य परिवेश

13.7 पदोन्नति के अवसर

13.8 उद्योग में मानव का सम्बंध

13.9 औद्योगिक संघर्ष व तनाव (हड़ताल और तालाबंदी)

13.10 श्रम कल्याण

13.11 सारांश

13.12 बोध प्रश्न

13.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- औद्योगिक मनोविज्ञान का अर्थ समझ सकेंगे।
- उत्पादन में कठिनाई को समझ सकेंगे।
- कर्मचारी विश्लेषण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- कार्य परिवेश की अवधारणा समझ सकेंगे।द
- पदोन्नति के अवसर के महत्व को समझ सकेंगे ।
- उद्योग में मानव के संबंधको समझ सकेंगे।
- श्रम कल्याण के बारे में समझेंगे।
- औद्योगिक संघर्ष व तनाव को समझ सकेंगे।

13.2 प्रस्तावना

औद्योगिक मनोविज्ञान कार्यस्थल में मानव व्यवहार वैज्ञानिक अध्ययन है और संगठनों के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर लागू होता है। आवश्यकता, साधनएवं साध्य का 'योग' ही उद्योग है। मानव जाति का उद्योग शुरू के दिनों में उसकी आजीविका एवं सुरक्षा के लिए था, फिर सत्ता के लिए आवश्यक बना और आधुनिक काल में उद्योग मानव की समृद्धि के लिए आवश्यक बन बैठा है। यदि हम विचार करें तो पाएंगे कि आज उद्योग जीविका, समृद्धि एवं सत्ता तीनों के लिए आवश्यक बन चुका है।

13.3 औद्योगिक मनोविज्ञान का अर्थ

यदि हम औद्योगिक मनोविज्ञान की परिभाषा देना चाहेंगे तो हम कह सकते है कि औद्योगिक मनोविज्ञान की वह व्यवहारिक शाखा है जो किसी भी औद्योगिक संस्थान में कार्यरत व्यक्तियों की समस्याओं तथा उनकी अभियोजन शैली का अध्ययन कार्यक्षेत्र तथा प्रयोगशाला में भी करता है। टिफिन एवं मैककार्मिक (1971) का कहना है, ''औद्योगिक मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन जीवन के उन क्षेत्रों में करता है जो वस्तु-उत्पादन, वितरण, उपभोग तथा सभ्यता की सेवा से जुड़े हुए है।'' ब्लम का कहना है ''औद्योगिक मनोविज्ञान व्यवसाय एवं उद्योगों के अन्तर्गत मानव संबंधोंसे सम्बद्ध समस्याओं समझने के लिए मनोवैज्ञानिक तथ्यों एवं सिद्धान्तों का अनुकूलन मात्र है। हैरेल (1976) ने औद्योगिक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए कहा है कि औद्योगिक मनोविज्ञान व्यवसाय तथा औद्योगिक संस्थानों में कार्यरत व्यक्तियों का अध्ययन करता है, यह उनकी योग्यता पात्रता आदि का अध्ययन भी करता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि औद्योगिक मनोविज्ञान उद्योगों तथा संस्थानों में कार्यरत व्यक्तियों की अनेकानेक समस्याओं के अध्ययन के लिए मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों तथा प्रणालियों को अपनाता है तथा उद्योग में मनोविज्ञान का संबंधकर्मचारी और उत्पादन से होता है अर्थात् उत्पादन की वृद्धि के लिए और कर्मचारी की सम्पन्नता के लिए मनोवैज्ञानिक कार्य-प्रणालियों को खोज निकालना है। कार्य के लिए उन विधियों का प्रयोग कराना जिनसे कर्मचारी थकान, अरोचकता तथा दुर्घटनाओं का कम से कम शिकार है। इसके साथ ही कार्य-दशाओं और औद्योगिक वातावरण को सुखप्रद बनाना है। उद्योग में मनोविज्ञान द्वारा उन कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन किया जाता है, जो कार्य करते-करते कुसमायोजित होने लगते हैं। इसके साथ ही कर्मचारी तथा कार्य, कर्मचारी तथा निरीक्षक, कर्मचारी तथा प्रबन्धक, कर्मचारी तथा कर्मचारी के सम्बंधों का अध्ययन करना है। अत हम कह सकते है कि उद्योग में मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण रोल होता है।

13.4 उत्पादन में कठिनाई या समस्या (Difficulties in Production)

जब तक मालिक और श्रमिक के बीच सहयोगपूर्ण संबंधनहीं होंगे तब तक उद्योग संस्थान का कार्य सुचारू रूप से नहीं चल सकेगा और उत्पादन में भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। उद्योग में मालिक, श्रमिकों पर विश्वास नहीं करते और श्रमिक उद्योग के मालिकों को श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखते। मालिक लाभ का अधिकांश भाग स्वयं हड़पना चाहते हैं और श्रमिकों को उसका समुचित अंश भी नहीं देना चाहते है। इससे श्रमिक भी हताश होकर कामचोर बन जाते हैं। इससे उत्पादन के अन्तर्गत निम्नलिखित समस्याएँ आती है -

1- कर्मचारी तथा कार्य - कार्य का सम्बंध उत्पादन और मशीन से होता है। अच्छे उत्पादन के लिए और मशीन की टूट-फूट तथा दुर्घटना को बचाने के लिए प्रत्येक कार्य पर उचित और सुयोग्य कर्मचारी की नियुक्ति की जानी चाहिए। कार्य में उचित कर्मचारी के चयन के लिए उसकी विशेष योग्यताओं का अध्ययन किया जाना चाहिए और कर्मचारी उचित रूप में कार्य कर सके। इन सभी का उपयोग सही ढंग से करके उत्पादन में होने वाली समस्या से बचा जा सकता है।

2- कर्मचारी तथा निरीक्षक की समस्या - यदि निरीक्षक का व्यवहार कर्मचारी को संतुष्ट रखेगा तो कर्मचारी मेहनत से अपने कार्य को निश्चित समय में पूरा कर देगा। निरीक्षक को सदैव कर्मचारी की भौतिक और मानवीय आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए। पदोन्नति व वेतन के लालच में निरीक्षक को पूर्णत: मालिक का ही बनकर नही रहना चाहिए और पद एवं अधिकारों में कर्मचारियों की मांगों को नहीं ठुकराना चाहिए। जब-जब निरीक्षक ने कर्मचारियों की मांगों और उनकी प्राथमिक आवश्यकताओं को नजर अंदाज किया, तब-तब हड़ताल हुई या फिर उत्पादन पर प्रभाव पड़ा हैं इसलिए उनमें समन्वय होना जरूरी है।

3- कर्मचारी और प्रबन्धक की समस्या - यदि कारखाने का प्रबंध संतोषजनक नहीं होता हे तो कर्मचारी धीरे-धीरे अपने कार्य में रूचि लेना कम करने लगते हो। इसी प्रकार कार्य के घंटे, मशीनों की दशा, कारखाने का भौतिक वातावरण और अन्य आवश्यकताओं यदि ठीक न हो तो कर्मचारी कार्य में रूचि व ईमानदारी नहीं बरतता। कर्मचारी के साथ पक्षपात नहीं करना चाहिए। इन वास्तविकताओं पर यदि प्रबंध ध्यान नहीं देगा तो इस सीधा प्रभाव उत्पादन पर पड़ेगा जो दोनों लिए हितकारी नहीं है।

4- कर्मचारी या श्रमिक के व्यवहार में कार्य और कारण का घटक - औद्योगिक मनोविज्ञान इस बात पर बल देता है कि कर्मचारी जो भी कार्य या व्यवहार करता है उसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य है। यदि उद्योग संस्थान में हड़ताल हो, घेराव हो, श्रमिकों में झगड़ा हो, पर्यवेक्षक के प्रति शिकायत हो तो समझ लेना चाहिए कि इन घटनाओं का कोई न कोई विशेष कारण है। यदि सही कारणों का पता लग जाता है तो ये समस्याएँ कारणों को समाप्त करके हल की जा सकती है। यदि किन्ही कारणों से उत्पादन, वितरण एवं उपभोग में बाधा आती है तो ऐसे कारणों को दूर करना चाहिए।

5- दुर्घटना की समस्या - उद्योग के समक्ष एक महत्वपूर्ण समस्या दुर्घटना की है। दुर्घटना कई प्रकार से उद्योग को प्रभावित करती है। दुर्घटना ग्रस्त कर्मचारी ही कार्य से अनुपस्थित उत्पादन को कम करती है, उसके उपचार तथा पुर्नवास आदि में हुआ व्यय उद्योग के ऊपर एक अनिवार्य बोझ बन जाता है। कई बार तो यह देखा जाता है कि दुर्घटना ग्रस्त व्यक्ति स्वस्थ होकर अपने कार्य पर आने के बाद कार्य करता है तो उस कार्य से अरूचि हो जाती है। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पादन क्षमता पर पड़ता है। अत: औद्योगिक मनोवैज्ञानिकों के समक्ष यह कार्य हो जाता है कि दुर्घटना के कारणों को दूर कर उन्हें रोका जाए।

6- अनपुस्थिति व श्रम परिवर्तन की समस्या - अनुपस्थिति व श्रम परिवर्तन भी उद्योगों के समक्ष एक महत्वपूर्ण व जटिल समस्या है। इन दोनों समस्याओं में कर्मचारियों के मनोवैज्ञानिक कारक ही कार्य करते है। किन्तु कई बार उद्योग नीति, प्रबंधन तथा नियोक्ता और कर्मचारियों के बीच

पारस्परिक संबंधआदि भी इसके कारक बन जाते है। इन समस्याओं के समाधान में औद्योगिक मनोवैज्ञानिकों का महत्वपूर्ण स्थान हो सकता है।

7- महिला तथा बाल कर्मचारियों के शोषण की समस्या - जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं ने या तो आर्थिक मजबूरी के कारण या स्वावलंबी बनने की इच्छा के कारण, रोजगार में आना शुरू किया। सभ्यता के साथ-साथ मानव की विकृतियाँ भी बढ़ी है और उन विकृतियों का शिकार महिलाएँ होती है। पुरूषों के समान काम करने पर पुरूषों से कम पारिश्रमिक देकर उनके स्त्री होने का फायदा उठाया जा रहा है। सभी छोटे व बड़े उद्योगों में महिला व बाल कर्मचारियों को कम वेतन पर रखा जाता हे जो उनके हित में नहीं है।

8- थकान, एकरसता, अब सदृश मानसिक स्थितियों की समस्या - कर्मचारियों में थकान, एकरसता एवं ऊब की स्थिति उत्पन्न होना तथा बढ़ना किसी भी उद्योग के लिए एक विकट समस्या का कारक हो जाता है, क्योंकि इन स्थितियों के कारण धीमे कार्य करना, अनुपस्थिति, दुर्घटना, मशीनों का नुकसान, कार्य-क्षमता तथा कार्य-काल की बरबादी आदि समस्याएँ उत्पन्न होती है।

जो उद्योग के लिए हानिकारक होती है। अत: औद्योगिक मनोविज्ञान के समक्ष यह एक विशिष्ट कार्य हो जाता है कि वह इन स्थितियों के उत्पन्न हो जाने पर उनके समाधान की खोज करें। क्योंकि तभी कम से कम समय में तथा कम से कम व्यक्ति ऊर्जा की खपत में अधिक से अधिक कार्य संपादित हो सकेगा।

उपर्युक्त औद्योगिक समस्याओं के संदर्भ में हम गंभीरता से सोचे तो पाएंगे कि यदि उद्योगपतियों के द्वारा समय-समय पर औद्योगिक मनोवैज्ञानिकों का सहयोग उद्योग के हर उस क्षेत्र में लिया जाता रहे जहाँ मानव व्यवहार सम्बद्ध है, तो ये समस्याएँ या तो उत्पन्न ही नहीं होगी या उत्पन्न होते ही समाप्त कर दी जाएगी।

13.5 कर्मचारी विश्लेषण (Worker's Analysis)

कार्य विश्लेषण का तात्पर्य एक सही कार्य लिए सही व्यक्ति के चयन से है। प्रत्येक कार्य की कुछ निश्चित अपेक्षाएं होती है जिनमें अनुकूल कर्मचारी का चयन होने पर एक ओर उत्पादकता संतोषजनक होती है तो दूसरी ओर कर्मचारी को कार्य संतुष्टि मिलती है।

कर्मचारी विश्लेषण यह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यवसाय की अपेक्षाओं के अनुकूल योग्यताओं वाले व्यक्ति का चयन किया जाता है। जिससे उत्पादकता व कार्य संतुष्टि हो पाती है।

कर्मचारी विश्लेषण के कारक

कर्मचारी विश्लेषण के कारकों से हमारा तात्पर्य उनके तत्वों से है जिनमें किसी व्यक्ति का चयन किसी कार्य के लिए किया जाता है। प्रत्येक कार्य के लिए योग्य व्यक्ति का चयन करना प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य होता है। कर्मचारी चयन के लिए निम्नलिखित कारकों का होना आवश्यक है -

(क) सामर्थ्य (ख) निपुणता (ग) धातु स्वभाव (घ) आचरण

(ड) अभिक्षमता (च) व्यवसायिक रूचि

कार्य-विश्लेषण का महत्त्व - औद्योगिक मनोविज्ञान के उद्देश्य की प्राप्ति सही कर्मचारी चयन पर निर्भर करती है। कर्मचारी को उपयुक्त कार्य पर लगाना उद्योग में वैयक्तिक कुशलता एवं समायोजन को बढ़ाने में महत्वपूर्ण है जो इस प्रकार है -

1- वैयक्तिक कुशलता के लिए - कर्मचारी चयन में वैयक्तिक कुशलता का होना आवश्यक है। सही कर्मचारी के चयन होने पर कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। इसके विपरीत व्यवसाय में व्यक्ति के गलत नियोजन की स्थिति में कार्यकुशलता को समुचित बनाने के लिए कर्मचारी का नियोजन सही होना आवश्यक है।

2- वैयक्तिक समायोजन के लिए - कर्मचारी विश्लेषण व्यक्ति की कार्यकुशलता के साथ-साथ वैयक्तिक समायोजन के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण हैं जो कर्मचारी किसी कार्य में सही रूप से नियोजित होते है वे उद्योग में पारस्परिक संबंधोंको समुचित रूप से निभाने में सफल होते हैं किन्तु गलत कार्य में नियाजित होने पर कर्मचारी में अर्न्तवैयक्तिक संबंधदोषपूर्ण हो पाते है।

3- उत्पादन के लिए - कर्मचारी चयन व उत्पादन के बीच घनिष्ठ संबंधहोता है। जब कर्मचारी का नियोजन सही होता है तो उत्पादन संतोषप्रद होता है। क्योंकि कर्मचारी में कार्य के प्रति संतुष्टि तथा अनुकूल मनोवृत्ति होती है जिससे कार्य करने में रूचि मिलती है। इसके विपरती होने पर कार्यकुशलता घट जाती है।

4- बेहतर आय के लिए - कर्मचारी की आय के दृष्टिकोण से भी व्यवसायिक चयन महत्वपूर्ण है। सही कार्य के लिए सही व्यक्ति को चयन होने पर उसे कार्य-संतुष्टि मिलती है अधिक मेहतन से कार्य करता है। जिससे उत्पादकता बढ़ जाती है और उसके बदले में प्रबंधन की और से अतिरिक्त पारिश्रमिक दिया जाता है। अत: आय के दृष्टिकोण से कर्मचारी का विश्लेषण आवश्यक है।

5- दुर्घटना प्रवृत्ति ह्रास के लिए - जब कर्मचारी अपने कार्य में सही नियोजित नहीं हो पाता तो वह अपने कार्य से असंतुष्ट रहता करता है, कार्य के प्रति उदासीन बन जाता है, नीरसता एवं प्रतिक्रियात्मक अवरोध की मात्रा बढ़ जाती है, तथा ध्यान भंग अधिक होता है जिससे दुर्घटना की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इससे दोनों को हानि होती है। अत: दुर्घटना प्रवृत्ति को घटाने के लिए कार्य में कर्मचारी का नियोजन सही हो।

6- अधिकारियों के साथ बेहतर संबंधके लिए - सही कार्य के लिए सही व्यक्ति के चयन होने पर न केवल उत्पादकता बढ़ती है, बल्कि पर्यवेक्षकों, मैनेजरों आदि अधिकारियों के साथ कर्मचारी का संबंधबेहतर बन जाता है। जिसके कारण कर्मचारी तथा उद्योगपति दोनों को लाभ पहुंचाता हैं इसके विपरीत होने पर मनोवैज्ञानिक वातावरण दूषित हो जाता है जिसकी अभिव्यक्ति हड़ताल या तालाबंदी के रूप में होती है।

7- बेहतर पारिवारिक समायोजन के लिए - कर्मचारी अपने उद्योग के भीतर जो अनुभव करता है उसे वह अपने परिवार तक ले जाता है। जब कर्मचारी अपने कार्य, अपने सहकर्मियों तथा अधिकारियों से समायोजित हो जाते है तो वह अपने परिवार के साथ भी अच्छी तरह समायोजित हो पाते है। इसके विपरीत होने पर उनका पारिवारिक जीवन भी असफल होता है।

8- मानसिक स्वास्थ्य के लिए - मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी व्यवसायिक चयन काफी महत्वपूर्ण है। सही व्यावसायिक चयन की स्थिति में कर्मचारी मानसिक रूप से स्वस्थ रहता है। क्योंकि वह कार्य से संतुष्ट रहता है, कार्य में रूचि रखता है। उसके संबंधपरिवार तथा समाज के साथ भी संतोषजनक होते है। वह उद्योग के भीतर व बाहर मानसिक द्वंद्वों, चिन्ताओं, कुण्ठाओं आदि से मुक्त रहता है। इसके विपरीत गलत कर्मचारी चयन की स्थिति में कर्मचारीगण मानसिक रूप से अस्वस्थ होते हैं। जिसके कारण संगठनात्म्क वातावरण प्रदूषित हो जाता है।

अत: वर्तमान समय में औद्योगिक मनोवैज्ञानिकों अथवा संगठनात्मक मनोवैज्ञानिकों का सबसे बड़ा कर्तव्य किसी संगठन के वातावरण को स्वस्थ बनाना है।

13.6 कार्य परिवेश (Working condition)

उद्योग मानव द्वारा परिचालित होते है उनके समुचित परिचालन के लिए औद्योगिक परिवेश में कार्यरत मानव शक्ति का सदुपयोग होना आवश्यक है। किसी भी उद्योग की लक्ष्य प्राप्ति के लिए निर्धारित समय में लक्ष्य की प्राप्ति कर लेना औद्योगिक सफलता का एक प्रमाण है। इस सफलता का श्रेय उन कर्मचारियों को जाता है। जिन्होंने निर्धारित समय का सदुपयोग कर अपना कार्य पूरा किया है। कर्मचारी अपने कार्यकाल का समुचित सदुपयोग कर सकें इसके लिए कार्य स्थल के प्राकृति वातावरण का सहयोगपूर्ण होना अति आवश्यक है। प्रकृति ने मनुष्य के शरीर एवं मन की रचना इस प्रकार की है कि बदलते हुए प्राकृतिक वातावरण के साथ उसकी शारीरिक क्षमताएँ तथा मानसिक स्थितियाँ बदलने लगती है। हम अक्सर अनुभव करते है कि गर्म दिनों की अपेक्षा सर्दी के दिनों में काम करना अधिक आसान व रूचिकर लगता है, कार्य की गति बढ़ जाती है तथा अधिक कार्य सम्पन्न होता हैं इसी तरह गर्मी के दिनों में सर्दी के दिनों की अपेक्षा थकान, एकरसता तथा ऊब की अनुभूति अधिक होती है। इसी तरह उद्योग संस्थान में प्राकृतिक वातावरण का प्रभाव कर्मचारियों की कार्यक्षमता पर पड़ता है। गर्म मौसम वाले दिनों में यदि किसी उद्योग संस्थान में तापमान को कम करने के साधन न हो तो इस स्थिति का प्रभाव उनकी कार्यक्षमता पर पड़ेगा।

उद्योग में कार्य-दशा को सुधारने की दिशा में अनेक प्रयास किए गए तथा उनका प्रतयक्ष प्रभाव उत्पादन पर देखा जाने लगा। प्राकृतिक वातावरण का धनात्मक प्रभाव कर्मचारियों की कार्यक्षमता तथा उत्पादन पर पड़ता है। इन अध्ययनों के निष्कर्ष सकारात्मक प्राप्त हुए और मनोवैज्ञानिकों ने दखा कि उचित प्राकृति वातावरण काप्रभाव न सिर्फ कर्मचारियों की कार्यक्षमता तथा उत्पादन पर पड़ता हैं वरन् उनकी कार्य संतुष्टि, मनोबल तथा उत्साह पर भी पड़ता है। कर्मचारी यह समझने लगे कि नियोक्ता उनके हक में सोचते है तथा उन्हें सुविधा प्रदान करते हैं इससे कर्मचारियों में उत्तरदायित्व की भावना बहने लगी तथा कार्य के प्रति उनकी रूचि बढ़ने लगी जिसका प्रभाव उत्पादन पर पड़ा।

पर्यावरण की प्रकृति

किसी भी उद्योग की स्थापना से पूर्व वहां के वातावरण के बारे में सोचना अनिवार्य होता हैं औद्योगिक वातावरण की भौतिक, सामाजिक तथामनोवैज्ञानिक तत्व प्रभावित करते है। मेय स्मिथ ने मानसिक पर्यावरण को भी भौतिक पर्यावरण जितना ही महत्वपूर्ण माना है।

Classification of Environment - पर्यावरण को तीन भागों में बांटा जासकता है।

1- भौतिक पर्यावरण

2- सामाजिक पर्यावरण

3- मनोवैज्ञानिक पर्यावरण

1. भौतिक पर्यावरण - कार्य स्थल को भौतिक वातावरण उत्पादन को प्रभावित करते हैं। भौतिक वातावरण में कारखाने का भवन, मशीनें, उपकरण, कारखाने मेंउपलब्ध सुविधाएं, जल, प्रकाश, वायु, धुआँ, आवाज, दुर्घटना से बचने के संकेत आदि सम्मिलित है।

1) प्रकाश - दृष्टि व प्रकाश दोनों का प्रभाव काम पर पड़ता है। विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट है कि कार्य करने के कुल समय के 75 प्रतिशत भाग में कर्मचारियों की आंखे अपने कार्य में रहती है। लुकेश तथा मॉस के अनुसार प्रकाश में वृद्धि होने पर उत्पादन में वृद्धि होती है। प्रकाश में व्यवस्था करत समेय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

I. प्रकाश की तीव्रता **(Itensity of Light)** - जिस प्रकाश में कर्मचारी सर्वाधिक सुविधा का अनुभव करते हुए अधिकतम उत्पादन करते है, वही उपयुक्त प्रकाश है। उपयुक्त प्रकाश उद्योग कार्य के स्वरूप और कर्मचारी के साथ परिवर्तित होता रहता है। इसलिए विभिन्न औद्योगिक परिस्थितियों के लिए विभिन्न तीव्रता का प्रकाश उपयुक्त रहता है। विद्वानों ने अध्ययन के आधार पर बताया है कि उत्पादन और कर्मचारी, दोनों पर प्रकाश की तीव्रता का प्रभाव पड़ता हैं प्रकाश की सही तीव्रता रहने पर उत्पादन में वृद्धि होती है और कर्मचारी संतुष्ट रहते है। इसके विपरीत तीव्रता में कमी से उत्पादन, तथा अशुद्धियों में अधिकता देखने में आती है। किन्तु सभी प्रकार के कार्य के लिए समान प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है। सूक्ष्म कार्य के लिए अधिक व स्थूल कार्य के लिए कम तीव्रता की आवश्यकता होती है।

II. प्रकाश वितरण - उद्योगों में प्रकाश वितरण का भी बहुत महत्व है। उचित रूप से प्रकाश का वितरण न होने पर कर्मचारियों का ध्यान और उनकी आंखे दृष्टि क्षेत्र से विचलित रहती है। प्रकाश की तीव्रता जो भी हो लेकिन दृष्टि क्षेत्र से विचलित होती रहेती है। प्रकाश की तीव्रता जो भी हो लेकिन दृष्टि क्षेत्र में उसका वितरण रहने पर उससे लाभ होता है। अन्यथा कर्मचारी व उत्पादन दोनों पर प्रभाव पड़ता है कम या अधिक प्रकाश आने पर आंखे थक जाती है, दृष्टि तीक्षणता कम हो जाती है।

III. प्रकाश का रंग - आजकल रंगीन प्रकाश का प्रयोग बहुत हो रहा है। रंगीन चश्मों से प्रकाश की मात्रा कम हो जाती है, इसलिए गर्मी में लोग धूप के चश्में पहनते है। कार्यालयों में स्वच्छ प्रकाश अच्छा माना है लेकिन यह सभी जगह संभव नहीं है मूर के अनुसार प्रकाश ऐसा हो जो भिन्न-भिन्न वस्तुओं के मौलिक रंग को बदल न दे। मेयर तथा पफर ने स्वच्छ, पीला, हरा, लाल और नीले के क्रम में रंगो की श्रेष्ठता बतायी हैं इसलिए उत्पादन की दृष्टि से लाल व नीले रंग कम लाभप्रद है जबकि स्वच्छ प्रकाश श्रेष्ठ है।

IV. प्रकाश का काल - प्रयोगों के आधार पर पाया कि जब कर्मचारियों को अधिक समय तक प्रकाश मिलता है तब कार्य स्थल तथा उपकरणों के छोटे से छोटे पक्षों पर भी, कम तीव्रता के प्रकाश में भी उसका ध्यान जाता है। अत: संतोषजनक कार्य के लिए समुचित काल तक प्रकाश व्यवस्था रहनी चाहिए।

2) वातायन - कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा उत्पादन पर वातायन का भी प्रभाव पड़ता है। अच्छी वातायन व्यवस्था रहने पर कर्मचारी प्रसन्न रहते है। और उनके उत्पादन में वृद्धि होती है। ऊंचे धरातल पर ऑक्सीजन कम हो जाती है। अत: वहां बने कार्यलयों में वातायन का ठीक प्रबंधन होना चाहिए। यदि ऑक्सीजन में कमी रहती है तो सांस फूलना, ध्यान और स्मरण प्रतिक्रिया में कमी तथा हम बौद्धिक भूल करने लगते है। इससे कार्य कुशलता में कमी आ सकती है। जहां वातायन का बुरा प्रबंध है। वही सिरदर्द, घबराहट, बैचेन आदि होने लगती है।

3) तापमान - कार्य व कर्मचारी व दोनों पर तापमान का प्रभाव पड़ता है। मेकवर्थ ने अपने प्रयोग में उष्णता काप्रभाव देखा। उसके प्रयोज्य तापमान पर जितनी अशुद्धियाँ करते थे, 95^0 तापमान होने पर वे उससे दस गुनी अशुद्धि करने लगे। इसी प्रकार मेयर ने भी देखा कि जनवरी की अपेक्षा अगस्त में उत्पादन 10 प्रतिशत कम हो गया। इन प्रयोगों परिणामों से स्पष्ट हो गया कि तापमान अधिक रहने से कर्मचारी और उत्पादन दोनों को हानि पहुंचती है। इसके विपरित कम तापमान भी उत्पादन के लिए सही नहीं है। वरनर ने एक प्रयोग में पाया कि 67 प्रतिशत तापमान पर कम कम दुर्घटनाएं पाई किन्तु 52^0F तापमान कर देने से दुर्घटना की संख्या 35 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक कार्य के लिए एक निश्चित तापमान अच्छा रहता हैं तापमान विभिन्न कर्मचारियों व कार्यों को भिन्न रूप से प्रभावित करता है। कठिन शारीरिक कार्य करने वालों को कम तापमान सरल कार्य करने वालों को अधिक तापमान की आवश्यकता रहती है।

4) कोलाहल - कार्य करने में ध्यान की एकाग्रता बहुत आवश्यक है। इसलिए ध्यान को हटाने वाले कार्य की मात्र और उनकी उत्तमता पर प्रभाव डालते है। तीन तत्वों पर कोलाहल निर्भर करता है।

   (i) कोलाहल का स्वरूप (ii) कार्य का स्वरूप (iii) कर्मचारी का स्वभाव।

   नियमित व व्यवस्थित कोलाहल में कर्मचारी समंजन कर लेते है। लेकिन अनियमित और अव्यवस्थित कोलाहल बाधक रहते है। पोलक तथा बार्टलेट ने प्रयोगों के आधार पर स्पष्ट किया कि साधारण पेशीय कार्य पर कोलाहल का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार वर्नन ने कहा है कि किसी कार्य के करने में व्यक्ति कठिनाई अनुभव करता है। तब कार्य पर कोलाहल का प्रभाव अधिक पड़ता है। शांत परिवेश की अपेक्षा कोलाहल में कार्य करने के लिए अधिक ऊर्जा की आश्यकता होती है।

5) कार्यकाल - कार्य के घंटे का कार्य की मात्रा पर अधिक प्रभाव पड़ता है। कार्य करने के घंटे बढ़ा देने से प्रारंभ में उत्पादन में वृद्धि होती हैं किन्तु थोड़े समय बाद ही दुर्घटना थकान, रूगणना और अनुपस्थिति की संख्याओं में वृद्धि होने लगती हैं जिससे उत्पादन घट जाता है। अर्थात एक निश्चित समय सीमा तय होनी चाहिए। चर्म उद्योग में 40 घंटे प्रति सप्ताह के कार्य को सबसे उत्तम बताया। क्योंकि इतने समय का उत्पादन सबसे अधिक था। कार्य की अवधि का निर्धारण कार्य के प्रकार, देश की जलवायु तथा कर्मचारियों की आयु पर भी निर्भर करता है।

2. मनोवैज्ञानिक पर्यावरण

मनोवैज्ञानिक पर्यावरण को कभी-कभी सामाजिक पर्यावरण भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत ऐसे कारक आते है जो व्यक्ति के अनुभव तथा व्यवहार को क्षण विशेष में प्रभावित करते रहते है। व्यक्ति जिस समय में कार्य में लगा होता हे, उस समय उसके अनुभव, संवेग, प्रेरणाएँ, मूल्य, अभिवृत्तियाँ, मनोबल आदि प्रक्रियाएँ उसे अपने प्रभाव में ले आती है।

3. सामाजिक पर्यावरण

मानव के व्यक्तित्व का विकास और उसका संतुलन अनेक प्रकार का संगठनात्मक अभिवृत्तियों पर आधारित होता है। जब अभिवृत्तियों में क्षय प्रारंभ हो जाता हे तो विघटन की स्थिति होती है। विघटन अनेक क्षेत्रों जैसे - पारिवारिक विघटन, सामुदायिक विघटन, सामाजिक विघटन, सांस्कृतिक विघटन आदि का प्रभाव पड़ता है।

13.7 पदोन्नति के अवसर

कर्मचारी के पद एवं उत्तरदायित्व को वृद्धि हो सही अर्थों में पदोन्नति कहा जासकता हैं एक ही कार्य पर रहते हुए यदि कर्मचारी को वेतन अधिक दिया जाए तो इसे पदोन्नति नहीं कहेंगे। यह तो केवल वेतन वृद्धि होगी। पदोन्नति का संबंधपद का प्रतिष्ठा एवं उत्त्ारदायित्व से तथा अधिक कुशलता से है। पदोन्नति होते हुए भी आय में वृद्धि न होना Dry Promotion कहलाता है। स्कॉट एवं स्प्रीगल (Scott & Spriegal) के अनुसार पदोन्नति किसी कर्मचारी का ऐसे कार्य पर स्थानान्तरण है जो उसे पहले से अधिक धन अथवा अधिक ऊँचा स्तर प्रदान करता है।

पदोन्नति के उद्देश्य

1- कर्मचारी को अपने योग्यता एवं कार्यकुशलता के अनुकूल कार्य सौंपकर जनशक्ति का उपयोग करना।

2- कर्मचारियों को पदोन्नत करके उनकी सेवाओं के लिए उन्हें पुरस्कृत करना।

3- पदोन्नति से कार्य परिवर्तित होता है जिससे कार्य पर रूचि बनी रहती है।

4- कर्मचारी की अपनी योग्यता प्रदर्शित करने व बढ़ाने का पूर्ण अवसर प्रदान करना।

5- अधिक कुशलता पूर्वक कार्य करने के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करना।

6- कर्मचारी के मनोबल में वृद्धि करना।

7- योग्य व्यक्ति को अपने प्रभाव का अच्छी तरह से उपयोग करने का अवसर प्रदान करना।

8- कर्मचारियों में कार्य के प्रतिस्पर्द्धा का संचार करना।

9- अयोग्य व्यक्तियों को पदोन्नति न मिलने से वह स्वयं संस्था छोड़कर चले जाते हैं जो व्यवसाय के हित में होता हैं।

10- निराशा व अस्थिरता की स्थिति समाप्त होती है।

11- कर्मचारी को गतिमान रखती है, उनके विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

पदोन्नति की समस्याएं - पदोन्नति जहां कर्मचारी के लिए वरदान है, वहां प्रबंधन के लिए समस्या है। पदोन्नति के लिए उपयुक्त व्यक्ति के चयन इस बात काभी ध्यान रखना चाहिए कि योग्य ,एवं कुशल व्यक्ति को ही उचित समय पर पदोन्नति दी जाए। यदि प्रबंधन द्वारा एक भी पदोन्नति त्रुटि पूर्ण हो जाए तो कर्मचारियों के लिए उदासीनता तथा आक्रोश का कारण बन जाती है। पदोन्नति की उचित नीति का विवेचन करने से पूर्व दो महत्वपूर्ण विकल्पों का अध्ययन कराना आवश्यक है।

1. सीधी भर्ती अथवा पदोन्नति

2. योग्यता अथाव वरिष्ठता
3. पदोन्नति की व्यवस्था को ठीक तरह लागू करने के लिए आवश्यक है कि कम्पनी अपने कर्मचारियों को पदोन्नति देकर ऊँचे पदों पर भरे। यदि उपयुक्त कर्मचारी न हो तो बाहरी व्यक्तियों की नियुक्ति की जा सकती है।
4. पदोन्नति द्वारा रिक्त पद भरते समय सबसे बड़ी समस्या यह आती है कि पदोन्नति का आधार क्या हो। योग्यता अथवा वरिष्ठता प्रबंधक की दृष्टि से वही व्यक्ति पदोन्नति के योग्य कहा जा सकता है जिसमें नेतृत्वशक्ति, सहयोग, कर्तव्यनिष्ठा, तत्परता, पहल करने की क्षमता, योग्यता, साहस, उत्पादकता एवं निर्णायकर्ता के गुण हो। दूसरी और श्रम संघों की दृष्टि से विरिष्ठतम् तथा अनुभवी व्यक्तियों को पदोन्नति दी जानी चाहिए। यदि पदोन्नति के समय दो व्यक्ति समान योग्यता के हो तो उन्हें वरिष्ठता के आधार पर दी जानी चाहिए।

13.8 उद्योग में मानवीय सम्बंध

उद्योगों द्वारा मनोविज्ञान की स्वीकृति ने यह सिद्ध कर दिया है कि औद्योगिक सभ्यता सम्बंधी मांगों की पूर्ति करने में मशीनें अपर्याप्त हैं मशीनें चाहे कितनी हो सर्वश्रेष्ठ और वैज्ञानिक क्यों न हों, किन्तु उनका संचालन तब तक असम्भव है, जब तक चयन तथा प्रशिक्षित किये गये कर्मचारियों की सहायता का उपयोग नहीं किया जायेगा। मशीनों को पूर्ण तथा दोषमुक्त बनाने के लिए मानवशक्ति, मानव योग्यता तथा मानव-अभिप्रेरकों का अधिक से अधिक उपयोग किया जाना चाहिए।

औद्योगीकरण की सफलता के लिए उत्तम एवं स्वचालित मशीनों तथा अच्छे कर्मचारियों का होना अति आवश्यक है। आधुनिक औद्योगिक प्रगति ने एक और नयी समस्या पर सोचने के लिए विवश कर दिया है, वह है उद्योगपति और मजदूर के आपसी सम्बन्धी। एक समय तथा जब मजदूर मशीन से अच्छी मशीन माना जाता था। उद्योगपति मशीन को आराम देताथा, परन्तु मजदूर को नहीं। इस प्रकार की व्यवस्था अधिक दिन तक नहीं चल पायी। इसके साथ उद्योगपति और अन्य लोग महसूस करने लगे कि जब तक मालिक और मजदूर के बीच प्रेम, सहयोग, सहानुभूति और सद्भावनापूर्ण सम्बंध नहीं होंगे जब तक इन दोनों के सम्बंध स्वस्थ नहीं होंगे, तब तक उत्पादन नहीं बढ़ सकेगा।

इसमें कोई संदेह नही है कि मालिक और मजदूर के सम्बंधों में सुधार हुआ है, परन्तु उद्योगपति अब भी आर्थिक लाभ को अपना एकमात्र लक्ष्य मानता है। यह बात दूसरी है कि सरकारी नियम तथा मजदूरों की यूनियन मालिकों को मजदूरों की बात सोचने के लिए विवश कर देते हैं, लेकिन उद्योगपति की भावना में कोई अन्तर नहीं पड़ा है। वह मजदूरों के दुःख, असंतोष, कष्ट और आर्थिक दुर्दशा के लिए एक क्षण भी सोचने को तैयार नहीं। उसे तो अपनी पूँजी दुगुनी करने की चिन्ता रहती है। हालत यह है कि मालिक भ्रष्टाचारी मशीन का महत्त्वपूर्ण पुर्जा बन गया है। कल-कारखाने पर इनका आधिपत्य है, मण्डियाँ इनके इशारे पर चलती हैं और जनसाधारण इनका दास है।

उद्योगपति और प्रबन्धों को यह न समझा लेना चाहिए कि मजदूर को केवल वेतन ही समय पर देने से उनका कर्त्तव्य पूरा हो जाता है। आज वेतन एक मात्र संतोष का साधन नहीं, इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है मजदूर का सामाजिक जीवन। उद्योगपतियों को समझ लेना चाहिए कि मजदूर भी अपने परिवार, समाज और नौकरी के प्रति गौरव चाहता है। उसे रोटी की भूख कम है और आत्म-गौरव की अधिक, उसके आत्म-सम्मान की आकांक्षा पूंजीपति से कहीं अधिक होती है।

जब उद्योगपति मजदूर को वास्तव में अपने परिवार का सदस्य समझेगा, उसे अपने कारखाने का मालिक समझेगा, उसके सुख-दु:ख की अनुभूति करेगा, लाभ का एक निश्चित अनुपात लेने के बाद सब लाभांश मजदूर को बोनस या किसी और रूप में दे देगा तो मालिक और मजदूर के बीच मानवीय सम्बंन्धों की स्थापना हो जायेगी और इसक विपरीत चलेगा तो औद्योगिक तनाव की स्थिति बनेगी, हड़ताल होगी, मुठभेड़ होगी और अन्त में उत्पादन समाप्त हो जायेगा।

अत: यदि उत्पादन बढ़ाना हे, देश की औद्योगिक बेचैनी समाप्त करनी है, मालिक-मजदूर के सम्बंधों में सुधार करना है, रोज-रोज की हाय-हाय, हड़ताल तालाबन्दी आदि मिटानी है तो उद्योग में मानवीय सम्बंधों की समस्याओं को बढ़ावा देना होगा।

इसमें मानवीय सम्बंधों मे सम्बन्धित सामग्री का निम्नलिखित भागों में बांटा गया है-

1- मानवीय सम्बंधों के तत्व

2- औद्योगिक संघर्ष

3- श्रम कल्याण

मानवीय सम्बंधों के तत्त्व

यह एक सत्य है कि मालिकों और मजदूरों को दो वर्गो में विभाजित नहीं किया जा सकता है। उद्योग के दृष्टिकोण से दोनों के उद्देश्य एवं लक्ष्य एक से ही होते हैं, परन्तु पूँजीवादी व्यवस्था के दोनों के बीच एक बहुत बड़ी खाई बना रखी है। दोनों के लक्ष्यों से भिन्नता है। मालिक कम से कम खर्च में अधिक से अधिक उत्पादन चाहता है और मजदूर अधिक से अधिक वेतन में कम से कम उत्पादन करना चाहता है। राष्ट्र की आर्थिक उन्नति और विकास की चिन्ता नहीं है। यदि दोनों वर्ग (मालिक एवं मजदूर) सामूहिक में सोंचे और अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सहयोग, प्रेम, सहानूभूति आदि से कार्य करें तो कोई वजह नहीं कि औद्योगिक संघर्ष समाप्त न हो जाय। इस प्रकार की एकता के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा -

1. **सहयोग**

औद्योगिक संघर्ष का मूल कारण असहयोग होता है। बड़ी-बड़ी फैक्टरियों और कारखानों की बेचैनी या तनाव का विश्लेषण करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकला है कि जितने अधिक आपसी झगड़े और मतभेद होंगे, उतना ही असहयोग होगा। मालिक कर्मचारी के मतभेद, कर्मचारी प्रबन्धक के मतभेद, कर्मचारी निरीक्षक के मतभेद तथा कर्मचारी-कर्मचारी के झगडे औद्योगिक संस्थाको पनपने नहीं देते और इन सबका परिणाम निकलता है - हड़ताल, तालाबन्दी, घिराव झगड़े और मारपीट। इन स्थितियों के निराकरण हेतु मालिक अपने को ही मालिक न समझे, वरन् मजदूर को कारखाने क संचालक और वास्तविक उद्योगपति समझें। उत्पादन के प्रत्येक पक्ष पर मजदूर की राय लें। उसके सामाजिक जीवन में सहयोग दें। प्रबन्धक वर्ग पर अंकुश रखें, उनके अधिकारों को कम कर दें और मजदूर वर्ग के प्रतिनिधियों को प्रबन्धक वर्ग में रखें। उद्योगपति और मजदूर एक-दूसरे की सहायता के लिए तन, मन एवं धन से सदैव तेयार रहें। इस प्रकार का सम्बंबध कारखाने के प्रत्येक व्यक्ति में सहयोग की भावना उत्पन्न रहें। इस पकार का सम्बंध कारखाने के प्रत्येक व्यक्ति में सहयोग की भावना उत्पन्न करेगा और इस सामूहिक सहयोग से उद्योग स्वत: उन्नति की और बढ़ता जायेगा।

2. **समान लक्ष्य**

उद्योगपति और मजदूर का एक ही लक्ष्य होना चाहिए। दोनों को राष्ट्र की औद्योगिक उन्नति के लिए सोचना चाहिए। उद्योगपति को केवल व्यक्तिगत पूंजी और मजदूरी को केवल अपने वेतन के बढ़ाने की बात नहीं सोचनी चाहिए। दोनों को उद्योग की सफलता और राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि समझना चाहिए। एक-दूसरे के प्रति संकीर्ण विचारधारा और वैमनस्य की भावना को त्याग देना चाहिए।

3. **प्रलोभन की व्यवस्था**

सामूहिक सहयोग से एकता बनी रहती है। व्यक्ति समूह में इसलिए कार्य करता है कि उसके लक्ष्य एक होते हैं और उन्हें पाने की उसे आशा होती है। उत्पादन बढ़ाने के लिए मजदूरों को समय-समय पर सम्मानित किया जाना चाहिए। अच्छे उत्पादन के लिए उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए और पुरस्कार द्वारा उन्हें उत्साहित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार क अन्य अनेक प्रलोभन भी दिया जा सकते हैं।

4. **प्रशासन**

प्रबन्धक और निरीक्षक मालिक और मजदूर के बीच एक कड़ी का काम करते हैं। मालिक, प्रबन्धक, निरीक्षक, फोरमैन तथा मजदूर सभी प्रशासन के लिए उत्तरदायी होते हैं। वास्तव में प्रशासन की बागड़ार प्रबन्धकों के हाथ में होती है। यदि प्रबन्धक वर्ग के लोग इस प्रकार के नियमों से कार्य लेंगे जो पक्षपातपूर्ण हों, जिनमें वर्ग-विशेष का लाभ होता हो और किसी के दु:ख-सुख की सुनवाई न हो तो मजदूर प्रशासन का विरोध करने लगेंगे और प्रशासकों को उठाने के लिए कोई न कोई षड़यंत्र रचेंगें प्रशासन पूर्णत: पक्षपातरहित होना चाहिए और व्यवहारों में किसी प्रकार का भेद नहीं करना चाहिए। प्रशासन-सम्बंधी पक्षों पर विचार-विमर्श करने के लिए प्रबन्धकों को मजदूरों के प्रतिनिधियों को बुलाना चाहिए,जिससे दोनों समूह एक-दूसरे के दृष्टिकोण को भली-भाँति समझ सकें।

13.10 औद्योगिक संघर्ष

औद्योगिक संघर्ष का बुनियादी कारण विभिन्न वर्गों के लोगों के स्वार्थ और इच्छाओं में निहित होता है। वर्ग-संघर्ष के लिए भी यही बात कही जाती है। जब एक वर्ग की इच्छाएँ और रूचियाँ दूसरे वर्ग द्वारा दबायी जा नजर अंदाज की जाती है तो दोनों वर्गों में तनाव पैदा हो जाता है जो कुछ समय के बाद संघर्ष का रूप धरण कर लेता है। संघर्ष में औद्योगिक संघर्ष की सबसे उपयुक्त परिभाषा ब्लम ने दी है -

औद्योगिक संघर्ष में दो वर्ग सम्मिलित होते हैं - पहला वर्ग तो मालिक, प्रबन्धक और उनके खरीदे हुए गुलामों को होता है और दूसरा वर्ग मजदूर का। जब मालिक मजदूर के हितों, रूचियों, स्वार्थों और इच्छाओं का तिरस्कार ही नहीं दमन कर लेना चाहता है, उस समय मजदूर अपने संगठनों द्वारा उसका जवाब देना चाहता है। दोनों और से इसी प्रकार के व्यवहार का आदान-प्रदान होता है। धीरे-धीरे उद्योग में तनाव के दो माध्यम है - 1. हड़ताल और 2. तालाबन्दी। एक दूसरे को झुकाने के लिए मजदूर औरी मालिक हड़ताल और तालाबन्दी का सहारा लेते है।

जो कुछ भी है, औद्योगिक संघर्ष मालिकों के स्वार्थों और मजदूरों के अधिकारों की लड़ाई है। यह पूँजीवादी व्यवस्था की देन है। इस संघर्ष से मजदूर गरीब और बेकार बनता है तथा उद्योगपति सम्पन्न एवं पूंजीपति बन जाता हैं।

औद्योगिक संघर्ष के कारण

औद्योगिक संघर्ष के कारणों का मुख्यत: दो वर्गों में बांटा जाता है 1. सामाजिक कारण तथा 2. मनोवैज्ञानिक कारण।

सामाजिक कारण

सामाजिक कारणों के अन्तर्गत औद्योगिक व्यवस्था आती है, जो पूँजीवादी मनोवृत्ति से संचालित होती है। इसमें अर्थ और परिवर्तन दो मुख्य कारण होते है। सामाजिक कारणों को कई भागों में बांटते है -

1- पूंजीवादी मनोवृत्ति - समाज की बागड़ोर पूँजीपति के हाथ में है। इन्होंने कुटीर उद्योग से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक के उद्योगों को अपने हाथ में ले लिया है। सरकार इनकी आज्ञा पर काम करती है। ये चन्द्र उद्योग में अपना धन लगाने वाले तानाशाह वेतन और कार्यकाल के निर्धारण में, पदोन्नति करने में लोगों, को नौकरी देने और निकालने में अपने मनमानी करते हैं। ये अपनी लगायी हुई पूँजी का अधिक से अधिक लाभ लेना चाहते हैं। इन्हें मजदूर से कोई मतलब नहीं। इनकी इस मनोवृत्ति से तंग आकर मजदूर अपना संघर्ष छेड़ देते है।

2- राजनीतिक दृष्टिकोण - आजकल विश्व में दो विचारधाराएँ चल रही हैं- (1) समाजवाद और (2) पूँजीवाद। समाजवादी विचारधारा ने मजदूर को सर्वहारा माना है। मनुय सम्पूर्ण उद्योग धंधों पर अपने द्वारा बनायी हुई सरकार को आधिपत्य चाहता है और समाज पूँजी का बंटवारा। दूसरी और पूँजीवादी विचारधारा उद्योगपति को व्यक्तिगत पूंजी के संरक्षण में उद्योग धंधों पर अपना आधिपत्य जमाये रखने के लिए प्रेरणा देती है। इस प्रकार दोनों विचारधाराओं के ज्ञान से उद्योग के दो वर्गों में संघर्ष चलता रहता है।

3- सुविधाओं का वितरण - उद्योगपति अपनी छोटी सी पूँजी से कमाये हुए लाभांश से अनेक सुविधाएँ प्राप्त करता है। कार, ऊँचे महल और सुखमय जीवन पूँजीपति की उपलब्ध हैं तो दूसरी और मजदूर के बच्चे पढ़ नहीं सकते है, दवा के अभाव में दुनिया छोड़ जाते है। दिन रात परिश्रम करने के बाद रोटी, कपड़ा और किराये का मकान उनको पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत में मिलता रहता है। स्वाभाविक है कि मजदूर यह सब कुछ होते हुए इस समानता के विरूद्ध लड़ने की तैयारी करेगा।

मनोवैज्ञानिक कारण

मनोवैज्ञानिक कारणों में मौलिक आवश्यकताएँ, नौकरी की गारंटी तथा आर्थिक असंतोष आते हैं।

1- मौलिक आवश्यकताएँ - मजदूर संघर्ष के लिए उसी समय तैयार होता है, जब उसकी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है। उसके मन में तनाव, कुण्ठाएँ, प्रतिरोध आदि जन्म लेने लगते है। पूंजीपति का सुख मजदूर को दु:ख की अनुभूति करा देता है।

2- नौकरी की गारण्टी - आज की व्यवस्था में नौकरी की कोई गारण्टी नहीं है। आज आप कारखाने में नौकर है, कल आप बेकार हैं। उद्योगपति की दया ही एकमात्र गारण्टी है। मजदूर कारखाने की किसी दुर्घटना में मर जाय तो हजार-पांच सौ रूपया देकर उसकी पत्नी और बच्चों की छुट्टी कर दी जाती है। यह एक असंतोष का कारण है जो मजदूर में प्रतिरोध की भावना उत्पन्न कर देता है।

3- आर्थिक असंतोष - आर्थिक दृष्टि से मजदूर की अवस्था कोई विशेष अच्छी नहीं कहीं जा सकती। आर्थिक दबाव से वह सदैव दबा रहता है, अन्दर ही अन्दर घुलता रहता है, बदला लेने

की भावना से ओतप्रोत रहता है और जब अवसर पाता है तभी ज्वाला की चिनगारी बन, औद्योगिक को तहस-नहस कर देना चाहता है।

श्रम कल्याण

श्रम कल्याण का अर्थ उन कार्यों से है जिनके द्वारा श्रमिकों को प्रत्येक प्रकार का लाभ पहुँचे। श्रम कल्याण उन दशाओं के लिए उपयोग में लाया जाता हे, जिनकी स्थापना मालिक अपनी इच्छा से मजदूरों के लाभ हेतु करता है।

भारत सरकार की श्रम-जाँच कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में श्रम कल्याण के विषय में अनेक महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट किये हैं। इस रिपोर्ट में श्रम-कल्याण कार्यों के अन्तर्गत मजदूर की बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक और आर्थिक भलाई की बात कही गयी है। इस भलाई के लिए मकान, चिकित्सा, शिक्षा मनांरजन-सदन, सहकारी समिति, स्वास्थ्य, शिशु-गृह, वेतन सहित अवकाश, प्रॉवीडेण्ट फण्ड आदि सुविधाओं को आवश्यकत बताया गया है।

आज के औद्योगिकरण में सबसे बड़ा प्रश्न श्रमिकों के कल्याण का है। इसका उत्तर तो उद्योगपति पर भी निर्भर करता है किन्तु पुंजीवादी व्यवस्था के कारण और सरकार की जनवादी नीति के परिणामस्वरूप उद्योगपतियों ने सरकार को श्रमिक के हित और खुशहाली के लिए जिम्मेदार बना दिया है। हालांकि सकार को श्रमिक के हित और खुशहाली के लिए जिम्मेदार बना दिया है। हालांकि सरकार श्रम कल्याण सम्बन्धी नीति से मजदूरों में कार्य के प्रति कोई रूचि विकसित नहीं हो पाती है, उनमें उत्साह की कमी बनी रहती है, जबकि मनोवैज्ञानिक स्तर पर यदि उद्योगपति श्रम कल्याण सम्बंधी उत्तदायित्वों को अपने ऊपर ले लें तो मजदूरों में मालिक के प्रति प्रेम, सहानुभूति और सद्भावना होती है।

श्रम कल्याण कार्य

श्रम कल्याण सम्बंधी कार्यों को साधारणत: तीन प्रकार का माना जाता है -

1. वैधानिक - सरकारी कानून द्वारा उद्योगपति और सरकारी व्यवस्था को मजदूरों के कल्याण के लिए कुछ कार्य इच्छा न रखते हुए भी पूरे करने होते हैं। वैधानिक श्रम कल्याण कार्य मजदूरों कीसुविधा, सुरक्षा और कार्य करने की दशाओं से सम्बन्धित होते है।
2. ऐच्छिक - ऐसे कार्य जिन्हें उद्योगपति अपनी इच्छानुसार और जिनमें मजदूरों का कल्याण निहित हो, ऐच्छिक कार्य कहलाते हैं ।
3. पारस्परिक - इस प्रकार के श्रम कल्याण कार्य मजदूर संघों द्वारा किये जाते हैं ।

ब्राउटन - नामक विद्वान ने श्रम कल्याण कार्यों को दो वर्गों में विभाजित किया है-

1- कारखाने में अन्दर के श्रम कल्याण कार्य - दूसरे शब्दों में, इसे आन्तरिक श्रम कल्याण कार्य भी कहते है। इसके अन्तर्गत कर्मचारियों का चयन, औद्योगिक प्रशिक्षण, कार्य काल, विश्राम, कार्य की दिशाएँ, थकान, पदोन्नति, स्थानान्तरण, अवकाश और दुर्घटनाओं की रोकथाम सम्बंन्धी अनेक कार्य आते हैं। इसके अतिरिक्त उन समस्याओं पर भी विचार किया जाता है, जिनका सम्बंध कारखाने के अंदर की सुविधाओं से होता है, जैसे - स्नानगृह, शौचालय, कैण्टीन, मनोरंजन, सदन, चिकित्सा शिशु-गृह आदि।

2- कारखाने के बाहर के श्रम कल्याण कार्य - इनको आन्तरिक श्रम कल्याण कार्य की संज्ञा भी दी जाती है। इस प्रकार के कार्यों के अन्तर्गत मजदूरों के रहने के लिए मकानों का प्रबन्ध, सस्ते और पौष्टिक भोजन की व्यवस्था, शिक्षा का उचित प्रबन्ध, मनोरंजन के लिए क्लब, नाटक, चलचित्र का प्रबन्ध, चिकित्सा सेवाओं की उचित व्यवस्था आदि आते हैं।

इसके अतिरिक्त तीसरे प्रकार के श्रम कल्याण कार्य भी हो सकते है, जिनका संबंध पूर्णत: अर्थव्यवस्था से होता है, इसलिए इन्हें आर्थिक श्रम कल्याण कार्य कहते हैं।

3- आर्थिक श्रम कल्याण कार्य - इस वर्ग के अन्तर्गत सामाजिक बीमा, प्रॉवीडेन्ट फण्ड पेंशन, उचित वेतन, बोनस, क्षतिपूर्ति, बीमा, नौकरी की सुरक्षा आदि आते हैं।

श्रम कल्याण कार्यों से उद्योगपतियों को लाभ

श्रम कल्याण कार्यों से मजदूरों को सुविधा प्राप्त होती है, परन्तु उद्योगपति सबसे अधिक लाभान्वित होता है। उद्योगपति श्रम कल्याण में जितनी पूँजी लगाते है, सबसे अधिक वह मजदूर के सहयोग से कमा लेते है। कारखानें के अन्दर किये जाने वाले श्रम कल्याणकारी कार्यों से मजदूर की कुशलता और उत्पादन की क्षमता बढ़ जाती है।

1- मजदूरों के उचित चयन से कार्योत्पादन बढ़ता है और दुर्घटनाएँ कम होती है जिसके कारण उद्योगपति को अधिक लाभांश मिलता है।

2- कारखानें के अन्दर ही दी जाने वाली प्रत्येक सुविधा मजदूर को कुण्ठाओं, ईर्ष्याओं आदि से बचाने रखती हे, जिसके कारण उन्हें हड़ताल और संघर्ष नहीं करने पड़ते है। उद्योगपति भारी हानि से बच जाता है।

3- काम करने की दशाओं में अच्छे प्रबन्ध से मजदूर संतुष्ट रहते है। मालिक मजदूर के सम्बंध बिगड़ने नहीं पाते और दुर्घटनाएँ कम हो जाती है।

4- दुर्घटनाओं सम्बंधी श्रम कल्याण कार्यों से दुर्घटनाएँ कम हो जाती है। उद्योगपति की मशीन की टूट-फूट बच जाती है।

कारखाने के बाहर के श्रम कल्याण कार्यों से भी मालिकों को लाभ होता है। जब मजदूर को रहने के लिए मकान, खाने के लिए सस्ता और पौष्टिक भोजन, मनोरंजन के लिए साधन, बीमारी के लिए दवा, शिक्षा के लिए स्कूल आदि की सविधाएँ प्राप्त होती हैं तो न तो हड़ताल होती है और न संघर्ष। मालिक-मजदूर के बीच कोई मतभेद नहीं रहता है। मशीन दिन-रात चलती है : उत्पादन निरन्तर होता है और मजदूर मालिक दोनों का फायदा होता है।

भारत में श्रम-कल्याण कार्यों का महत्व

प्रथम पंचवर्षीय योजना में श्रम कल्याण कार्यों पर करीब 7 करोड़ रूपया और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में करीब-करीब 30 करोड़ रूपया व्यय किया गया। 1948 में फैक्टरी अधिनियम बना, जिसके अनुसार 500 या इससे अधिक मजदूरों वाले कारखानों में एक श्रम कल्याण अधिकारी की नियक्ति अनिवार्य कर दी गयी। इस प्रकार की व्यवस्था द्वारा मजदूरों को अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हुई। बावजूद इसके अभी इस देश में श्रम कल्याण कार्यों की अत्यधिक आवश्यकता है, क्योंकि यहाँ के

मालिक और मजदूर दोनों ही अपने-अपने स्वार्थ में लगे हुए हैं श्रम कल्याण कार्यों की आवश्यकता क्यों है, इसके मुख्य कारणों का वर्णन नीचे प्रस्तुत कर रहे है -

1- मजदूरी का अशिक्षित होना - भारत का मजदूर पूर्णत: अशिक्षित हैं उसे सामाजिक आर्थिक और व्यावहारिकता शिक्षा का भी कोई ज्ञान नहीं है। इस अज्ञानता के कारण न तो वे औद्योगिक कुशलता प्राप्त कर सकते हैं और न वे अपनी समस्याओं का समाधान कर सकते हैं, इसलिए श्रम कल्याण कार्यों का महत्व और भी बढ़ जाता है।

2- मजदूर की निर्धनता - भारत का मजदूर अत्यधिक गरीब है। इसके साथ-साथ मालिक उसका शोषण करता है। वह अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति धनाभाव के कारण नहीं कर पाता है। एक और सुविधाओं की कमी और दूसरी और औद्योगिक और सामाजिक वातावरण का उसके अनुकूल न होना उसके जीवन को असन्तुलित कर देता है। इस दृष्टि से श्रम कल्याण कार्यों की अति आवश्यकता है।

3- स्वास्थ्य और अच्छे भोजन की कमी - निर्धनता के कारण अच्छा भोजन उपलब्ध नहीं होता है जिसके कारण स्वास्थ्य गिरता जाता है और कर्मचारी अपनी उम्र पूरी करने से पहले ही विदा हो लेता है। दूसरी और अच्छे रहन-सहन के साधन न होने के कारण मजदूर बीमारी का शिकार हो जाता है। श्रम-कल्याणकारी कार्यों से मजदूर को अच्छे मकान और सस्ते एवं पौष्टिक भोजन की प्राप्ति होती है।

4- मनोरंजन के साधनों की कमी - जहाँ मजदूरों के लिए मनोरंजन के साधन उपलब्ध नहीं होते है, वहाँ मजदूर निम्न स्तर के व्यसनों में फंस जाते है। जुआ खेलना, शराब पीना, सिनेमा देखना और अन्य दुराचार मजदूर की जिदंगी बन जाते है। श्रम कल्याण कार्यों में इस प्रकार की सब सुविधाएँ प्रदान की जाती है।

5- संगठनों की दुर्दशा - भारत का मजदूर संगठित नहीं है। जो भी संगठन हैं, वे राजनीतिक आधारों पर बने हुए है। चंद भ्रष्टाचारी नेता अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए मजदूर संगठनों का इस्तेमाल करते हैं। फलस्वरूप मजदूर उन्नति नहीं कर पाता है। दूसरी और मिल-मालिक मजदूरों के नेताओं केा पैसे से खरीद लेते हैं और उनसे संगठनों की शक्ति को समाप्त करा लेते है। ये लोग मजदूरों को आपस में लड़ा देते है। इन सब समस्याओं के समाधान हेतु श्रम कल्याणकारी योजनाओं को क्रियान्वित करना अति आवश्यक है।

13.11 सारांश

औद्योगिक मनोविज्ञान द्वारा नित्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जीविकोर्जन के लिए शारीरिक और मानसिक कार्य करने वाले व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार औद्योगिक मनोविज्ञान का अध्ययन उन समस्त समस्याओं का समाधान करता है, जिनका संबंध औद्योगिक समाज और आर्थिक व्यवस्था से है।

औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में मिल-मालिक और मजदूर के संबंध अच्छे नहीं होना भी एक समस्या है।

कर्मचारी विश्लेषण के लिए उद्योग में कार्यरत कर्मचारी का सही चयन करना महत्वपूर्ण होता है। प्रत्येक कार्य की कुछ अपनी अपेक्षाएँ होती है। इन अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए योग्य व्यक्ति का चयन करना ही प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य होता है।

कर्मचारी सदैव अपने बाह्य एवं आंतरिक पर्यावरण से प्रभावित रहता है। पर्यावरण में भौतिक पर्यावरण तथा मनोवैज्ञानिक पर्यावरण ही कर्मचारी के कार्य परिवेश को प्रभावित करता है। अत: कार्य परिवेश का समुचित रूप से होना आवश्यक होता है जिससे कार्य में रूचि बनी रहती है। कर्मचारी के पद एवं उत्तरदायित्व में वृद्धि हो तो उसे पदोन्नति कहते है। पदोन्नति का संबंधपद की प्रतिष्ठा एवं उत्तरदायित्व से तथा अधिक कुशलता से है।

आधुनिक औद्योगिक प्रकृति ने एक और नयी समस्या पर सोचने के लिए विवश कर दिया है, वह है उद्योगपति और मजदूर के आपसी संबंध। मजदूर को मजदूर की तुलना में अधिक कीमती समझा जाने लगा है। मानवीय संबंधोंमें मालिक कम से कम खर्च में अधिक से अधिक उत्पादन चाहता है और मजदूर अधिक से अधिक वेतन में कम से कम उत्पादन देना चाहता है। इस कारण से दोनों वर्गो में संघर्ष चलता ही रहता है। इस संघर्ष को सामूहिक सहयोग, समान लक्ष्य, प्रलोभन की व्यवस्था, प्रशासन द्वारा समाप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार संघर्ष के दो माध्यम (i) हड़ताल (ii) तालाबंदी। हड़ताल मजदूर का और तालाबंदी मालिक का हथियार है। श्रम कल्याण का अर्थ उन कार्यों से है जिनके द्वारा मजदूरों को प्रत्येक प्रकार का लाभ पहुँचे। वहीं उद्योपगतियों को भी चैन मिला है, उत्पादन बढ़ता है, हड़ताल, तालाबंदी झगड़े घेराव आदि न होने से मालिक को आर्थिक लाभ होता है। दुर्घटनाओं के नियंत्रित होने से मशीन की टूट-फूट और मजदूर को शरीर हानि नहीं हाती है। संघर्ष रहित कारखाना मालिक की सुख-शांति और वैभव का द्योतक है।

13.12 बोध प्रश्न

1- औद्योगिक मनोविज्ञान से आप क्या समझते है? इसकी महत्वपूर्ण समस्याओं की विवेचना कीजिए।

2- कर्मचारियों की समस्याओं के समाधान में औद्योगिक मनोविज्ञान का अध्ययन किस प्रकार सहायक होता है। इसकी उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए।

3- कर्मचारी विश्लेषण का अर्थ बताइये तथा इसके महत्व को समझाइयें।

4- कर्मचारी विश्लेषण को प्रभावित करने वाले कारक समझाइये।

5- कार्य परिवेश से आप क्या समझते है? भौतिक पर्यावरण कार्यकुशलता को किस प्रकार प्रभावित करता है?

6- उद्योग में मानवीय संबंधोंके महत्व का वर्णन कीजिए।

7- औद्योगिक संघर्ष के मुख्य कारणों की विवेचना कीजिए।

8- श्रम कल्याण का क्या महत्व है? श्रम कलयाण से मिल-मालिकों को होने वाले लाभों का वर्णन करिये।

13.13 संदर्भ सूची

- ओझा आर.के., औद्योगिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2, पेज नं. 262-268, 455-469
- सुलेमान मुहम्मद और चौधरी विनय कुमार, आधुनिक औद्योगिक संगठनात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, पेज नं. 174-201, 353-362
- चौथे सरयू प्रसाद, औद्योगिक मनोविज्ञान के मूल तत्व कॉन्सेन्ट पब्लिशिंग कपंनी, नई दिल्ली, पेज नं. 242-273
- Harell, Industrial Psychhologyy, Oxford & IBH Publishing Co., Pa. No. 299-315

इकाई-14

औद्यौगिक मनोबल (Industrial Morale)

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 मनोबल की परिभाषा

14.4 मनोबल को प्रभावित करने वाले कारक

14.5 मनोबल के निर्धारक

14.6 मनोबल को मापने की विधियाँ

14.7 औद्योगिक मनोबल की वृद्धि की विधियाँ

14.8 मनोबल की आवश्यकता

14.9 कार्य-संतोष की प्रकृति तथा परिभाशा

14.10 कार्य संतोष के कारक

14.11 सारांश

14.12 बोध प्रश्न

14.13 संदर्भ सूची

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- मनोबल की परिभाषा व प्रकृति समझ सकेंगे।
- मनोबल को प्रभावित करनेवाले कारक समझ सकेंगे।
- मनोबल के निर्धारक को समझ सकेंगे।
- मनोबल को मापने की विधियों के बारे में समझ सकेंगे।
- औद्योगिक मनोबल की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
- कार्य-संतोष की प्रकृति तथा परिभाशा को समझ सकेगें।
- कार्य-संतोष के कारक को समझ सकेंगे।

14.2 प्रस्तावना

औद्योगिक समस्याओं में मनोबल की समस्या कर्मचारी तथा उद्योगपति दोनों के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। उच्च अथवा उन्नत औद्योगिक मनोबल से जहाँ कर्मचारी तथा उद्योगपति दोनों को

लाभ पहुँचता है वहीं निम्न औद्योगिक मनोबल से उन्हें निष्चित हानि पहुँचती है। इसलिए प्रबंधन की ओर से हमेशा इस बात का प्रयास किया जाता है कि कर्मचारी मनोबल हमेशा उन्नत बना रहे।

14.3 मनोबल की प्रकृति तथा परिभाषा

साधारण अर्थ में मनोबल का तात्पर्य किसी समूह के सदस्यों के बीच एकता, भाईचारा एवं आत्मीयता के भाव से है। औद्योगिक मनोबल का तात्पर्य कर्मचारी की उस अनुभूति से है, जिसके कारण वह अपने समूह के सामान्य उद्देश्यों में विश्वास रखता है, निष्ठापूर्वक अपने साथियों के साथ कार्य करने के लिए सहायोग की भावना से ओत-प्रोत रहता है तथा धैर्यपूर्वक प्रत्येक विशम परिस्थिति में अपने व्यक्तिगत लाभ को छोड़कर समूह की आचार-संहिता के अनुरुप कार्य करता है। औद्योगिक क्षेत्र में यही मनोबल 'औद्योगिक मनोबल' के नाम के से जाना जाता है। ब्लम तथार नेलर के विचार में ''औद्योगिक मनोबल कर्मचारी की वह भावना है जो उसे सदैव इस बात की अनुभूति कराती रहती है कि वह अपने कर्मचारी समूह का एक सदस्य है और समूह के सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसे अपने समूह में पूरा विश्वास रखना है।''

गियन (1958) ने मनोबल की परिभाशा देते हुए लिखा है कि ''व्यक्ति की आवश्यकताओं को जब उस सीमा तक तृप्ति होती है, जिस सीमा तक वह अपनी कार्य-परिस्थिति से संतुष्टि की आषा करता है, तो उसे ही मनोबल कहते हैं।''

ब्लम के विचार में औद्योगिक मनोबल को चार रूप में परिभाशित किया जा सकता है-

(1) समूह एकता की अनुभूति

(2) लक्ष्य के लिए आवश्यकता

(3) लक्ष्य के प्रति प्रगति

(4) समूह में व्यक्ति के कुछ कार्य जिनसे वह सामूहिक लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

किसी समूह के मनोबल का ऊँचा रखने का अर्थ होता है- कार्य में लगन मनोबल उच्च और निम्न दोनों प्रकार का हो सकता है, किन्तु एक समूह में एक साथ दोनों प्रकार (उच्च एवं निम्न) के समय मजदूरों का मनोबल जहाँ स्तर स्थिर नहीं रहता है। हड़ताल, तो उद्योगपति की दृष्टि से वह निम्न स्तर का होता है। इसी प्रकार तालाबंदी की स्थिति में जहाँ उद्योगपति का मनोबल उच्च होता है उपयुक्त दोनों परिस्थितियों में मनोबल, समय, परिस्थिति, स्थान तथा समूह आदि के साथ-साथ बदलता रहता है।

संक्षेप में, मनोबल एक ऐसी मनोवृति है जो कर्मचारी में सदैव विद्यमान रहती है और उसे समूह के सामान्य उद्देश्य प्राप्त करने हेतु समूह में भरोसा रखने के लिए जागरुक रखती है तथा सहयोग की भावना से कार्य करने के लिए प्रेरित करती रहती है। कर्मचारियों में इसके विकास से कार्य क्षमता की वृद्धि होती है और उत्पादन बढ़ता है।

14.4 मनोबल को प्रभावित करने वाले कारक

सभी क्षेत्रों में मनोबल के स्थायित्व एवं गतिषीलता के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को अपने कार्य से सुख की अनुभूति हो तथा उसे सदैव कार्य करने में संतोष हो। छोटे से छोटे कारखाने से लेकर

बड़े से बड़े कारखाने के कर्मचारी के मनोबल को प्रभावित करनेवाले जो महत्त्वपूर्ण कारक है, उन सबका नियंत्रण की कर्मचारी एकमात्र मानसिक दशा, संतोष की अनुभूति से ही होता है। मनोबल को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का वर्णन इस प्रकार है-

1- वेतन **(Salary)-** उद्योगपति, कर्मचारी, उत्पादन तथा सरकारी मशीनरी ये एक दूसरे के पूरक है। इनमें से किसी एक के आपसी संबंध बिगड़ते है तो उत्पादन प्रभावित होता है। उत्पादन के प्रभावित होते ही पूँजी का संतुलन बिगड़ता है तथा उद्योग ठप्प हो जाता है। इस ठप्प होने की कड़ी में प्रधान कारण सहयोग है। कर्मचारी 'वेतन' को अपने 'कार्य संतोष' का एक विशेष अंग बना लेता है। समुचित वेतन, जो प्राथमिक आवश्यकताओं के अनुकूल होता है वह कर्मचारी सदैव कार्य संतोष की स्थिति में रखता है। इस प्रकार वेतन कर्मचारी के मनोबल को प्रभावित करता है।

2- पदोन्नति **(Promotion)**

प्राय: यह पाया जाता है कि जो कर्मचारी वरिश्ठता के क्रम में आता है। उसे पदोन्नित के अवसर नहीं दिया जाता है। इसलिए मेहनती, ईमानदार और उत्पदान को बढ़ाने वाले कर्मचारी धीरे-धीरे कुंठित होने लगते है। जब वे यह देखते है कि उनसे कम समझदार, अकुशल, कामचोर, जूनियर और चापलुस कर्मचारी की पदोन्नति कर दी गई है तो वे कार्य में रुचि लेना कम कर देते हैं। उनकी मानसिक स्थिति क्षीण होने लगती है। जिस कार्य से उन्हें संतोष प्राप्त होता था उसी से वे कतराने लगते है। धीरे-धीरे वे जिस उद्योग को अपना समझते थे, उसी के प्रति लापरवाही बरतने लगते है। एक समय आता है जब कर्मचारी का मनोबल गिरने लगता है और कार्य को एक बोझ समझता है।

3- कार्य दशाएँ **(Working Conditions)**

मनोबल को प्रभावित करने वाली कार्य संबंधीतीन दाषाओं को प्रधान माना जाता है-

(अ) आपसी संबंध- उद्योग धंधों में जितनी समस्याएँ है उनमें से 50 प्रतिषत का संबंध आपसी संबंधोंके टकराव से है। जब कर्मचारी के संबंधप्रबन्धकों, मालिकों और अपने सहयोगियों से बिगड़ने लगते हैं तो सहयोग की भावना का ह्रास होने लगता है। एक दूसरे को नीचा दिखाने, नुकसान पहुँचाने के लिए वे अपना कर्त्तव्य व उद्देश्य भूल जाते हैं। कार्य के प्रति रुचि धीरे-धीरे कम होने लगती है और कुल मिलाकर मनोबल समाप्त हो जाता है।

(ब) दोषपूर्ण भौतिक दशाएँ-इन दशाओं के कारण दुर्घटनाएँ होती है, कर्मचारी की शारीरिक तथा मानसिक क्षमता प्रभावित होती है। दोशपूर्ण भौतिक दशाओं में प्रकाष, तापमान और कार्य के घंटों में संतोष देने वाली सुविधाएँ आती है। अपर्याप्त प्रकाष या प्रकाष की तीव्रता, वितरण और रंगों का चयन ये सभी कार्य क्षमता को प्रभावित करते हैं। समय अधिक व्यय होता है और उत्पादन कम। भौतिक दशाओं के संतुलन से कर्मचारी की कार्य में रुचि बनी रहती है, और वह स्वयं संतुलित रहता है।

4- अपने कार्य के विषय में जानने की इच्छा **(Desire to know about his work)**

जब कोई कार्य सहयोग और स्पर्धा से किया जाता है तो उत्पादन बढ़ जाता है। इसलिए कार्य करवाते समय यदि कर्मचारी को यह ज्ञात रहता है कि उसने कार्य कितनी मात्रा में,

किस प्रकार का और अपेक्षा अन्य कर्मचारी से क्वालिटी में कितना अच्छा किया है तो प्रोत्साहन मिलेगा। प्रत्येक र्कचारी कार्य करने के बाद यह जानने की प्रबल इच्छा रखता है कि उसका कार्य समूह से किस स्तर का रहा है। इसी प्रकार अन्य कर्मचारी जिनका उत्पादन स्तर बहुत निम्न होता है, उन्हें अपने कार्य की उत्पादन-मात्रा जानकर अन्य सहयोगियों की प्रगति देखकर अपने कार्य स्तर में सुधार करने की इस इच्छा का प्रबल होना ही मनोबल का द्योतक है। इस इच्छा का प्रबल होना ही मनोबल का इसके साथ कर्मचारी उसके प्रबंधक या मालिक उनकी उन्नति, प्रगति तथा पदोन्नति के लिए कौन-कौन सी योजनाएँ बना रहे है। यह जानने का इच्छुक रहता है, इससे उसे संतोष मिलता है तथा अपने कार्य में रुचि लेता है और उसका मनोबल बढ़ता रहता है।

5- पद-स्थिति **(Rank)**

कर्मचारी की पद स्थिति उसे एक प्रोत्साहन देती है, इसके साथ-साथ वह मालिक प्रबन्धकों और अपने ऑफिसरों को देखकर एक विचार बनाता है कि उसे भी यह पद प्राप्त करने की चेश्टा करनी चाहिए। अच्छी, ईमानदार और कुशल कर्मचारी को पद-स्थिति छोटे पद पर काम करने वाले कर्मचारी से अधिक एहसास कराती रहती है। यदि छोटे पद पर काम करने वाले कर्मचारी को भी पद का प्रलोभन दिया जाएगा तो उसकी कार्य के प्रति तीव्र इच्छा और मनोबल भी बढ़ेगा। इसलिए प्रत्येक कारखाने के प्रबंधकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कर्मचारी पद-स्थिति से दु:खी न होने पाए अन्यथा उसका मनोबल स्तर कम होता जाएगा। जो उत्पादान को प्रभावित करेगा।

6- सामाजिक कारक **(Social Factors)**

मेयो (Mayo) ने कहा है कि कर्मचारी में सुरक्षा और निष्चितता की भावना, मनोबल स्थिरता का महत्वपूर्ण अंग है और इस प्रकार की भावना तभी उत्पन्न होती है, जब कर्मचारी एक विशेष समूह की सदस्यता को स्वीकार करता है। इसके विपरीत होने पर उसका मनोबल गिरता जाता है।

मनोबल को बढ़ाने के लिए कारखाने के प्रबंधकों को कर्मचारियों की एक गोष्ठी प्रतिमाह करवानी चाहिए। उनमें आपसी विचार-विमर्श से उनकी समस्याएँ समाप्त हो जाती है। सामाजिकता के विचार उत्पन्न होते है और स्वस्थ अभिवृति उत्पन्न होती है।

प्राय: यह पाया जाता है कि विश्राम-अवधि के पष्चात् जब कर्मचारी अपने कार्य पर लगते है तो उनकी उत्पादन मात्रा बढ़ जाती है। यह बढ़ोतरी थकान की कमी के कारण तो होती ही है साथ ही कर्मचारी की आपस में हल्की बातचीत, हँसी आदि से अपने कार्य तनाव को दूर कर लेते है और काम के प्रति एक विशेष प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न होती है जो मनोबल का प्रतिरुप होती है।

उपर्युक्त कारक के अलावा कर्मचारी की सराहना और प्रशंसा उनके मनोबल को बढ़ाती है। इसके साथ ही कुशल कर्मचारी को पारितोषिक आदि प्रदान करने से कुशल कर्मचारी और अधिक कुशल होगें तथा अकुशल व सुस्त कर्मचारियों में मनोबल स्तर भी ऊँचा होगा।

इसके साथ-साथ कर्मचारियों की पारिवारिक समस्याओं के निराकरण के लिए एक विभाग या मनोवैज्ञानिक और अनुभवी व्यक्ति रखना चाहिए जिससे कर्मचारी का सामाजिक जीवन जितना स्वस्थ होगा, उतना ही मनोबल उच्च होगा और उन्नति की दिशा में बढ़ता रहेगा।

14.5 मनोबल के निर्धारक (Determinants of Morale)

1- उन कर्मचारियों का मनोबल उच्च रहेगा जिनमें स्वाभाविक रुप से एकता-भाव सदैव विद्यमान रहेगा।

2- विघटनकारी तत्वों की न्यूनता होनी चाहिए।

3- सभी कर्मचारियों के सामने एक सामूहिक लक्ष्य होना चाहिए, जिसे प्राप्त करने के लिए व सहयोग के आधार पर कार्य करें।

4- प्रबंधकों को कर्मचारियों की रुचियों और अरुचियों का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

5- प्रबंधकों की कर्मचारियों के प्रति और कर्मचारियों की प्रबंधकों तथा करखानों के प्रति धनात्मक मनोवृति होनी चाहिए।

6- सभी कर्मचारियों की संगठन के प्रति आंतरिक इच्छा होनी चाहिए कि हमारा उद्योग अधिक से अधिक रुप से कार्य करता रहे।

उपर्युक्त विशेषताएँ जहा होगी वहाँ कर्मचारी का मनोबल श्रेश्ठ रहेगा। इसके विपरीत स्थिति में मनोबल का क्षय होता है।

14.6 मनोबल को मापने की विधियाँ

मनोबल के मापन का अर्थ यह निर्धारित करना है कि किसी उद्योग का मनोबल किस हद तक उच्च अथवा निम्न है।

व्यवहारिक दृष्टिकोण से यह मापन न केवल अपेक्षित है बल्कि आवश्यक है भी है। उद्योग के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों के मनोबल का उन्नत रहना बहुत आवश्यक है। कर्मचारियों के उच्च मनोबल व निम्न मनोबल की जानकारी मिलती है तब वह निम्न कारणों को जानने का प्रयास करता है। जो कर्मचारियों के निम्न मनोबल के लिए उत्तरदायी हैं, और उन्हें दूर कर कर्मचारियों के मनोबल को उन्नत बनाने का प्रयास करता है। इस संबंधमें कई मापों तथा विधियों या प्रविधियों का उल्लेख मिलता है जिन्हें मुख्य रुप से दो मांगों में विभाजित किया जा सकता है-

(क) आत्मनिष्ठ विधियाँ (Subjective Method) तथा

(ख) वस्तुनिष्ठ माप (Objective Measurement)

(क) आत्मनिष्ठ विधियाँ-

आत्मनिष्ठ विधियों का तात्पर्य उन विधियों से है जिनमें अन्तर्निरीक्षण प्रतिवेदन की प्रधानता होती है। इसलिए ऐसी विधियों को आत्म प्रतिवेदन प्रविधियाँ भी कहा जाता है। इन विधियों के द्वारा कर्मचारियों से विभिन्न तरीकों से सम्पर्क स्थापित कर उनके निम्न अथवा उच्च मनोबल का पता चलता है। इन विधियों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) सामाजिक विधि (Sociometric Method)-

इस विधि को मोरेनों ने (1943) में किसी समूह के सदस्यों के पारस्परिक संबंधोंकी जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से विकसित किया था। किन्तु बाद में इसकी बढ़ती हुई उपयोगिता के कारण इसका

उपयोग विभिन्न लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए किए जाने लगा। यहाँ तक कि सामाजिक समूह अथवा कार्य समूह के सदस्यों के मनोबल को मापने के लिए भी इसका उपयोग किया जाने लगा।

इस विधि के द्वारा कर्मचारियों के मनोबल को मापने के लिए एक-दूसरे के प्रति उनकी पसन्द एवं आकषर्ण को निर्धारति करने का प्रयास किया जाता है। कार्य समूह के सदस्यों से पूछा जाता है कि वे समूह के किस सदस्य के साथ रहना अधिक पसन्द करते हैं। उन्हें यह भी बतलाने को कहा जाता है कि वे समूह के किस सदस्य को सबसे अधिक नापसंद करते हैं। इस प्रकार समूह के प्रत्येक सदस्य की पसंदगी तथा नापसंदगी को निर्धारित करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार सितारें, विभक्ति, एकतरफा पसंद, सरल पसंद, दो तरफॉ पसंद पारस्परिक पसंद तथा गुट को निर्धारित किया जाता है। कार्य समूह के जिस व्यक्ति को अधिकांश कर्मचारी पसंद करते उसे सितारा कहा जाता है। जिस व्यक्ति को कोई पसंद नहीं करता उसे विभक्ति कहते हैं। यदि एक व्यक्ति दूसरे को पसंद करता हो किन्तु दूसरा पहले को पसंद नहीं करता हो तो इसे एक तरफा पसंद या सरल पसंद कहा जाता है। जब दो व्यक्ति एक-दूसरे को पसंद करते हो तब इसे दोतरफा पसंद या पारस्परिक पसंद कहते है। यदि समूह के थोड़े से व्यक्ति एक दूसरे के प्रति आकर्षित हों और शेष सदस्यों को नापसंद करें तो इसे गुटबाजी कहेंगे। समूह के सदस्यों के बीच इन संबंधेंको ग्राम के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता हैं जिसे समाजिमितिक रेखाचित्र कहते है।

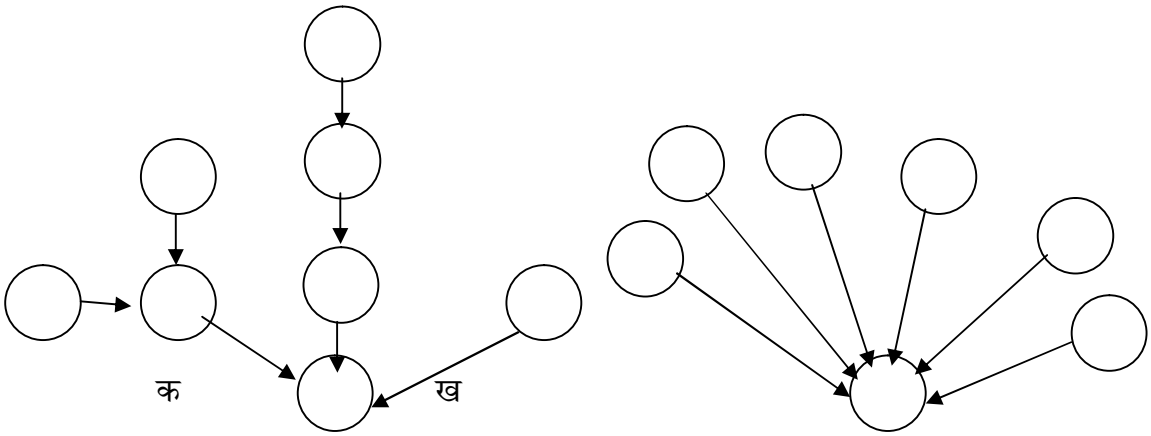

सामाजमितिक रेखाचित्र से कर्मचारियों के उच्च व निम्न मनोबल का बोध होता है। औद्योगिक मनोयोग के मापन के लिए यह विधि पूरी तरह से सफल नहीं है।

(2) प्रश्नावली-

औद्योगिक मनोबल को मापने के लिए इस विधि का उपयोग किया जाता है। प्रश्नावली में ऐसे प्रश्नों को रखा जाता है जिनका संबंध प्रत्यक्ष रुप से मनोबल के निर्धारकों से होता है। आवश्यकता के अनुसार खुली प्रश्नावली, बंद प्रश्नावली तथा मिश्रित प्रश्नावली का निर्माण किया जाता है।

मनोबल को मापने के लिए कार्य समूह के सभी सदस्यों के बीच एक ही समय में इसका वितरण किया जाता है और उनसे कहा जाता है कि वे प्रश्नावली को भरकर वापस कर दें। फिर उनके द्वारा दी गयी प्रतिक्रियाओं का विष्लेशण कर उच्च व निम्न मनोबल का पता लगाया जाता है।

मनोबल को मापने की यह विधि कई दृष्टिकोण से काफी उपयोगी है।

(क) इस विधि में समय श्रम तथा धन की बचत होती है क्योंकि इसका उपयोग सामूहिक रुप से कर सकते है।

(ख) इस विधि से मनोबल का मापन संभव है क्योंकि प्रश्नावली भरते समय पर कर्मचारी पर बाहरी दबाव का प्रभाव नहीं पड़ता।

(ग) आवश्यकता होने पर दूरस्थ लोगों से डाक प्रश्नावली द्वारा सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती है।

फिर भी इस विधि द्वारा मनोबल का मापन करते समय कई त्रृटियों के होने की संभावना रहती है।

(क) यह एक आत्मनिष्ठ विधि है इसलिए कई कारणों से कर्मचारी अपनी भावनाओं को छिपाकर गलत उत्तर दे सकते हैं।

(ख) कभी-कभी प्रश्नों की जटिलता व शब्दों की अस्पष्टता के कारण उत्तरदाता प्रश्नों को समझ नहीं पाने के कारण सही उत्तर नहीं दे पाता है।

(ग) इस विधि का उपयोग शिक्षित व्यक्तियों पर किया जाता है। अत: उद्योग के अशिक्षित कर्मचारियों के मनोबल को मापने में यह विधि उपयुक्त नहीं हो पाती है।

(3) **साक्षात्कार-(Interview)** औद्योगिक मनोबल को मापने के लिए साक्षात्कार एक सरल तथा उपयोगी विधि है। साक्षात्कार के माध्यम से कर्मचारियों के विचारों से संबंधितसूचनाएँ प्राप्त करना संभव हो पाता है। समूह संबंधता, सामूहिक लक्ष्य के प्रति मनोवृति, प्रबंधन के प्रति मनोवृति, पारस्परिक सम्बन्ध, उपसमूहों की संख्या, उत्पादन की स्थिति, हड़ताल, तालाबंदी आदि से संबंधितसूचनाएँ प्राप्त करके कर्मचारियों के मनोबल का मापन सरल हो जाता है।

आवश्यकता के अनुसार संरचित साक्षात्कार, वैयक्ति साक्षात्कार, सामूहिक साक्षात्कार, कार्य पर साक्षात्कार तथा कार्य से बाहर साक्षात्कार के द्वारा कर्मचारी मनोबल को मापा जा सकता है। मनोबल मापन की इस विधि में कई प्रकार के गुण पाए जाते है।

(क) इस विधि द्वारा कर्मचारियों के मनोबल को प्रत्यक्षरुप से मापना संभव हो पाता है।

(ख) वैयक्तिक साक्षात्कार के कारण इस विधि से मनोबल का मापन अधिक सही होता है।

(ग) इस विधि से शिक्षित कर्मचारी के साथ-साथ अशिक्षित कर्मचारी के मनोबल का मापन किया जा सकता है।

(घ) शाब्दिक संचार के साथ-साथ अशाब्दिक संचार का उपयोग करना भी इस विधि से संभव होता है।

इन गुणों के होते हुए भी साक्षात्कार विधि में कई त्रुटियां संभव है।

(क) यह एक आत्मनिष्ठ विधि है जिस कारण साक्षात्कार के समय संभावना बनी रहती है कि साक्षात्कारकर्ता के किसी प्रश्न का सही उत्तर कर्मचारी न देकर गलत सूचना दे दे।

(ख) व्यक्तिगत साक्षात्कार में अधिक समय, धन व श्रम की आवश्यकता होती है।

(ग) सामूहिक साक्षात्मकार में कर्मचारी द्वारा सही सूचनाएँ प्राप्त करना कठिन होता है। अत: इस विधि का उपयोग एक सहायक विधि के रुप में करना ठीक होगा।

(4) मनोवृति मापनियाँ (Attitude Scale)

कर्मचारी मनोबल को मापने के लिए एक विधि मनोवृति मापनी भी है। कर्मचारी की अनुकुल मनोवृति से उच्च मनोबल तथा प्रतिकूल मनोवृति से निम्न मनोबल का पता चलता है। मनोवृति मापनियों के कई प्रकार है जिनमें थर्सटन मनोवृति मापनी, लिकर्ट मनोवृति मापनी, बोगार्डस सामाजिक दूरी मापनी आदि मुख्य है। कर्मचारी के मनोबल को मापने में अधिकतर इन्हीं मापनियों का उपयोग किया जाता है। इसके साथ ही एक सामान्य त्रुटि यह है कि ये सभी आत्मनिष्ठ विधियाँ है इसलिए उत्तर देते समय कर्मचारी सही बात को छिपाकर गलत सूचना दे सकता है। ऐसी स्थिति में मनोबल का मापन कहाँ तक सही होगा कहना कठिन होता है।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए वस्तुनिष्ठ मापों का उपयोग करना आवश्यक होता है।

(ख) वस्तुनिष्ठ माप-(Objective Measures)

आत्मनिष्ठ विधियाँ मनोबल की सही स्थिति मापने में पूरी तरह सक्षम नहीं है। इस कमी को दूर करने के उद्देश्य से औद्योगिक मनोवैज्ञानिकों ने पूरक विधियों के रुप में कुछ वस्तुनिष्ठ मापों का उल्लेख किया है। इनमें हड़ताल, कार्य छोड़कर अन्यत्र चले जाना, अनुपस्थिति, शिकायतें, उत्पादकता आदि मुख्य है। गीज तथा रटर, बर्नबर्ग, ब्लम तथा नेलर आदि मनोवैज्ञानिकों ने मनोबल को मापने के अपने अपेक्षित सुझाव दिये है।

अत: आत्मनिष्ठ विधियों की तरह वस्तुनिष्ठ मापन भी मनोबल को समुचित रूप से मापने से सफल नही है किन्तु यह दोनों विधियाँ एक दूसरे की त्रुटियों का प्रति संतुलन करती है। इसलिए ब्लम तथा नेलर ने कहा है कि मनोबल के समुचित मापन के लिए यह आवश्यक है कि आत्मनिष्ठ विधियों के साथ वस्तुनिष्ठ मापों का उपयोग भी अनिवार्य रुप से किया जाए।

14.7 औद्योगिक मनोबल की वृद्धि की पद्धतियाँ (Methods of increasing Industrial moral)

कर्मचारियों में मनोबल के सुधार हेतु चार विधियाँ बताई गई है-

(1) विशेषज्ञ विधि (Expert Method)

(2) औद्योगिक जासूस विधि (Industrial Spy Method)

(3) औद्योगिक परामर्शदाता विधि (Industrial Counsellor Method)

(4) कर्मचारी समस्या विधि (Employee Problem Approach)

14.8 मनोबल की आवश्यकता

कारखाने में कार्य करने वाले कर्मचारियों का मनोबल उच्च करने की आवश्यकता होती है क्योंकि निम्न मनोबल होने पर कर्मचारी का मानसिक, शारीरिक दोनों पर प्रभाव पड़ता है जिसका सीधा

असर उत्पादन पर पड़ता है। इसके लिए प्रबन्धक एक विशेषज्ञ कार्य के लिए नियुक्त करता है। सभी पक्षों का निरीक्षण कर वह रिर्पोट तैयार करता है। जैसे- प्रोत्साहन देने वाले पोस्टर, नारे, भाषण, मीटिंग चाय-पार्टी कल्याण संबंधीव्यवस्था आदि का सुझाव देता है। इन सभी सुझावों के अनुसार प्रबन्धक कार्य योजनाएँ बनाकर क्रियात्मक रुप देते हैं। इससे मनोबल में वृद्धि होती है।

दूसरा कर्मचारी को यह जानने नहीं दिया जाता है कि कोई विशेषज्ञ नियुक्त किया गया है। विशेषज्ञ कर्मचारियों में घुल-मिलकर सारी सूचनाएं एकत्र करता रहता है। फिर प्रतिवेदन तैयार कर उपयुक्त सुझाव प्रस्तुत करता है। प्रबन्धक इन सुझावों के अनुकूल कार्य करता है।

औद्योगिक परामर्शदाता मनोबल को उच्च करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। समस्याओं को सुलझाने के लिए परामर्शदाता एक दूसरे पर विश्वास रखने के लिए परामर्श देता है। किसी भी उद्योग की उन्नति के लिए उच्च मनोबल की आवश्यकता रहती है। जिससे समूह के सदस्यों में एकता की भावना जाग्रत की जाती है। इससे उद्योग की उन्नति होती है।

14.9 सारांश (Summary)

परिचय - मनोबल का प्रयोग सेना के कार्य, सैनिक क्षेत्रों तथा सामाजिक क्षेत्रों में भी इसका उपयोग किया जाता था। इसका केन्द्रीय अर्थ 'सभी लोगों द्वारा पूर्ण सहयोग की भावना के सन्दर्भ में होता है।

मनोबल की प्रकृति तथा परिभाषा-

औद्योगिक मनोबल का तात्पर्य कर्मचारी की उस अनुभूति से है, जिसके कारण वह अपने समूह के सामान्य उद्देष्यों में विश्वास रखता है, निष्ठापूर्वक अपने साथियों के साथ कार्य करने के लिए सहयोग की भावना से ओत-प्रोत रहता है।

मनोबल को प्रभावित करने वाले कारक-

(1) वेतन (2) पदोन्नति (3) कार्य दशाएँ (4) अपने कार्य के विषय में जानने की इच्छा (5) पदस्थिति (6) सामाजिक कारक

मनोबल के निर्धारक -

(1) सामूहिक सहयोग की भावना (2) लक्ष्य की आवश्यकता (3) लक्ष्य की ओर प्रगति।

औद्योगिक मनोबल का मापन - मोरेनों ने (1943) में समाजमीतिय प्रणाली का निर्माण किया। समूह का वही व्यक्ति नेता होता होता है जिससे सबसे अधिक लोगों ने पसंद किया होता है।

कार्य-संतोष (Job Satisfaction)

14.10 कार्य संतोष की प्रकृति तथा परिभाषा

कार्य संतोष का अर्थ विभिन्न अभिवृतियों के परिणाम से है, जिनका सम्बन्ध कर्मचारी के व्यवसाय से होता है। जीवन को सुखमय बनाने के लिए जो अभिवृति वह रखता है, वह कार्य संतोष का परिणाम ही होती है।

ब्लम तथा नेलर के अनुसार - ''कार्य-संतोष कर्मचारी की उन अभिवृतियों का परिणाम है, जिन्हें वह अपने कार्य या व्यवसाय से संबंधितअनेक कारकों एवं सामान्य जीवन के प्रति बनाये रखता है।''

जो कर्मचारी अपने कार्य से संतुष्ट है, वे स्वस्थ मानसिक संतुलन रखते हैं। स्वस्थ मानसिक संतुलन कर्मचारी को कार्य करने के लिए प्रेरित करता है, उसकी मनोबल को बनाए रखता है। तथा उसकी उत्पादन क्षमता ये किसी प्रकार का ह्रास नहीं आने देता है। कार्य-संतोष को अभिवृति एवं मनोबल के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है।

14.11 कार्य संतोष के कारक

कार्य संतोष संबंधीसभी कारको को तीन वर्गो में बाँटा जाता है।

(1) व्यक्तिगत कारक

(2) कार्य संबंधीकारक

(3) प्रबन्धकों से सम्बन्धित कारक

(1) वैयक्तिगत कारक (Individual Factor)-

वैयक्तिक कारकों का संबंध कर्मचारी से होता है। उसके शीलगुण तथा भौतिक पक्ष कार्य-संतोष को निश्चित ही प्रभावित करते है। इनमें प्रमुख है-

1- लिंग – स्त्रियां अपने कार्य से अधिक संतुष्ट रहती है अपेक्षाकृत पुरुषों के। इसका कारण यह है कि स्त्रियों की आकांक्षाएं तथा आवश्यकताएं अत्यधिक सीमित होती है तथा उत्तरदायित्व की अनुभूति भी कम होती है।

2- आयु- आयु का कार्य-संतोष की मात्रा पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कुछ व्यवसाय ऐसे है जहां आयु कार्य संतोष को प्रभावित करती है। सपुर नामक विद्वान का कहना है कि 25 से 34 तथा 45 से 54 वर्ष की आयु को लोग अपने कार्य से असंतुष्ट रहते है। आयु वृद्धि के साथ-साथ कार्य संतोष की मात्रा बढ़ती जाती है।

3- बुद्धि- प्रत्येक कार्य में बुद्धि की आवश्यकता होती है। बुद्धि-लब्धि और कार्य कुशलता में विशेष संबंध होता है। औद्योगिक क्षेत्र में कार्य करने वालों ने यह पाया है कि कार्य संतोष और बुद्धि में एक घनिष्ठ संबंध होता है।

4- आकांक्षा स्तर- कर्मचारी के असमायोजन और असंतोष का कारण उसका आकांक्षा स्तर है। अधिक आकांक्षा-स्तर के लोगों में कार्य-संतोष की मात्रा कम तथा जिनमें आकांक्षा स्तर सीमित था उनमें कार्य के प्रति रुचि थी व अपने कार्य से संतुष्ट थे।

5- शिक्षा- जो कर्मचारी अधिक शिक्षित होते हैं उनमें कार्य-संतोष की मात्रा अधिक होती है।

6- व्यक्तित्व- व्यक्ति की समग्रता का आभास उसके व्यक्तित्व से होता है। मानसिक प्रक्रियाओं का मूल्यांकन व्यक्तित्व के अध्ययन के बिना असंभव है। जो व्यक्ति व्यवहार में आसामान्य होते हैं, वे अपने से तथा अपने कार्य से असंतुष्ट रहते है। अत: व्यक्तित्व का कार्य-संतोष पर प्रभाव पड़ता है।

7- समायोजन- व्यक्ति में समायोजन क्षमता अधिक से अधिक होना आवश्यक है। जो कर्मचारी कार्य, सहयोगियों, मालिकों तथा प्रबंधकों के साथ समायोजन स्थापित रखने में जितने अधिक समर्थ होते हैं, वे उतने ही अधिक संतुष्ट रहते है।

8- पारिवारिक उत्तरदायित्व- जिन कर्मचारियों पर पारिवारिक भार अर्थात आश्रितों की संख्या अधिक होगी उनमें कार्य असंतोष की भावना अधिक रहती है।

2. कार्य संबंधिकारक- इसके अंतर्गत कार्य की प्रगति, कारखानों की रचना, भौगोलिक दशाएँ तथा व्यावसायिक प्रतिष्ठा, ये चार महत्वपूर्ण पक्ष आते है जो इस प्रकार है-

(i) कार्य की प्रकृति-

एक सा कार्य लगातार करते रहने से थकान तथा कार्य में विविधता लाई जाए तो कार्य-संतोष की मात्रा बढ़ती है। अर्थात कार्य की प्रकृति को बदलते रहना चाहिए।

(ii) कारखाने की रचना-

बड़े कारखाने के कर्मचारियों की अपेक्षा छोटे कारखानें में सुविधाएँ तथा अवसर अधिक मिलते है। वे एक-दूसरे की मनोवृत्ति को आपस में समझ सकते हैं। कर्मचारी व प्रबंधक एक-दूसरे की मनोवृत्ति को आपस में समझ सकते हैं। कर्मचारी व प्रबंधक एक-दूसरे को समझ सकते हैं। अत: हम कह सकते है कि बड़े कारखाने की अपेक्षा छोटे कारखाने में कार्य करने वाले कर्मचारी का कार्य-संतोष अधिक होगा।

(iii) भौगोलिक दाशाएँ-

भौगोलिक दशाएँ भी कार्य-संतोष को प्रभावित करती है। बड़े-बड़े औद्योगिक शहरों तथा छोटे शहरों में कार्य करनेवाले कर्मचारियों को मनोवैज्ञानिक वातावरण सही मिलता है। तो वे अपने कार्य से संतुष्ट रहते है।

(iv) व्यवसायिक प्रतिष्ठा-

कर्मचारी प्रतिष्ठा मूल्य कार्यों के प्रति अधिक संतोष व्यक्त करते हैं। जिस कार्य की सामाजिक प्रतिष्ठा जितनी अधिक होगी, कर्मचारी उसे उतना ही अधिक पसंद करते हैं।

3. प्रबंधकों से संबंधितकारक-

इसके अंतर्गत वेतन, पदोन्नति, सहकर्मी, उत्तरदायित्व तथा सुरक्षा आदि अनेक महत्वपूर्ण पक्ष आते हैं।

1- वेतन - वेतन कार्य-संतोष के लिए प्रधान कारक होता है। अधिक वेतन पाने वाले कर्मचारियों में कार्य संतोष अधिक पाया जाता है अपेक्षाकृत कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों को चाहे उन्हें अन्य सुविधाएँ जैसे- चिकित्सा, पेंशन, रहने का मकान, बच्चों की शिक्षा की सुविधा, भविष्य की गारंटी। लेकिन उन्हें अधिक वेतन से ही संतोष प्राप्त होता है।

2- पदोन्नति- पदोन्नति के पर्याप्त अवसर मिलने पर कर्मचारी में कार्य संतोष की अनुभूति अधिक होगी। वेतन तथा भविष्य कर्मचारी के संतोष की मुख्य रीढ़ है। जहां पदोन्नति का अवसर न मिले वहाँ के कर्मचारी का मनोबल कम होता जाता है।

3- सहकर्मी की प्रकृति- सहकर्मी की प्रकृति का भी कार्य संतोष पर प्रभाव पड़ता है। कई बार मानसिक तनाव से कार्य संतोष प्रभावित होता है। जिस विभाग में व्यक्ति नौकरी करता है

वहाँ के लोगो के साथ उसके से संबंध है उसका सीधा प्रभाव व्यक्ति के कार्य प्रणाली पर पड़ता है और कार्य-असंतोष में बदल जाता है।

4- उत्तरदायित्व की भावना- वॉटसन ने एक अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला कि जिन कर्मचारियों को जितने कम उत्तरदायित्व का कार्य दिया गया वे उतने ही अधिक मात्रा में अपने-अपने कार्य से असंतुष्ट थे, जबकि वे कर्मचारी जिन्हें उत्तरदायित्व का भार सबसे अधिक सौपा गया था, अपने कार्य से अधिक संतुष्ट थे। अत: यह देखा गया कि उत्तरदायित्व एक प्रकार की प्रवृति को बल प्रदान करता है जो मनोबल के लिए प्रेरक का कार्य करती है। संतोष की भावना कर्मचारी के कार्य के प्रति सक्रिय रखती है और यही सक्रियता कार्य संतोष होती है।

14.12 सारांश (Summary)

कार्य-संतोष कर्मचारी की उन अभिवृतियों का परिणाम है जिन्हें वह अपने कार्य तथा व्यवसाय से सम्बन्धित अनेक कारणों एवं सामान्य जीवन के प्रति बनाए रखता हो। जो कर्मचारी अपने कार्य से संतुष्ट है, वे स्वस्थ मानसिक संतुलन रखते हैं।

14.13 बोध-प्रश्न

1- औद्योगिक मनोबल किसे कहते है? इसकी कसौटियों की विवेचना करे।

2- औद्योगिक मनोबल तथा कार्य संतुष्टि में अंतर बताइये। उद्योग में मनोबल के महत्व पर प्रकाश डाले।

3- औद्योगिक मनोबल के अध्ययन की विधियों की विवेचना करे।

4- सोषियोग्राम का सविस्तार वर्णन कीजिए।

5- कार्य-संतोष को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

14.14 संदर्भ सूची

- ओझा आर.के., औद्योगिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2, पेज नं. 350-361
- सुलेमान मुहम्मद और चौधरी विनय कुमार, आधुनिक संठानात्मक मनोविज्ञान, मोतिलाल बनारसी दास, दिल्ली पेज नं. 128-152, 202-230.
- चौबे सरयू प्रसाद, औद्योगिक मनोविज्ञान के मूल तत्व, कॉनसेप्ट पब्लिषिंग कंपनी, नई दिल्ली, पेज नं. 130-139, 263-272।
- Ghosh P.K. & Ghorpade, Industrial Psychology. Himalaya Publishing House, Delhi, page No. 330-358, 359-360.
- Harrell, Industrial Psychology, Oxford & IBM publishing Co., Page No. 258, 281.

इकाई-15

विज्ञापन (Advertisement)

इकाई की संरचना

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3 विज्ञापन का अर्थ और महत्त्व

15.4 विज्ञापन और स्मृति

15.5 विज्ञापन और अभिवृत्ति या मनोवृत्ति

15.6 विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक पक्ष

15.7 सारांश

15.8 बोध प्रश्न

15.9 संदर्भसूची

15.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- विज्ञापन का अर्थ व परिभाषा समझ सकेंगे।
- विज्ञापन के महत्त्व को समझ सकेगे।
- विज्ञापन और स्मृति की जानकारी ।
- विज्ञापन और मनोवृत्ति को समझना।
- विज्ञापन का मनोवैज्ञानिक पक्ष समझना ।

15.1 प्रस्तावना

औद्योगिक विकास से उत्पादन की मात्रा बढ़ती है। जिसके कारण उद्योगपति उत्पादित वस्तु की बिक्री के लिए विभिन्न प्रकार के साधन जुटाता है। उपभोक्ता की जानकारी हेतु और उत्पादित सामग्री को बेचने के लिए वह दो साधनों का उपयोग करता है - विज्ञापन और प्रचार । इस प्रकार औद्योगिक प्रगति के दृष्टिकोण से आधुनिक यगु विज्ञापन तथा प्रचार का युग है। वर्तमान में विज्ञापन और प्रचार औद्योगिक उन्नति की रीढ़ बन गये हैं। विज्ञापन को प्रभावशाली और सफल बनाने के लिए उद्योगशाला - विशेषज्ञ मनोवैज्ञानिक विधियों को प्रयोग करने लगे है। आज विज्ञापन की सफलता मनोविज्ञान पर निर्भर करती है। विज्ञापन जितना अधिक मनोवैज्ञानिक होगा, उतना ही अधिक उपभोक्ता को माल खरीदने के लिए विवश करेगा और वह उपभोक्ता की इच्छानुसार सोचने लगेगा।

15.3 विज्ञापन का अर्थ और महत्त्व

विज्ञापन एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा वस्तु या व्यक्ति के विषय में सूचना दी जाती है। विज्ञापन का तात्पर्य उस कार्यविधि से है जिसके द्वारा सक्षम उपभोक्ताओं के ध्यान को किसी उत्पादन के प्रति आर्कषित करने उनमें इस उत्पादन के प्रति रूचि एवं आवश्यकता उत्पन्न करने तथा उन्हें उसके क्रय के लिए प्रेरित किया जाता है।

विज्ञापन द्वारा वस्तु की विशेषता की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया जाता है, इसके महत्त्व को समझाया जाता है, बाजार में उसका अस्तित्व कायम किया जाता है और यह जानकारी करा दी जाती है कि अमुक वस्तु बाजार में उपलब्ध है या नहीं तथा उसकी कितनी कीमत देनी है। इस प्रकार विज्ञापन एक दृष्टि में प्रचार का प्रारंभिक रूप ही है। सीगेल (Siegel) ने विज्ञापन को इस प्रकार परिभाषित किया है ''विज्ञापन प्राकक्रय का वह प्रकार है जिसमें खरीददारों को किसी उत्पादन या सेवा के अस्तित्व एवं उनकी विशिष्टताओं के संबंधमें सूची त किया जाता है।''

हसबैण्ड (Husband) ने विज्ञापन की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है -

"Advertisement may be defined as publicity which calls attention to the existence and merits of certain goods and services"

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि विज्ञापन एक सम्मोहनकारी साधन है जिसका मुख्य उद्देश्य उपभोक्ता को वस्तु की आवश्यकता को अनुभव करा देना है, जिसके कारण उसमें वस्तु के खरीदने के लिए रूचि उत्पन्न हो जाती है।

विज्ञापन का महत्त्व अथवा आवश्यकता

उत्पादित वस्तु की बिक्री के लिए जहाँ उत्पादनकर्ता को विज्ञापन की आवश्यकता हैं वहाँ उपभोक्ता को भी यह एक बहुत बड़ी सहायता पहुँचाता है। विज्ञापन द्वारा उपभोक्ता वस्तु खरीदने के लिए शीघ्र निर्णय कर लेता है। वह वस्तु से संबंधितजानकारी घर बैठे ही प्राप्त कर लेता है। विज्ञापन के अभाव में उपभोक्ता वस्तु की विशेषताओं, उपयोगिता और मूल्य से अपरिचित रह जाता है। इस प्रकार, एक ओर निर्माता और उपभोक्ता के सह-संबंधके लिए विज्ञापन की आवश्यकता पड़ती है तो दूसरी और औद्योगिक विषम परिस्थितियाँ विज्ञापन के लिए उत्पादनकर्ता को विवश करती है। विज्ञापन के महत्त्व या आवश्यकता को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. **प्रतियोगिता (Competition)**

   औद्योगीकरण ने उत्पादन क्षमता इतनी बढ़ा दी है कि यदि वस्तु की बिक्री कुछ घंटों के लिए रूक जाए तो उत्पादनकर्ता को लाखों रूपये की हानि हो जाती है। एक वस्तु का उत्पादन सैकड़ो उत्पादनकर्ता करते हैं और प्रत्येक को अपना माल बाजार में बेचना होता है। प्रत्येक उत्पादनकर्ता को एक-दूसरे से टक्कर लेनी होती है। जो प्रतियोगिता में बाजी मार लेता है। वही चमक जाता है और यह निश्चित है कि इस प्रतियोगिता में विजय प्राप्त होने के लिए विज्ञापन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2. **उत्पादक और उपभोक्ता का संपर्क (Contact Between Producer and Consumer)**

उत्पादक और उपभोक्ता प्रत्यक्ष रूप से एक-दूसरे से मिल नही सकते हैं। इसलिए उत्पादक और उपभोक्ता का एक-दूसरे से संपर्क बनाये रखने के लिए विज्ञापन एक माध्यम का काम करता है। जो कि दोनों को आपस में जोड़ता है। इस माध्यम द्वारा उत्पादक उत्पादित वस्तु की सूचना देता है और उपभोक्ता जानकारी प्राप्त करता है।

3. ग्राहक की तलाश (Searching of Consumer)

उत्पादन के बाद उत्पादक के सामने वस्तु को बेचने के लिए ग्राहक को तलाश करना सबसे बड़ी समस्या होती है। क्योंकि उत्पादक उपभोक्ता से अपना सीधा संपर्क स्थापित नहीं कर सकता और न वस्तु की आवश्यकता को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करा सकता है, इसलिए वह विज्ञापन द्वारा जनता में अपनी वस्तु का प्रचार करता है और धीरे-धीरे जनता के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी वस्तु की ओर आकर्षित करता है। आकर्षण होते ही रूचि पैदा हुई। रूचि के उत्पन्न होते ही उपभोक्ता वस्तु को खरीदने की सोचने लगता है और सोचने के बाद वह खरीदने के लिए विवश होने लगता है। जब वस्तु को उपभोक्ता खरीदने लगे तो ग्राहक की समस्या समाप्त हो जाती है।

4. उपभोक्ता को प्रेरित करना (To motivate Consumer)

प्रत्येक उत्पादक अपना माल बेचना चाहता है। विज्ञापन वह सम्मोहनकारी विधि है, जिसके द्वारा ग्राहक को आकर्षित किया जाता है। उपभोक्ता केवल आपकी ही वस्तु खरीदे इसके लिए उसे प्रेरित करना होगा। उसे यह विश्वास दिलाना होगा कि अमुक वस्तु के बिना खरीदे उसका काम पूरा नही होगा। उद्योग की उन्नति के लिए प्रेरणा और विज्ञापन दोनों का होना आवश्यक है।

5. अधिकतम विक्रय के लिए (For Maximum Sale)

विज्ञापन की उपयुक्त महत्व को देखें तो पाएँगे कि विज्ञापन का चरम् उद्देश्य है विज्ञापित वस्तु के विक्रय-ग्राफ को उच्चतम बिन्दु तक पहुँचा देना अथवा उसके विक्रय को अधिकतम बढ़ा देना।

6. कंपनी की साख को बढ़ाने के लिए (For Enhancing the Good Will of the Company)

किसी भी कंपनी या उद्योग की साख उसके उत्पादों की गुणवत्ता पर आधारित होती है और उसके आधार पर उन उत्पादों की जानकारी विज्ञापनदाता उपभोक्ताओं को देते है, उन उत्पादों के प्रति उनमें रूचि तथा आवश्यकता उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं तथा क्रय के लिए उनकी मनोवृत्ति तथा व्यवहार को अनुकूल बनाने का भी प्रयास करते है। अत: विज्ञापन की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका यह होती है कि विज्ञापित वस्तु को विक्रय को अधिक से अधिक बढ़ाकर कंपनी की साख को उपभोक्ता बाजार में बढ़ाए और दृढ़ करें।

उपयुक्त विवेचनों से यह स्पष्ट होता है कि औद्योगिक लक्ष्य को प्राप्त करने में विज्ञापन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

15.4 विज्ञापन और स्मृति

मनोविज्ञान एक व्यवहारपरक विज्ञान है। यह मानव व्यवहारों का अध्ययन विभिन्न परिस्थितियों में करता है। औद्योगिक मनोविज्ञान का संबंधउद्योग से सामान्य रूप से तथा उपभोक्ता से विशिष्ट रूप से है। अत: यहाँ मनोविज्ञान का उद्देश्य उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन करना, उससे संबद्ध आवश्यकताओं, मनोवृत्तियो, आदतों आदि की जानकारी प्राप्त करना तथा उसे एक निश्चित दिशा में संचरित एवं परिचालित करना है ताकि औद्योगिक विज्ञापन अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो सके। औद्योगिक विज्ञापन को सफल एवं प्रभावशाली बनाने में मनोविज्ञापन के साथ-साथ स्मृति और मनोवृत्ति की भूमिका भी बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। इस दिशा में मनोविज्ञान की भूमिका को विभिन्न प्रेरणात्मक कारकों (Motivational Factor) ध्यान कारको (Attention Factors) तथा भावात्मक कारकों (Affective Factors) के रूप में देखा जा सकता है।

औद्योगिक विज्ञापन को प्रभावशाली बनाने में स्मृति कारकों एक महत्वपूर्ण स्थान है। स्मृति से हमारा तात्पर्य उन कारकों से हैं जो उपभोक्ता के ध्यान को विज्ञापित उत्पाद के प्रति आकर्षित करते हैं जो इस प्रकार है -

(i) **रंग (Colour)** - अध्ययनों से पता चला है कि रंगहीन वस्तुओं की अपेक्षा रंगीन वस्तुएँ हमारा ध्यान अधिक तथा शीघ्र आकर्षित करती है और वह हमारे स्मृति में अधिक रहती है। वार्नर तथा फ्रैजेन (Warner & Franzen, 1947) के अध्ययन से पता चलता है कि नयी वस्तुओं के विज्ञापन में रंगों का महत्व अधिक है किन्तु नये उत्पादों के विज्ञापन सफेद तथा काले की अपेक्षा रंग अधिक श्रेष्ठ नही है। अत: हम कह सकते है कि रंगीन विज्ञापन हमारे स्मृति पटल पर अधिक देर तक रहते हैं।

(ii) **गति (Movement)** - स्मृति से संबंधितशोधकार्यो से पता चलता है कि स्थिर वस्तुओं की अपेक्षा गतिशील वस्तुएं हमारे ध्यान तथा स्मृति को आकर्षित अधिक करती है। यही बात औद्योगिक विज्ञापन की प्रभावशीलता पर भी लागू होती है। उदाहरणस्वरूप, हम देखते हैं कि टेलीविजन पर आने वाले गतिशील विज्ञापन अपनी गतिशीलता के आधार पर यथार्थ लगते हैं और सड़को पर लगी होर्डिंग्स पर वे ही विज्ञापन जब स्थिर रहते है तो उनसे यथार्थ का आभास नहीं होता । अर्थात् गतिशील विज्ञापन स्थिर विज्ञापन की अपेक्षा हमारा ध्यान अपनी ओर अधिक आकर्षित करते हैं अधिक दिनों तक याद रहते हैं तथा हमारे व्यवहार को भी प्रभावित करते हैं।

(iii) **आवृत्ति (Repetition)** - स्मृति के निर्धारकों में आवृत्ति का स्थान भी महत्वपूर्ण है। अध्ययनों से पता चलता है कि जिस चीज को बार-बार दुहराया जाता है वह चीज हमें जल्दी व लम्बे समय तक याद रहती है। इस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त में दो बाते उल्लेखनीय है -एक तो यह कि उत्तेजना की बारंबारता बढ़ने से याद होने की संभावना बढ़ती है तथा दूसरी यह कि अतिशिक्षण (Overlearning) की मात्रा भी बढ़ती है। यह दोनों बातें विज्ञापन के संदर्भ में सही है। इसीलिए सफल विज्ञापनदाता किसी उत्पाद के संबंधमें उपभोक्ताओं के समक्ष विज्ञापन को बार-बार दोहराता है। इन दिनों टेलीविजन में यह सुविधा बढ़ा दी है कि एक ही विज्ञापन थोड़े ही समय में कई बार दर्शकों के समाने आ जाता है। फलत: हम चाहे या न

चाहे वह विज्ञापन हमें याद हो जाता है । ग्रीबर्ग तथा गारफिंकल (Greeberg & Garfinkle) का कहना है कि विज्ञापन को प्रभावशाली बनाने की यह विधि उस परिस्थिति में सबसे अधिक उपयोगी होती है जब विज्ञापित वस्तु में उपभोक्ता की रूचिका स्तर नीचा होता है।

(iv) **नवीनता (Novelty)** - स्मृति के निर्धारकों में नवीनता भी एक है। अध्ययनों से पता चलता है कि अन्य बातें समान रहने पर भी पुरानी तथा परिचित वस्तुओं की अपेक्षा नयी तथा भिन्न वस्तुओं हमें अधिक आकर्षित करती है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य औद्योगिक विज्ञापन की प्रभावशीलता में सही है। एक सफल विज्ञापनदाता इस प्रयास में लगा रहता है कि अपने विज्ञापन को वह नये से नये रूप में प्रस्तुत कर सके। विज्ञापित वस्तुओं के आकार, आवृत्ति, रंग के साथ-साथ स्लोगन को भी थोड़े-थोड़े समय के अन्तराल पर बदलते हुए अपने विज्ञापन में नवीनता लाने का प्रयास करता रहता है ताकि उपभोक्ताओं की रूचि उस विज्ञापित वस्तु में कम न होने लग जाए। सीगेल ने इस संदर्भ में कहा है कि एक सफल विज्ञापनदाता न केवल इस बात पर बल देता है कि उसका विज्ञापन नवीन अथवा भिन्न हो बल्कि विज्ञापन के नये तरीकों का भी प्रयोग करता है ताकि वह उसके स्मृति पटल पर अधिक समय तक रहे।

(v) **स्थिति (Location)**-वस्तु की स्थिति का ध्यान मूल्य भी अलग-अलग होता है। अध्ययनों से पता चलता है कि दाहिनी ओर रखी गयी वस्तु की अपेक्षा बायीं ओर रखी गयी वस्तु अधिक आकर्षित करती है। अखबार पढ़ने वालों की एक बड़ी संख्या का सर्वेक्षण करने पर यह पाया गया कि वे पहले अखबार के प्रथम पृष्ठ के ऊपर वाला बायाँ भाग देखते हैं फिर दाहिना, फिर नीचे का दाहिना भाग और अन्य में नीचे का बायाँ । अत: उत्पादित सामग्रियों का विज्ञापन देते समय विज्ञापनदाता को इन सारी बातों को ध्यान में रखता होता है कि उनके द्वारा दिया गया विज्ञापन प्रभावशाली ध्यान में रखना होता है कि उनके द्वारा दिया गया विज्ञापन प्रभावशाली व आधिक समय तक स्मृति में रहे।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञापनदाता अपने विज्ञापन की प्रभावशीलता को बनाए रखे ताकि उपभोक्ता को उस वस्तु का अधिकाधिक समय तक याद रहे यानि उसके स्मृति पटल पर वह चलचित्र चलता रहें ताकि वह अधिक समय तक उपभोक्ता की उस वस्तु के प्रति रूचि बने रहे।

15.5 विज्ञापन और मनोवृत्ति (Advertisement and Attitude)

मानव व्यवहार का एक प्रमुख निर्धारक मनोवृत्ति है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के व्यवहार अलग-अलग हो सकते हैं । इसलिए विज्ञापन को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उपभोक्ताओं की वर्तमान मनोवृत्ति की जानकारी प्राप्त करने के बाद ही किसी उत्पादक का विज्ञापन दिया जाए। एक सफल विज्ञापनदाता वह है जो समुचित उपायों के सहारे उपभोक्ताओं की वर्तमान मनोवृत्ति की जानकारी प्राप्त करता है तथ वांछित दिशा में उसे परिवर्तित करता है और उत्पाद विशेष के प्रति उसे

आकर्षित करता है। अत: औद्योगिक विज्ञापन को प्रभावशाली बनाने का एक उपाय यह है कि उपभोक्ताओं की वर्तमान मनोवृत्ति की जानकारी प्राप्त की जाए, उनमें परिवर्तन लाया जाए तथा उत्पादन विशेष के प्रति उसे अनुकूल बनाया जाए।

पिछले कुछ वर्षो से विज्ञापन के क्षेत्र में प्रेरकों की सूची के माध्यम से प्रेरणा का उपागम होता जा रहा है। ऐसा उपागम कोई अधिक महत्त्व नहीं रखता । व्यक्ति केवल एक प्रेरक के प्रति कभी प्रतिक्रिया नहीं करता । वह उस समय क्रियाशील अनेक प्रेरकों में से चयन करता है। एलैन (C.N. Allen) ने विज्ञापनदाताओं के नामार्थ प्रेरकों की एक सूची प्रस्तुत की है। परन्तु व्यक्ति में कुछ भिन्नताएँ होती है, इसलिए ऐसी सूची सर्वमान्य नहीं होती है । पोलिट्ज (Politz) के अनुसार उपभाक्ताओं के प्रेरकों को ज्ञात करना अनुसंधान की समस्या नहीं है, वरन् उन प्रेरकों को ज्ञात करना है जो नियंत्रित किये जा सके और समान रूप से क्रय को प्रभावित भी कर सकें। यद्यपि विज्ञापन में मनोवृत्ति का बहुत महत्त्व है, फिर भी अन्य मनोवैज्ञानिक प्रत्यय इस क्षेत्र में अपना स्थान रखते हैं ।

मनोविज्ञान का एक प्रत्यय जो विज्ञापन में प्रमुख है वह मनोवृत्ति है। विज्ञापन की कुछ विशेषताएँ जैसे- उद्दीपक की तीव्रता, आकार, रंग, गति, आवृत्ति और नवीनता आदि ऐसे कारक है जो आकर्षित करते हैं। एक अच्छा विज्ञापन वही है जो ध्यान आकर्षित करने के लिए सभी तकनीकी साधनों का अधिक से अधिक प्रयोग करता है ।

विज्ञापन में दूसरा लाभदायक मनोवैज्ञानिक प्रत्यय रूचि और अभिवृत्ति है। विज्ञापन उसी समय प्रभावशाली है, जबकि उपभोक्ता विज्ञापन निकलने से पूर्व ही उस वस्तु में अपनी रूचि रखता हो। जो व्यक्ति पुस्तक खरीदना चाहता है, उसकी रूचि पुस्तक के विज्ञापन में अधिक होगी, अपेक्षाकृत उस व्यक्ति के जो पुस्तक खरीदना नहीं चाहता है ।

विज्ञापन में अनुसंधान पर बल दिये जाने से विज्ञापनदाता अपनी वस्तु के विषय में अधिक से अधिक जानने का प्रयत्न करते हैं। इससे उपभोक्ता-संबंधीअनुसंधान का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। इससे उपभोक्ता के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के विषय में सूचनाएँ कम व्यय में विज्ञापनदाता को अधिक व्यक्तियों तक पहुँचाने में सहायक होती है। विज्ञापन के क्षेत्र के मनोविज्ञान का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान उसकी वैज्ञानिक पद्धति है, जिसके द्वारा पक्षपातरहित तथ्यों पर आधारित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। इस क्षेत्र में अनुसंधान व मनोवृत्ति ने विज्ञापन को और अधिक प्रभावशाली बनाने में सहायता दी है।

मानव-स्वभाव है कि वह कष्टदायक परिस्थिति से बचना चाहता है। यदि कोई कष्टदायक परिस्थिति आ भी जाए तो वह उसे सुखदायक या आनन्द दायक बनाने का प्रयत्न करता है। अत: विज्ञापन में किसी कष्टदायक स्थिति को स्थान न दिया जाए और एक आनन्ददायक विषय वस्तु को दिखाया या प्रस्तुत किया जाए । प्राय: विनोदपूर्ण बातें, कविताएँ तथा प्रदर्शन योग्य वस्तुओं का समादेश करना विज्ञापन को अधिक उपयोगी बना देता है। केन्द्रीय विषय-सामग्री ही विज्ञापन का महत्त्वपूर्ण अंश है। विज्ञापन का उद्देश उपभोक्ता में विज्ञापित वस्तु को इच्छा पैदा करना है और उसे अभिप्रेरित करना है कि वह उसी विज्ञापित वस्तु को खरीदें । व्यक्ति जिस वस्तु की इच्छा करता है वह उसे पूरा करने का प्रयत्न भी करता है। व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति के अनुसार वस्तुओं में रूचि रखता है वह उसी के अनुसार विज्ञापित वस्तुओं को पसंद करता है और खरीदता है। इस प्रकार इससे उत्पादक और उपभोक्ता दोनों को लाभ होता है ।

15.6 विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक पक्ष (Psychological Apeal of advertisement)

विज्ञापन के कई मनोवैज्ञानिक पक्ष उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित करते हैं। विज्ञापन के कई पक्ष होते हैं, उसकी सफलता या असफलता कुछ महत्त्वपूर्ण आधारों पर निर्भर करती है। सामान्य बोलचाल में इन्हें विज्ञापन के महत्त्वपूर्ण अंग कह सकते हैं। इस प्रकार की दशाएँ, तत्व तथा अंग विज्ञापन के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं जो इस प्रकार है-

(1) **विज्ञापन का शीर्षक (Headline of Advertisement)** विज्ञापन में शीर्षक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्यानाकर्षण के लिए शीर्षक का होना अत्यन्त आवश्यक है। शीर्षक इस प्रकार का होना चाहिए कि जन-साधारण को प्रभावित कर सके और स्मृति-पटल पर अधिक समय तक अंकित रह सके । यह शीर्षक विज्ञापन में उतना ही महत्त्व रखता है जितना पुस्तक के शीर्षक का महत्त्व होता है । पुस्तक के नाम से पुस्तक का केन्द्रीय विचार या सार मस्तिष्क में आ जाता है। इसी प्रकार विज्ञापन के शीर्षक से भी वस्तु या सेवा की विशेषता का सार रूप में बोध हो जाता है। शीर्षक का चयन करते समय विज्ञापन का उद्देश्य जन-साधारण की आवश्यकता, वस्तु की प्रकृति, शब्दों और वाक्यों का विस्तार, रंग और टाईप आदि का विशेष ध्यान रखना चाहिए। गिलम (Glim) नामक विद्वान ने शीर्ष को चार भागों में बांटा है-

(1) परिचय शीर्षक (Label Headlines))

(2)संदेश शीर्षक (Message Headlines)

(3) उत्तेजक शीर्षक (Provocative Headlines))

(4) प्रश्न शीर्षक (Question Headlines)

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार 5-6 शब्दों के शीर्षक को पाठक ज्यादा सरलता से पढ़ता है तथा वह ज्यादा ध्यान आकर्षित करते हैं। कुछ लोग लंबे शीर्षक को अच्छा बताते हैं, क्योंकि उसमें विज्ञापन-संबंधी और अधिक सार आ जाता है । कुछ लोगों की दृष्टि से किसी नयी वस्तु के विज्ञापन में केवल एक सूचना पर्याप्त होती है परन्तु परिचित वस्तु के विज्ञापन में वस्तु की मुख्य विशेषताओं की चर्चा होना आवश्यक है।

(2) **दृष्टान्त चित्र (Illustrations)**- विज्ञापन में चित्रों का प्रयोग करने से जन-साधारण का ध्यान शीघ्र ही खींच जाता है। इस प्रकार से चित्रों को स्वत: ध्यान आकर्षित करने वाले उद्दीपक कह सकते हैं। आधुनिक विज्ञापन में चित्रों को महत्त्वपूर्ण माना है । चित्र के द्वारा विज्ञापित वस्तु की स्मृति को स्थायी बनाया जा सकता है और ग्राहक के मन में रूचि उत्पन्न की जा सकती है। चित्र किस प्रकार का हो, यह विज्ञापन की प्रकृति पर निर्भर करता है । उदाहरण के लिए, साबुन के विज्ञापन हेतु सुन्दर युवती का चित्र, खेत में पानी देने के लिए ऑयल इंजन के विज्ञापन हेतु एक गरीब, फटी धोती और मुस्कराते किसान का चित्र, सेना की भर्ती के लिए एक जवान सैनिक का चित्र और सिनेमा के प्रचार हेतु हीरो एवं हीरोईन के चित्र होने चाहिए।

(3) **विज्ञापन का रंग (The Colour of the advertisement)-** विज्ञापन को आकर्षक बनाने के लिए अनेक प्रकार के रंगों की आवश्यकता होती है। प्राय: सफेद और काले विज्ञापनों की अपेक्षा रंगीन विज्ञापन ग्राहकों को जल्दी आकर्षित करते हैं। प्रयोगों से पता चला है कि रंगीन विज्ञापन हमारे मन में सादे विज्ञापन की अपेक्षा लंबे समय तक छाये रहते हैं। यही कारण है कि आजकल विज्ञापनों को रंगीन बनाया जाता है।

विज्ञापन में रंगों का प्रयोग करते समय रंगों पर ध्यान देना आवश्यक है। रंग आकर्षक, वस्तु के गुणों के अनुरूप और पृष्ठभूमि के रंग के विरोधी होने चाहिए । विशिष्ट परिस्थिति, उपभोक्ता समूह और उत्पादन के अनुसार रंगों का चयन आवश्यक है। व्यक्ति-समूह की आयु, लिंग, वर्ग को देखते हुए उसकी मनोवृत्ति के अनुकूल उपयुक्त रंगों का प्रयोग करना ठीक रहता है। इस संबंधमें चित्रकार जो विविध रंगों का प्रयोग करता है, सही परामर्श दे सकता है। ऐसे में उसी को यह काम सौंपना चाहिए । कहाँ हल्का रंग करना है, कहाँ गहरा रंग दर्शाया जाए और कहाँ समान या विरोधी रंग लगाने हैं। इस कौशल का उपयोग में लाने से ही रंगीन विज्ञापन सार्थक और आकर्षक बन सकता है।

विज्ञापन में प्रयुक्त रंग उपभोक्ताओं की भावनाओं को बहुत प्रभावित करता है। लोगों को रूचि को ध्यान में रखते हुए रंगों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। उत्पादित वस्तु के गुणों को ध्यान में रखते हुए रंगों का प्रयोग करना ठीक रहता है। रंगों से विज्ञापन की वस्तु के गुणों और प्रभाव में वृद्धि हो जाती है। रंग विज्ञापन के अर्थ और वस्तु की उपयोगिता को बढ़ाने में सहायक होता है। इससे दर्शक उस वस्तु को पाने की इच्छा करने लगता है और उसे खरीदना चाहता है।

(4) **व्यापार-चिन्ह तथा व्यापार-नाम (Trade Mark and Trade Name)-**

विज्ञापन को प्रभावशाली बनाने के लिए आजकल व्यापार चिन्ह तथा व्यापार नाम का प्रयोग किया जाने लगा है। उपभोक्ता व्यापार-चिन्ह तथा व्यापार नाम की परन्तु खरीदना पसंद करता है। व्यापार चिन्ह वस्तु बनाने वाली कंपनी, वस्तु की गुणवत्ता, वस्तु के स्वरूप और मूल्य का प्रतीक होता है। व्यापार चिन्ह के अभाव में वस्तु पर विश्वास नहीं किया जा सकता । व्यापार - चिन्ह वस्तु बनाने वाली कंपनी द्वारा निर्धारित किया जाता है और सरकार से उसे पंजीकृत कराया जाता है । यह चिन्ह किसी वस्तु, पक्षी, फूल, पेड़, प्राणी शब्द या अक्षरों के रूप में विशिष्ट शैली में व्यक्त किया जाता है । कभी-कभी वस्तु की बिक्री व्यापार-चिन्ह के आधार पर न होकर विक्रेता को कुशलता पर निर्भर करती है ।

व्यापार चिन्ह स्पष्ट, अर्थ की दृष्टि से स्पष्ट, सरल, संक्षिप्त, उपयुक्त और आकर्षक होना चाहिए । एक-सी वस्तुएँ बहुत से उद्योग बनाते हैं, परन्तु व्यापार चिन्ह द्वारा ही उनमें अंतर जाना जाता है कि कौन वस्तु किस उद्योग द्वारा बनाई गई है। व्यापार चिन्ह रखा जाए जिसे व्यापार चिन्ह के रूप में अपनाया जा सके । यह निश्चित करने में अनुभवी व्यापारियों का परामर्श लेना आवश्यक है। इससे उत्पादन को बाजार में लाने के लिए आधार बन जाता है ।

यदि व्यापार चिन्ह उपयुक्त नहीं होता तो वह उत्पादन की बिक्री में बाधक हो जाता है। यदि व्यापार चिन्ह दूसरी कंपनियो के माल से मिलता-जुलता हुआ तो यह माना जा सकता है कि, यह माल, प्रचलित माल की नकल है। जब कोई अच्छी वस्तु लोकप्रिय हो जाती है, तो

उसका व्यापार-चिन्ह भी लोकप्रिय हो जाता है और उस वस्तु का मूल्य भी बढ़ा दिया जाता है। ऐसे में उपभोक्ता इस मनोवृत्ति का विरोध करते हैं और उस माल को खरीदना कम कर देते हैं।

(5) **लिखित वस्तु (Tent of Copy)**-विज्ञापन के शीर्षक के नीचे विज्ञापित वस्तु की उपयोगिता को समझाने के लिए अक्षरों की सहायता से जो सूचना दी जाती है, उसे लिखित वस्तु कहते हैं। लिखित वस्तु अप्रत्यक्ष और संक्षिप्त होनी चाहिए। इसमें पांच विशेषताओं पर ध्यान देना चाहिए-

(1) अप्रत्यक्ष

(2) संक्षिप्त

(3) रोचक

(4) प्रेरणादायक

(5) विश्वासपूर्ण

(6) **विज्ञापन का आकार-(Size of Advertisement)** किसी विज्ञापन की और व्यक्ति को आकर्षित करने में विज्ञापन का आकार बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। प्रारम्भ में छोटे आकार वाले विज्ञापन उपयोग में लाए जाते थे। परन्तु अब बड़े आकार के विज्ञापन-साधन प्रयुक्त किए जाते हैं। चौराहों पर लगे बड़े-बड़े पोस्टर्स हमारा ध्यान स्वत: ही अपनी और आकर्षित कर लेते हें। मनोवैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला है कि एक पृष्ठ पर बना विज्ञापन चित्र उसके चौथाई पृष्ठ पर बने विज्ञापन से ढ़ाई गुना अधिक आकर्षक और प्रभावशाली होता है। अत: विज्ञापन का आकार बढ़ने के साथ-साथ उसका आकर्षण और प्रभावशीलता अधिक बढ़ती जाती है। इसलिए सूचनाएँ, चित्र, रेखाचित्र, पोस्टर बड़े धरातल पर देने चाहिए।

(7) **विज्ञापन देने की बारम्बारता (Frequency of Appearance) -**

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि विज्ञापन के आकार की अपेक्षा विज्ञापन को बार-बार दिखाना चाहिए, जिससे उपभोक्ता का ध्यान अधिक आकर्षित होता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन से भी इस बात का पता चला है। इतना निश्चित है कि यदि विज्ञापन का केन्द्रीय बिन्दु अधिक प्रभावशाली है तो विज्ञापन की बारम्बारता भी प्रभावशाली हो जाती है।

(8) **विज्ञापन की स्थिति (Position of Advertisement)**- जो विज्ञापन मुख पृष्ठ पर या पत्रिका के अन्तिम पृष्ठ पर होते हैं और पृष्ठ के ऊपरी, दाहिने या बाएँ भाग में होते हैं, वे ध्यान को शीध्र आकर्षित करते हैं। बेनर महोदय का विचार है कि विज्ञापन को महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए तीसरा, पांचवा, आठवां और बारहवां पृष्ठ सबसे उपयुक्त होते हैं।

(9) **विज्ञापन का समय (Time of Advertisement) -** विज्ञापन किस समय दिखाया जाता है, इससे भी विज्ञापन का प्रभाव बढ़ जाता है परीक्षण से पता चला है कि अक्टूबर माह तथा जनवरी से मार्च तक का समय विज्ञापन दिखाने की दृष्टि से अधिक अच्छे होते हैं। यदि विज्ञापन माह के दूसरे सप्ताह में तथा तीसरे सप्ताह में दिखाना अधिक प्रभावशाली होता है पहले और चौथे सप्ताह में विज्ञापन दिखाना कम प्रभावशाली होता है। दिन में प्रात:काल

स्त्रियों को विज्ञापन दिखाने का और शाम का समय व्यापारी, वकील तथा डॉक्टर को विज्ञापन दिखाने का अच्छा समय माना जाता है। इस प्रकार कब, कैसा और किसे विज्ञापन दिखाना है यह निश्चित कर लेना बहुत आवश्यक है।

(10) नारा **(Slogan) -** विज्ञापन पर विज्ञापन संबंधी नारा महत्त्वपूर्ण है। परन्तु नारे का स्थान सीमित ही होता है। यदि इसे अधिक स्थान दिया जाता है तो उस नारे का उपभोक्ता पर असत्यात्मक (Positive) प्रभाव नहीं पड़ता। अत: नारे का उपयोग सोच-समझकर करना चाहिए। नारा ऐसा विशिष्ट और अनोखा हो जो उपभोक्ता को शीध्र प्रभावित करें और संबंधितवस्तु, कम्पनी और उसके व्यापार-चिन्ह की और इंगित करें। नारा ऐसा सरल और आनन्ददायक हो कि उपभोक्ता उसकी और शीघ्र आकर्षित हो जाए और वह वस्तु के प्रति जानकारी पाने के लिए कोतूहल दर्शाने लगे। भद्दे (Vulgar) प्रचलित और आरोपित नारे कभी भी उपयोग सिद्ध नहीं होते हैं अत: नारे आकर्षक पूर्वक होना आवश्यक है। इससे वस्तु के प्रति रूचि उत्पन्न की जाती है।

(11) कूपन **(Coupon)** - आधुनिक विज्ञापनों में कूपन का अधिकाधिक उपयोग होने लगा है और इसे अधिक महत्व दिया जाने लगा है। अध्ययनों से पता चलता है कि साधारण विज्ञापन की अपेक्षा कूपन वाला विज्ञापन दस गुणा अधिक प्रभाव छोड़ता है। कूपन बड़ी सावधानी से तैयार करना चाहिए। उसमें उपभोक्ता को हस्ताक्षर करने के लिए तथा विज्ञापनकर्ता का पता लिखने के लिए तथा कोई छोटा सा चित्रात्मक दृष्टान्त या निर्देशन देने के लिए पर्याप्त स्थान होना चाहिए।

अत: हम कह सकते हैं कि विज्ञापन के लिए बहुत से मनोवैज्ञानिक साधन उपभोक्ता को आकर्षित करने में उपयोग में लाये जाते हैं। इसके लिए बौद्धिक, सांस्कृतिक, वित्तीय तथा लोगों की सामान्य रूचियों को ध्यान में रखते हुए चुनाव करना चाहिए। जिससे अधिक से अधिक मनोवृत्तियों के लोग उससे प्रभावित हो सके। प्राय: विज्ञापनों में साधन के रूप में वे ही वस्तुएँ प्रयुक्त की जाती है, जिनमें जनता अधिक रूचि लेती है और विज्ञापन सफल बनते हैं।

15.7 सारांश

1. विज्ञापन का अर्थ-

उपभोक्तओं को किसी उत्पादित माल की विशेषताओं तथा उपयोगिता से इस प्रकार परिचित कराना कि उपभोक्ता उसे खरीदना आवश्यक समझे।

विज्ञापन की महत्ता-

उत्पादित वस्तु की बिक्री के लिए विज्ञापन की आवश्यकता पड़ती है।

प्रतियोगिता-

उत्पादनकर्ताओं में अपनी वस्तु बेचने के लिए प्रतियोगिता रहती है। प्रत्येक उत्पादक यह चाहता है कि उसकी वस्तु बाजार में सबसे अधिक बिके। इसके लिए विज्ञापन का सहारा लिया जाता है।

उत्पादक ओर उपभोक्ता से सम्पर्क-

उत्पादक तो एक निश्चित स्थान पर अपना उत्पादन करता है और उपभोक्ता देश के प्रत्येक भाग में रहते हैं, दोनों के सम्पर्क हेतु विज्ञापन की आवश्यकता होती है।

ग्राहक की तलाश- विज्ञापन द्वारा व्यक्तियों को ग्राहक बनाया जाता है।

उपभोक्ता को प्रेरित करना-विज्ञापन द्वारा उपभोक्ता को माल खरीदने के लिए प्रेरणा दी जाती है।

विज्ञापन और स्मृति तथा अभिवृत्ति की सहायता से ऐसे विज्ञापन दिखाए जाते हैं जो उपभोक्ता के मस्तिष्क पटल पर अधिक समय तक रहे और उनमें रूचि पैदा हो जिससे उपभोक्ता वह वस्तु खरीदें जिससे विज्ञापन के द्वारा दोनों को ही अधिक मुनाफा होता है।

विज्ञापन की सफलता-उसके मनोवैज्ञानिक पक्ष की सहायता पर निर्भर करती है। उपभोक्ता कई विज्ञापनों से आकर्षित होता है। महत्वपूर्ण तत्व इस प्रकार है-

विज्ञापन का शीर्षक दृष्टान्त-चित्र, विज्ञापन का रंग, व्यापार चिन्ह तथा व्यापार नाम, लिखित वस्तु, विज्ञापन का आकार, विज्ञापन देने की बारम्बारता, विज्ञापन की स्थिति, विज्ञापन का समय, नारा, कूपन।

विज्ञापन मे अनुसंधान पर बल दिये जाने से विज्ञापनदाता अपनी वस्तु के विषय में अधिक से अधिक जानने का प्रयत्न करते हैं। इससे उपभोक्ता-सबन्धी अनुसंधान का क्षेत्र विस्तृत हो गया है।

15.8 बोध प्रश्न

1. ''आधुनिक युग में'' औद्योगिक उन्नति विज्ञापन पर आधारित है।'' व्याख्या करें।
2. विज्ञापन से आप क्या समझते हैं? उद्योग में इसके महत्व की विवेचना करें।
3. विज्ञापन की परिभाषा दें तथा इसको प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
4. विज्ञापन और स्मृति में संबंधस्पष्ट करिए।
5. विज्ञापन की प्रमुख दशाओं का सौदाहरण वर्णन कीजिए।
6. विज्ञापन और मनोवृत्ति में संबंधस्पष्ट कीजिए।

15.9 संदर्भ सूची

- सुलेमान मुहम्मद और चौधरी विनय कुमार, आधुनिक संगठनात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पेज नं. 320-339.
- ओझा आर.के., औद्योगिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 पेज नं. 421-435
- चौबे सरयू प्रसाद, औद्योगिक मनोविज्ञान के मूलतत्व, कॉनसेप्ट, पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, पेज नं. 200-219

- Ghosh P.K. & Ghorpade, Industrial Pshychology, Himalaya Publishing House, Delhi, Page No. 359-370.
- Morgan Clifford T., King Richar A., Introduction to Psychology, Tata Mc Graw Hill education Private Limited, New Delhi, Page No. 379-400, 265-303.